इस्लामी शादी

हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह०)

तरतीब

हज़रत मौलाना मुफ़्ती ज़ैद मज़ाहिरी नदवी

अशरफ़ुल-इज़दिवाज

इस्लामी शादी

हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह०)

तरतीब

हज़रत मौलाना मुफ़्ती ज़ैद मज़ाहरी नदवी

हिन्दी रस्मुलख़त

एस० ख़ालिद निज़ामी

किताब का नाम : इस्लामी शादी
अज़ इफ़ादात : हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह.)
तरतीब : हज़रत मौलाना मुफ़्ती ज़ैद मज़ाहरी नदवी
उर्दू से हिन्दी : एस. ख़ालिद निज़ामी
तादाद : 1100
पहली बार : 2014

Published by

فرید بک ڈپو (پرائیویٹ) لمیٹڈ

FARID BOOK DEPOT (Pvt.) Ltd.

Corp. Off: 2158, M. P. Street, Pataudi House, Darya Ganj, N Delhi-2
Ph.: 23289786, 23289159 Fax: 23279998 Res.: 23262486
E-mail : farid@ndf.vsnl.in Websites : faridexport.com, faridbook.com

Islami Shadi
By: Hazrat Maolana M. Ashraf Ali Thanvi (*Rah.*)
Pages : 368 Size : 23x36/16

Branches:

DELHI : Farid Book Depot (Pvt.) Ltd.
422, Matia Mahal, Jama Masjid, Delhi-6
Ph.: 011-2326 5406, 2325 6590

MUMBAI : Farid Book Depot (Pvt.) Ltd.
208, Sardar Patel Road, Near Khoja Qabristan
Dongri, Mumbai - 400009 Ph.: 022-2373 1786, 2377 4786

Composed at : Uruf Enterprises
Printed at: Farid Enterprises, Delhi-6

फ़ेहरिस्त

बाब 2

बाब 3

बाब 4

बाब 5

बाब 6

बाब 7

बाब 8

बाब 9

बाब 10

बाब 11

बाब 15

बाब 16

बाब 17

बाब 18

बाब 19

बाब 20

बाब 21

बाब 22

बाब 23

बाब 24

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

बिसमिल्ला-हिर्रहमानिर्रहीम

पेशे-लफ़्ज़

इस दुनिया में बसनेवाले इंसान ख़्वाह वे मुसलमान हों या ग़ैर मुस्लिम, मर्द हों या औरत, हर एक के सामने ब्याह-शादी का मसअ्ला होता है और यही वह मसअ्ला है जिसकी वजह से आज दुनिया बड़ी परेशान नज़र आती है। ग़रीब हो या मालदार, दीनदार हो या बद्दीन, ब्याह-शादी के मसअ्ले में हर एक फ़िक्रमन्द है। और इंसान की ज़िंदगी में सबसे ज़्यादा परेशानकुन यही बाब समझा जाता है। ग़रीबों का तो पूछना ही क्या, मालदारों की शादियाँ भी जैसी कुछ होती हैं और इस सिलसिले में उनको जो ज़हमतें उठानी पड़ती हैं, वही जानते होंगे।

इस्लाम ने ब्याह-शादी को सबसे आसान अमल बतलाया था। हुज़ूर (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) ने इसी आसानी व सादगी के साथ अमल करके भी दिखलाया था। लेकिन आज ब्याह-शादी ही सबसे ज़्यादा मुश्किल काम बनकर रह गया है। शादी तो एक ख़ुशी की चीज़ होती है लेकिन अब इस ज़माने में शादी एक मुसीबत और ग़म का सामान बनकर रह गई है। कितनी ही नौजवान लड़कियों ने गला घोंटकर फाँसी लगा ली, अपने जिस्म में आग लगाकर अपने आपको हलाक कर डाला और कितने ही माँ-बाप ऐसे हैं कि लड़की की पैदाइश की ख़बर सुनकर ही आग बगूला हो जाते हैं, और कितने ही लोग ऐसे हैं कि जिन्होंने सिर्फ़ इस बिना पर अपनी बीवी को तलाक़ दे दी कि लड़की क्यों पैदा हो गई। लड़की का पैदा होना इस ज़माने में एक मुसीबत और

आफ़त बनकर रह गया है।

وَإِذَا بُشِّرَ أَحَدُهُمْ بِالْأُنثَىٰ ظَلَّ وَجْهُهُ مُسْوَدًّا وَهُوَ كَظِيمٌ

"और उन्हें जब किसी को बेटी की ख़बर दी जाए, तो उसका चेहरा बे-रौनक़ होता है और दिल ही दिल में घुटता रहता है।"

इस्लाम से पहले जो हालत कुफ़्फ़ार की थी उसके क़रीब-क़रीब आज की हालत हो गई है और यह महज़ इस वास्ते कि लड़की होगी तो उसकी शादी का मसअला होगा। आजकल की शादी तो ख़ाना-बर्बादी है। लड़की के वास्ते लड़के का इंतिख़ाब और उसका मेयार, फिर लड़की के जहेज़ की फ़िक्र, ख़ानदान के अफ़राद की ख़ुशामद और उनकी दावत् का एहतिमाम रसमों और रिवाजों की पाबन्दी और उसमें पानी की तरह पैसा बहाना आजकल की शादी के लवाज़िम में से हो गया है। ग़रीब आदमी भला इन सब बातों की सकत कहाँ रखता है। ग़रीब ही की क्या, तख़्सीस है अमीर व मालदार भी इस क़िस्म की परेशानियों से महफ़ूज़ नहीं रहे। अल-ग़र्ज़ इस मसअले में आज सारी दुनिया परेशान नज़र आ रही है और वजह इसकी सिर्फ़ यह है कि शादी से मुतअल्लिक़ इस्लाम ने जो हमारी रहनुमाई की थी और दीने-शरीअत ने इसके मुतअल्लिक़ हमको जो तालीम दी थी और हुज़ूर (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) व सहाबियात रज़ियल्लाहु अन्हा हमारे लिए जो नमूना छोड़कर गए थे अफ़सोस कि हम उन सबको भूल गए। शादी के मौक़े पर किसी को ख़याल नहीं आता कि इस्लामी तरीक़े के मुताबिक़ शादी करने का क्या तरीक़ा है और इस सिलसिले में हुज़ूर (सल्ल०) का दस्तूरुल-अमल क्या रहा है। दीन व शरीअत की जब तकमील हो चुकी और जिस दीन में सिर्फ़ इबादात नहीं, बल्कि मामलात व मआशरत ब्याह-शादी से ताल्लुक़ भी रहनुमाई मिलती है। एक मुसलमान दीनदार क्योंकर

इनको नज़र-अंदाज़ कर सकता है क्योंकि दीन सिर्फ़ नमाज़ पढ़ने, रोज़ा रखने का नाम नहीं है बल्कि ब्याह-शादी भी इबादत और दीनी अम्र है। इसमें भी हुज़ूर (सल्ल०) के उसवा की तक़लीद लाज़मी है—

لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِي رَسُولِ اللَّهِ أُسْوَةٌ حَسَنَةٌ

आज इसी उसवए ह-स-ना को तर्क करने की बिना पर सारी दुनिया परेशान है और ख़ुदसाख़्ता तरीक़े, रूसूम व रिवाज को दीन व शरीअत की जगह दे दी गई है जिसकी वजह से दीन तो हमारा बर्बाद हुआ ही था दुनिया भी बर्बाद हो गई और परेशानी अलाहिदा रही। ब्याह-शादी से मुताल्लिक़ उलमा ने मुख़्तलिफ़ किताबें लिखी हैं।

इस मजमूआ 'इस्लामी शादी' में ब्याह-शादी से मुताल्लिक़ हर-हर गोशे पर अक़्ल व नक़्ल की रौशनी में तफ़सील की गई है। ब्याह-शादी के फ़वाइद, इस्लामी अहकाम, हसब व नसब और लड़की या लड़के का इंतिख़ाब और उसका मेयार, बारात, जहेज़, महर, रूसूम व रिवाज, वलीमा वग़ैरह तक़रीबन हर-हर मौज़ूअ पर आपको तफ़सीली कलाम इस मजमूए में मिलेगा और यह मजमूआ दरअसल हज़रत थानवी (रह०) के जुमला मल्फ़ूज़ात और तसनीफ़ात व तालीफ़ात का मुन्तख़ब मजमूआ है जिसको अहक़र ने बड़ी कोशिश के साथ तर्तीब दिया है। ख़ुदा की ज़ात से उम्मीद है कि इन्शा-अल्लाह यह मजमूआ इस मौज़ूअ से मुताल्लिक़ इन्तिहाई जामे और मुफ़ीद साबित होगा और जो शख़्स भी इस दस्तूरुल अमल के मुताबिक़ ब्याह-शादी करेगा, इन्शा-अल्लाह दुनिया में भी चैन व सुकून से ज़िंदगी बसर करेगा और आख़िरत में भी सवाब हासिल करेगा।

ग़ैर मुस्लिम हज़रात भी अगर इससे इस्तिफ़ादा करें तो वे दुनिया में सुकून हासिल किए बग़ैर नहीं रह सकते। ज़रूरत इस

बात की है कि इस किताब को घर-घर और हर फ़र्द तक पहुँचाया जाए, और चूंकि अमूमन लोग उर्दू कम जानते हैं इसलिए इस उर्दू मजमूए को हिन्दी रस्मुल-ख़त (लिपि) में शाए किया जा रहा है। इन्शा-अल्लाह हिन्दी वालों के लिए भी यह उर्दू की तरह मुफ़ीद होगा। अल्लाह पाक इस मजमूए को क़बूल फ़रमाए और उम्मत की इस्लाह व हिदायत का ज़रिआ बनाए।

(मुअल्लिफ़)

अर्ज़े-नाशिर

शादी ब्याह के मामले में आज मुस्लिम मुआशरे का बिगाड़ बड़ी ख़तरनाक हदों को छू रहा है– यह किताब बिगड़े हुए मुआशरे की इस्लाह में बहुत अहम किरदार अदा कर सकती है, बशर्ते कि इसको घर-घर पहुँचाया जाए और इसके मज़ामीन को अमली जामा पहनाया जाए।

इस्लामी शादी के मौज़ूअ पर लिखी गई किताबों में इस किताब को अपने अंदाज़े मज़ामीन और मौज़ूआत नीज़ मुआशरे के अहवाल के लिहाज़ से बिल्कुल एक नई और अहम किताब क़रार देना चाहिए।

अल्लाह पाक इसके नफ़ा को आम व ताम फ़रमाए और मुसलमानों के मुआशरे की इस्लाह का ज़रिआ बनाए। आमीन!

बाब 1

फ़स्ल (1)

निकाह का बयान

निकाह की अहमियत से मुताल्लिक़ चन्द अहादीस

(1) अबू नजीह से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०)* ने फ़रमाया कि तुममें से जो शख़्स निकाह करने की वुसअत रखता हो फिर निकाह न करे, उसका मुझसे कोई ताल्लुक़ नहीं।

(तर्ग़ीब)

(2) हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब बन्दा निकाह कर लेता है तो आधा दीन कामिल कर लेता है, अब उसको चाहिए कि निस्फ़ (आधे) दीन में अल्लाह तआला से डरता रहे। (तर्ग़ीब)

(3) अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि ऐ जवानों की जमाअत! तुममें जो शख़्स ख़ानादारी (नान-नफ़क़ा) का बार उठाने की क़ुदरत रखता हो उसको निकाह कर लेना चाहिए। क्योंकि निकाह को निगाह के पस्त होने और शर्मगाह को महफ़ूज़ रहने में ख़ास दख़्ल है। और जो शख़्स क़ुदरत न रखता हो उसको चाहिए कि वह रोज़ा रखे, क्योंकि वह रोज़ा उसके लिए गोया रगें मल देना है। (मिश्कात)

निकाह के दुनयवी व उख़रवी फ़वाइद

(4) इब्ने अबी नजीह (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुहताज है, मुहताज है वह मर्द जिसके पास बीवी न हो। लोगों ने अर्ज़ किया अगरचे वह बहुत माल

वाला हो तब भी वह मोहताज है?

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, हाँ, अगरचे बहुत मालवाला हो। फिर फ़रमाया मुहताज है, मुहताज है, वह औरत जिसके पास ख़ाविंद न हो। लोगों ने अर्ज़ किया अगरचे बहुत मालदार हो तब भी वह मोहताज है? (मिश्कात, इम्दादुल-फ़तावा)

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया अगरचे मालवाली हो तब भी।

(रज़ीन)

क्योंकि माल का जो मक़सूद है वह राहत और बे-फ़िक्री है। उस मर्द और औरत को न राहत मिलती है और न बेफ़िक्री नसीब होती है। चुनांचे देखा भी जाता है कि निकाह में बड़े-बड़े फ़ायदे हैं— दीन के भी और दुनिया के भी। (हयातुल-मुस्लिमीन)

निकाह भी अल्लाह तआला की बड़ी नेमत है, दुनिया और दीन दोनों के काम इससे दुरुस्त हो जाते हैं और इसमें बहुत से फ़ायदे और बे-इन्तहा मस्लिहतें हैं। आदमी गुनाह से बचता है, दिल ठिकाने हो जाता है, नियत ख़राब और डाँवा-डोल नहीं होने पाती और बड़ी बात यह है कि निकाह फ़ायदा का फ़ायदा और सवाब का सवाब भी है क्योंकि मियां-बीवी का पास बैठकर मुहब्बत-प्यार की बातें करना, हँसी-दिल्लगी में दिल बहलाना नफ़्ल नमाज़ों से भी बेहतर है। (बहिश्ती ज़ेवर)

(5) हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि औरतों से निकाह करो, वे तुम्हारे लिए माल लाएँगी। (बज़्ज़ार)

फ़ायदा : माल लाने का मतलब यह है कि मियाँ-बीवी दोनों समझदार और एक-दूसरे के ख़ैर-ख़्वाह हों, सो ऐसी हालत में मर्द तो यह समझकर कि मेरे ज़िम्मे ख़र्च बढ़ गया है कमाने में ज़्यादा कोशिश करेगा, और औरत ऐसा इंतिज़ाम करेगी जो मर्द नहीं कर सकता, और इस हालत में राहत और बे-फ़िक्री लाज़िम है और माल का फ़ायदा यही (बे-फ़िक्री और राहत) होता है। यह मतलब

हुआ माल लाने का। (हयातुल-मुस्लिमीन)

(6) हज़रत मअक़िल बिन यसार (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, ऐसी औरत से निकाह करो जो बच्चा जन्नेवाली हो क्योंकि मैं तुम्हारी कसरत (ज़्यादती) से और (दूसरी) उम्मतों पर फ़ख्र करूँगा कि मेरी उम्मत इतनी ज़्यादा है।

(अबू-दाऊद, नसई, हयातुल-मुस्लिमीन)

निकाह न करने पर तहदीद

हज़रत अबूज़र (रज़ि०) से एक तवील हदीस में रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने अकाफ़ (सहाबी का नाम है) से फ़रमाया, ऐ अकाफ़! क्या तेरी बीवी है? उन्होंने अर्ज़ किया, नहीं। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, और तू मालवाला, वुस्अतवाला है? अर्ज़ किया हाँ, मैं माल और वुस्अतवाला हूँ। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, तो इस हालत में तू शैतान के भाइयों में से है। अगर तू नसारा में से होता तो उनका राहिब होता।

बिला शुब्हा निकाह करना हमारा तरीक़ा है। तुममें सबसे बदतर वे लोग हैं जो बे-निकाह हैं और मरनेवालों में सबसे बदतर वे हैं जो बे-निकाह हैं। क्या तुम शैतान से लगाओ रखते हो? शैतान के पास औरतों से ज़्यादा कोई हथियार नहीं।

जो सालिहीन (दीनदारों) के लिए कारगर हो (ग़नी औरतों के ज़रिए फ़ित्ने में मुब्तला करना है) मगर जो लोग निकाह किए हुए हैं वे लोग बिल्कुल मुतह्हिर (पाकीज़ा) और फ़हश से बरी हैं। और फ़रमाया, ऐ अकाफ़ तेरा बुरा हो! निकाह कर ले वरना पीछे रह जानेवालों में से होगा। (रवाहु अहमद, जमउल-फ़वाइद)

निकाह एक इबादत और दीनी अम्र है

जिस काम का शरीअत में ताकीदी यानी वजूबी या तरग़ीबी यानी इस्तहबाबी हुक्म किया गया हो या उस पर सवाब का वादा

किया गया हो वह दीन का काम है और जिसमें यह बात न हो वह दुनिया का काम है। इस मेयार पर मुन्तबक़ करके देखा जाए तो साफ़ मालूम होगा कि वह दीन का काम है क्योंकि शरीअत में बाज़ हालात में इसका ताकीदी और बाज़ में तर्ग़ीबी हुक्म है और इस पर सवाब का वादा भी है और इसके तर्क की मज़म्मत और शनाअत भी फ़रमाई गई है।

यह साफ़ दलील है इसके दीन होने की कि फ़ुक़्हा ने जो निकाह के अक़साम और उनके अहकाम लिखे हैं उनमें कोई दरजा मुबाह का नहीं। हां, आरिज़ के सबब मकरूह तो हो जाता है मगर अपने आपमें ताअत ही है, और फ़ुक़्हा ने इसको इस दरजे ताअत फ़रमाया है कि इसको इस्तेमाल बिल-तअल्लुम वत-तालीम वत-तख़्लीलुन नवाफ़िल (नफ़्ल इबादत वग़ैरह से) अफ़ज़ल कहा है। (कज़ाफ़िश्शामी, इम्दादुल-फ़तावा)

दफ़ा दखल मुक़द्दर निकाह एक मामला है लेकिन इसकी वजह से दुनयवी अम्र न होगा

रोज़ा जिसका दीन का जुज़्व होना बिला इख़्तिलाफ़ मुसल्लम है लेकिन बाज़ हालात में इसमें वस्फ़ उक़ूबत (सज़ा) का भी आ जाता है जैसे उसूलीन ने सोम कफ़्फ़ारा (कफ़्फ़ारा के रोज़े के बारे) में इसकी तसरीह की है मगर इसके बावजूद इसको कोई अम्रे दुनयवी नहीं कहता।

इसी तरह अगर निकाह में दूसरा वस्फ़ मामला होने का भी हो तो इससे उसका अम्रे दुनयवी होना कैसे साबित हो गया बल्कि ग़ौर करने से मालूम होता है कि मामले के मुक़ाबले में उक़ूबत (सज़ा) को इबादत से ज़्यादा बुअ़्द (दूरी) है तो जब इबादत के साथ उक़ूबत मिलकर भी इस इबादत को अम्रे दुनयवी न बना सका तो इबादत के साथ मामले का वस्फ़ इस इबादत को अम्रे दुनयवी कैसे बना सकता है। (इम्दादुल-फ़तावा)

निकाह के मक़ासिद व फ़वाइद

ख़ुदा तआला क़ुरआने करीम में फ़रमाते हैं—

خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوْٓا اِلَيْهَا وَجَعَلَ بَيْنَكُمْ مَّوَدَّةً وَّرَحْمَةً

"ख़ुदा तआला ने तुम्हारे लिए तुममें से जोड़े बनाए ताकि तुम उनसे आराम पकड़ो, और तुममें दोस्ती व नरमी रख दी।"

और फ़रमाया—

نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ

"तुम्हारी औरतें तुम्हारी (औलाद पैदा करने के लिए) ब-मंज़िला खेती के हैं।"

(1) बीवी आराम व सुकून के लिए बनाई गई है। ग़मगुसार और हज़ारों अफ़कार में आराम का ज़रिआ है। इंसान में तबई तौर पर दोस्ती और मुहब्बत करना फ़ितरी अम्र है और मुहब्बत के लिए बीवी अजीब व ग़रीब चीज़ है।

औरत ज़ईफ़ुल-ख़लक़त (पैदाइशी कमज़ोर) और बच्चों को जनने और घर का इंतिज़ाम रखने में ज़िम्मेदार और एक अज़ीमुश्शान बाज़ू है। पस इसके मुताल्लिक़ रहम से काम लो। औरत नंग, नामूस और माल व औलाद की मुहाफ़िज़ और मोहतमिम है। तुम्हारी अदम मौजूदगी में तुम्हारे माल व इज़्ज़त व दीन की हिफ़ाज़त करनेवाली है।

(2) आदमियों में क़ुदरती तौर पर शहवत का माद्दा है। क़ुदरत ने इसका महल बीवी को बनाया है। ख़ुदा तआला फ़रमाता है कि औरत खेती है और बीज बोने के क़ाबिल है। जिस तरह खेत का इलाज मआलिजा ज़रूरी हुआ करता है और आदमियों में ख़ास ग़रज़ हुआ करती है इसी तरह औरत में भी ख़ास-ख़ास अग़राज़ हैं जिनसे मुतमत्तेअ होना चाहिए।

(3) जो ख़्वाहिश मर्द के दिल में औरत की तरफ़ या औरत के दिल में मर्द की तरफ़ से है, वह तक़ाज़ा इंसानी फ़ितरत है और इस ख़्वाहिश को निकाह के ज़रिए पूरा करना इंसान के दिल में सच्ची मुहब्बत और पाकीज़गी के ख़यालात को पैदा करता है

और उसका नाजाइज़ ताल्लुक़ात से पूरा करना इंसान को नापाकी की तरफ़ ले जाता है और उसके दिल में बद ख़्यालात पैदा कर देता है, पस निकाह इंसान को पाकीज़गी की तरफ़ ले जाने और उसे नापाकी से दूर रखने का एक ज़रिआ है।

(अल-मसालिहतुल अक़लिया)

निकाह किस नीयत से करना चाहिए

(4) क़ुरआन शरीफ़ से साबित होता है कि शादी उल्फ़त व परहेज़गारी और सेहत व नसल की हिफ़ाज़त के लिए होती है। अलग़र्ज़ निकाह का बड़ा मक़सद वही है जिसको अल्लाह तआ़ला ने क़ुरआने करीम में ज़िक्र फ़रमाया है कि परहेज़गारी ही की ग़रज़ से निकाह किया करो। और औलाद सालेह तलब करने के लिए दुआ करो। जैसा कि इर्शाद है 'मोहसिनी-न ग़ैर मुसाफ़िहीन' यानी चाहिए कि तुम्हारा निकाह इस नीयत से हो कि तुम तक़्वा और परहेज़गारी के क़िले में हो जाओ। ऐसा न हो कि हैवानात की तरह महज़ नुत्फ़ा निकालना (ख़्वाहिश पूरी करना ही) तुम्हारा मक़सद हो।

(5) और फ़रमाया— وَابْتَغُوْا مَا كَتَبَ اللّٰهُ لَكُمْ ۝ यानी बीवी की क़ुरबत से औलाद का क़सद करो जिसको अल्लाह तआ़ला ने तुम्हारे लिए मुक़र्रर फ़रमाया है।

(6) नीज़ निकाह करने से इंसान पाबंद हो जाता है। मुस्तैदी के साथ कमाने की फ़िक्र करता है और बेजा काम करने से डरता है। उसमें मुहिब्बे हया और फ़रमांबरदारी पाई जाती है, वह निहायत किफ़ायत के साथ ज़िंदगी बसर करता है और बेशुमार अमराज़ से बचा रहता है।

(7) यह अम्र मुफ़ीद सेहत, इत्मिनानबख़्श, राहत-रसां, सुरूर अफ़्ज़ां किफ़ायत-आमेज़, तरक़्क़िए-ज़िंदगी दारैन का सबब है।

(8) तमद्दुन के लिए इससे बेहतर कोई सूरत नहीं। हुब्बुल-वतन की यही जड़ है और मुल्क व क़ौम के लिए आलातरीन ख़िदमात में से है। बीमारियों से बचाने और सदहा

इमराज़ से महफ़ूज़ रखने के लिए यह एक हकीमी नुस्ख़ा है। अगर यह क़ानूने इलाही बनी आदम में नाफ़िज़ न होता तो आज दुनिया सूनी होती, न कोई मकान, न कोई बाग़ और न किसी क़ौम का निशान बाक़ी रहता।

(अल-मसालिहुल अक़लिया, अल-अहकामुन नक़लिया)

निकाह की मसलिहत

नफ़्स में जो तक़ाज़े पैदा होते हैं, अगर उनके पूरा होने के लिए एक महल भी न किया जाए तो फिर इंसान तक़ाज़े को हर जगह पूरा करेगा और इस तरह उसकी बेहयाई का ऐब नुमायाँ हो जाएगा। इसी लिए शरीअत ने निकाह तजवीज़ किया है जिसमें नफ़्स के तक़ाज़ों को पूरा करने के लिए एक महल की ताईन की है और इस तजवीज़ में शरीअत का अक़्ल से ज़्यादा ख़ैरख़्वाह होना साबित होता है क्योंकि अगर अक़्ल से इस्तफ़्सार किया जाए तो अक़्ल निकाह को तजवीज़ नहीं कर सकती। क्योंकि एक अजनबी मर्द के सामने एक अजनबी औरत का इस तरह बेहिजाब होना अक़्ल के नज़दीक क़बीह है मगर अक़्ल की इस तजवीज़ पर अगर अमल किया जाता तो ज़्यादा फ़ित्ना बरपा होता कि अभी तो एक ही अजनबी मर्द औरत बेहिजाब हो रहे थे। फिर न मालूम कितने मर्द अजनबी औरतों के साथ बेहिजाब होते और कितनी औरतें अजनबी मर्दों के सामने बेहिजाब होतीं क्योंकि आख़िर मर्द व औरत एक-दूसरे से कहाँ तक सब्र करते। इन अवाक़िब पर नज़र करके आसमानी शरीअत ने निकाह को तजवीज़ किया ताकि इस तक़ाज़े को पूरा होने का महल महदूद मुतय्यन होकर फ़ित्ना न बने और यही अलामत है इस मज़हब के आसमानी होने को कि इसकी निगाह अवाक़िब (पर अंजाम) को मुहीत होती है और जो क़वानीन महज़ अक़्ल से बनाए जाते हैं उनकी नज़र अवाक़िब पर मुहीत नहीं होती। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

चुनांचे अक़्ल तो मुत्लक़न हया को मतलूब समझती है और निकाह को ख़िलाफ़े हया बताती है मगर शरिअत ने निकाह का क़ानून हया ही की हिफ़ाज़त के लिए मुक़र्रर किया है क्योंकि अगर एक जगह भी हया को तर्क किया जाएगा तो फिर इंसान पूरा बेहया हो जाएगा। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

इस्लामी हुक्म

हदीस में बयान किया गया है—

مَنِ اسْتَطَاعَ مِنْكُمُ الْبَاءَةَ فَلْيَتَزَوَّجْ فَإِنَّهُ أَغَضُّ لِلْبَصَرِ وَأَحْصَنُ لِلْفَرْجِ.

"जिसको अस्बाबे निकाह मयस्सर हों उसे शादी कर लेनी चाहिए क्योंकि निकाह निगाह को बहुत नीचा कर देता है और इफ़्फ़त को बहुत महफ़ूज़ कर देता है, यानी उससे बसरे निगाह व इफ़्फ़त आसानी से महफ़ूज़ हो जाती है।"

आदते ग़ालिबा यही है कि निकाह से तबीअते सलीम को इफ़्फ़त बा-आसानी हासिल हो जाती है। बाक़ी जो हैसुत-तबअ हो जिसे एक निकाह या दो निकाह या चार निकाहों से भी इफ़्फ़त हासिल न हो बल्कि मुतआ या ज़िना वग़ैरह से ग़लीज़ खाता फिरे उसका यहाँ ज़िक्र नहीं, क्योंकि यहाँ आदमियों का ज़िक्र है जानवरों का ज़िक्र नहीं।

निकाह की ग़रज़ व ग़ायत

وَمِنْ آيَاتِهِ أَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ أَنفُسِكُمْ أَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوا إِلَيْهَا وَجَعَلَ
بَيْنَكُم مَّوَدَّةً وَرَحْمَةً.

"और उसी की क़ुदरत की निशानियों में से यह अम्र है कि उसने तुम्हारे फ़ायदे के वास्ते तुम्हारी जिन्स की बीवियाँ बनाईं और वह फ़ायदा यह है कि तुमको उनके पास आराम मिले। तुम मियाँ-बीवी में मुहब्बत और हमदर्दी पैदा की।"

(बयानुल-क़ुरआन)

हासिल यह है कि औरतें इस वास्ते बनाई गई हैं कि उनसे

तुम्हारे क़ल्ब को सुकून मिले और तुम्हारा दिल बहले यानी औरतें जी बहलाने के वास्ते हैं। मैं कहा करता हूँ कि मुहब्बत का ज़माना तो जवानी का है उस वक़्त जानिबीन में जोश होता है। और हमदर्दी का ज़माना ज़ईफ़ी का है, दोनों का। और देखा भी गया है कि ज़ईफ़ी की हालत में सिवाए बीवी के कोई दूसरा काम नहीं आता और अगर कोई आता है तो निस्बतन कम।

(नुस्रतुन-निसा, हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

निकाह की फ़ासिद ग़रज़

बेवक़ूफ़ों को यह ख़बर नहीं कि निकाह का मक़सद खाना-पीना है या मसालेह ज़ौजियत? अगर खाना-पीना मक़सद होता तो चाहिए था कि जो लोग खाने-पीने की वुसअत रखते हैं या ख़ुद वह औरत मालदार है तो ऐसी औरत का निकाह ही न किया जाता। हालांकि मुशाहिदा है कि बादशाहों की बेटियाँ तक इससे मुस्तस्ना नहीं। इससे मालूम हुआ कि निकाह से मक़सूद दूसरी ही मस्लिहतें हैं। (इस्लाहे-इंक़लाब)

निकाह की सबसे बड़ी ग़रज़

तवालिद (यानी औलाद पैदा करना) ग़रज़े-आज़म है निकाह से। हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया—

تَزَوَّجُوا الْوَدُوْدَ الْوَلُوْدَ فَاِنِّیْ مُكَاثِرٌ بِكُمُ الْاُمَمَ

"ऐसी औरत से निकाह करो जो ज़्यादा बच्चे जनने वाली हो और ज़्यादा मुहब्बत करनेवाली हो क्योंकि क़ियामत के दिन मैं तुम्हारी कसरत की वजह से दूसरी उम्मतों पर फ़ख़्र करूँगा।" (इस्लाहे-इंक़लाब)

निकाह के अक़्ली व उर्फ़ी फ़वाइद,

निकाह इज़्ज़त का ज़रिआ है

जिस तरह लिबास ज़ीनत है उसी तरह शौहर बीवी के लिए ज़ीनत है और बीवी अपने मर्द के लिए ज़ीनत है। औरत से मर्द

की ज़ीनत यह है कि बीवी-बच्चोंवाला आदमी लोगों की नज़र में मुअज़्ज़िज़ होता है। अगर किसी से क़र्ज़ माँग ले तो उसको क़र्ज़ भी मिल जाता है, क्योंकि सब जानते हैं कि इसकी अकेली जान नहीं हैं बल्कि आगे-पीछे और भी आदमी हैं। दूसरे लफ़्ज़ों में यह कहा जा सकता है कि अकेले आदमी को उधार, क़र्ज़ नहीं मिलता, उसकी इज़्ज़त दुनिया वालों की नज़र में कम होती है।

दूसरे लोग बीवी वाले को सांड नहीं समझते, अपनी बीवी-बच्चों पर उसकी नफ़्सानी ख़्वाहिश का ख़ौफ़ नहीं करते और बे-निकाह आदमी को मिस्ल सांड के समझते हैं, उसकी तरफ़ से हर शख़्स को अपने बीवी-बच्चों पर ख़तरा रहता है।

और मर्द से औरत की इज़्ज़त यह है कि लोग उसके ऊपर किसी क़िस्म का शुबहा नहीं करते। मियाँ पास रहे या परदेस में रहे जितने बाल-बच्चे होंगे सब उसी के नामए-आमाल में दर्ज होते रहेंगे। इसके बरअक्स निकाह से पहले औरत की इज़्ज़त व आबरू हर वक़्त ख़तरे में रहती है। (रफ़ाउल-इल्तबास)

बे-निकाह रहने के नुक़सानात

जब निकाह ब-मंज़िला लिबास के है तो बे-निकाह रहना उर्यानी है। पस इसमें इस बात की तरफ़ भी इशारा है कि औरत-मर्द के लिए बे-निकाह रहना ऐब की बात है जबकि इस्तिताअत हो। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

जब हालते निकाह की ज़रूरत है तो तर्के निकाह बहुत-से फ़ित्नों का सबब हो जाएगा, चुनांचे वसाविस व ख़तरात का हुजूम होगा जो इबादात में हलावत व तमानियत (लज़्ज़त और इत्मीनान) बिल्कुल ही बर्बाद कर देगा।

और बाज़ लोगों से उन वसाविस व ख़तरात से मुतास्सिर होकर उनके मुक़तज़ा पर अमल भी सरज़द हो जाता है। चुनांचे बाज़ लोग तो औरतों से मुब्तला हो जाते हैं और बाज़ लोग अपनी ज़ाहिरी तक़द्दुस की हिफ़ाज़त के लिए औरतों से बचते हैं क्योंकि

इसमें आदमी बदनाम हो जाता है, कुछ नए उम्र के लड़कों से मुब्तला हो जाते हैं और यह उससे बढ़कर फ़ित्ना और गुनाह है क्योंकि औरत किसी हालत में तो हिल्लत का महल है ब-ख़िलाफ़ इसके कि क़तई हराम है।

बाज़ लोग असल फ़ेल से बचते रहते हैं मगर उसके मुक़द्दमात मिस्ल क़िबला व लम्स में मुब्तला हो जाते हैं जिसमें दूसरे बद-गुमान न हों। हत्ता कि ख़ुद वह उसको बुज़ुर्गाना शफ़क़त पर महमूल करेगा।

نَعُوذُ بِاللّٰهِ مِنَ الْفِتَنِ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَمَا بَطَنَ

बाज़ लोग बावजूद ज़रूरत के और बावजूद वुसअत के निकाह नहीं करते। बाज़ तो शुरू ही से नहीं करते और बाज़ लोग बीवी के मर जाने या तलाक़ दे देने के बाद फिर शादी नहीं करते। जब ज़रूरत और वुसअत दोनों हों तो निकाह वाजिब या फ़र्ज़ होगा।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

बुढ़ापे में नब्बे बरस की उम्र में शादी

शाहजहांपुर में एक साहब ने बुढ़ापे में नब्बे बरस की उम्र में शादी की थी। लड़कों ने एतिराज़ किया। लड़कियाँ, बहुएँ सब लोग ख़िलाफ़ थे और यह कहते थे कि हम लोग ख़िदमत के लिए मौजूद हैं इस उम्र में आपको निकाह की क्या ज़रूरत है, ख़िदमत के लिए आपकी औलाद बहुत है।

बड़े मियाँ ने कहा कि तुम मेरी मसलिहत को क्या समझ सकते हो? तुम नहीं जानते बीवी के बराबर मुझे कोई राहत नहीं दे सकता।

इत्तिफ़ाक़ से बड़े मियाँ बीमार हो गए और बीमारी भी दस्तों की, और उन दस्तों में बेहद बदबू कि मकान तक सड़ा जाता था। लड़के-लड़कियों वग़ैरह में से कोई पास न आया। सब नफ़रत करते थे। लड़के, बहू-बेटियाँ छोड़कर अलग हो गईं और बदबू की वजह से कोई भी पास न आता था। मगर बीवी उस वक़्त भी

ख़िदमत-गुज़ार थी। उस बेचारी बीवी ने ख़िदमत की और ज़रा भी नफ़रत नहीं की बावजूद इसके कि नई शादी होकर आई थी और उम्र भी थोड़ी थी। बेचारी हर वक़्त सहारा लगाकर बिठलाती, उनको पैरों पर बिठलाकर पाख़ाना कराती और इस्तिंजा कराके कपड़ों को पाक व साफ़ करती। दिन में बीस-पच्चीस दस्त भी आ जाते तो वह हर दफ़ा उसको पाक व साफ़ करके लिटाती थी। कपड़ों को धोती, साफ़ करती थी। उस वक़्त बड़े मियाँ ने कहा कि मैंने इस दिन के वास्ते निकाह किया था। फिर वह बीमारी से शिफ़ायाब हुए तो लड़कों को बुलाया और कहा कि तुमने अपनी ख़िदमत का हाल देख लिया, इसी के भरोसे पर मुझसे कहते थे कि तुम्हें शादी की क्या ज़रूरत है? अब तुमने ज़रूरत देख ली? अगर इस वक़्त मेरी बीवी न होती तो तुम छोड़कर अलग हो गए थे, मैं अकेला पड़ा सड़ता रहता।

हक़ीक़त में बीमारी में बहू-बेटियाँ हरगिज़ वह काम नहीं दे सकतीं जो बीवी दे सकती है। ख़ुदा तआला ने यह राहत इसी ताल्लुक़ में रखी है। यह तो बीवी से दुनिया की राहत है।

(अत-तबलीग़)

एक और वाक़िआ

एक साहब बड़े आदमी थे उन्होंने निकाह किया मगर उनको ज़ौफ़ था। कुश्तों वग़ैरह से काम चल जाता था। एक तबीब ने निहायत गर्म कुश्ता दे दिया जिससे उनको जुज़ाम (कोढ़) का मर्ज़ हो गया। तमाम बदन फूट निकला। कोई पास जाना भी गवारा न करता था। मगर बीवी ने ऐसी हालत में भी नफ़रत न की और किसी ख़िदमत में उज़्र न किया। क्या ठिकाना है इस ताल्लुक़ व ईसार का कोई दूसरा नहीं कर सकता ऐसा ताल्लुक़ होता है बीवी को ख़ाविंद से जिसकी ख़ाविंद साहब को भी क़द्र नहीं होती।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

हज़रत मौलाना फ़ज़लुर्रहमान साहब का हाल

सौ बरस की उम्र में शादी

हज़रत मौलाना शाह फ़ज़लुर्रहमान साहब (रह०) ने पहली बीवी के इंतिक़ाल पर आख़िर उम्र में फिर शादी की थी। हालांकि उस वक़्त मौलाना की उम्र सौ बरस से ऊपर थी। यह शादी महज़ इस वजह से की कि हज़रत को नासूर का मर्ज़ हो गया था, उसकी देख-भाल सिवाए बीवी के हो नहीं सकता था और वह बेचारी बराबर अपने हाथ से शब व रोज़ में कई मर्तबा धोती थीं और साफ़ करती थीं। निहायत ख़ुशी के साथ कोई गरानी या नफ़रत उनको न होती थी। दुनिया में कोई इस ताल्लुक़ की नज़ीर नहीं पेश कर सकता। (अल-इफ़ाज़तुल यौमियह)

हज़रत हाजी साहब का हाल बुढापे में दूसरी शादी

हज़रत हाजी साहब (रह०) ने आख़िर उम्र में निकाह किया इसकी वजह यह थी कि हज़रत पीरानी साहिबा नाबीना हो गई थीं। हज़रत ने महज़ ख़िदमत की ग़रज़ से निकाह किया था। यह बीबी हज़रत की भी ख़िदमत करतीं और पीरानी साहिबा की भी। इन वाक़िआत से पता चलता है कि औरत महज़ शहवत ही के लिए नहीं होतीं बल्कि शादी में और भी मसालिह और हिकमतें हैं। (नुसरतुन-निसा)

निकाह न करने पर वईद

हदीस में है— مَنْ تَبَتَّلَ فَلَيْسَ مِنَّا ० "यानी जो शख़्स बावजूद तक़ाज़ए नफ़्स व क़ुदरत के निकाह न करे वह हमारे तरीक़े से ख़ारिज है क्योंकि यह तरीक़ा नसारा का है कि वह नफ़्स निकाह को वुसूल इलल्लाह से मानेअ् समझकर इसके तर्क को (यानी निकाह न करने को) इबादत समझते हैं।" (मलफ़ूज़ाते-अशर्फ़िया)

बाज़ लोग तो निकाह न करने को इबादत व क़ुरबते इलाही का सबब समझते हैं हालांकि यह एतिक़ादे-रहबानियत और दीन में

बिदअत है। असल अमल जिसका शरीअत ने हुक्म दिया है निकाह ही है तो उसका तर्क करना इबादत नहीं हो सकता।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

वईद की वजह

बहुत-से हालात ऐसे होते हैं कि आदमी अगर निकाह न करे तो उसका तर्के निकाह सबब हो जाएगा बहुत-से फ़ित्नों का।

निकाह के तक़ाज़े की दो क़िस्में हैं— एक शदीद तक़ाज़ा और दूसरा मुतलक़ तक़ाज़ा। पस मुतलक़ तक़ाज़े को किसी तरह भी ज़ाइल नहीं होना चाहिए। कोई कैसा ही मुजाहिद हो और कैसी ही सर्द दवाई इस्तेमाल करे (मगर फिर भी मुत्तलक़ तक़ाज़ा बाक़ी रहता है)। हमने एक सत्तर बरस के बूढ़े को देखा है जिसको एक लड़के से मुहब्बत थी, हालांकि वह ख़ुद किसी मसरफ़ के न थे मगर उसकी तरफ़ देखते शहवत के साथ थे जो यक़ीनन हराम था।

ग़र्ज़ मुजाहिदा से यह नहीं होता कि तक़ाज़ा बिल्कुल ज़ाईल हो जाए। बल्कि यह तो न बुढ़ापे से, न किसी दवा से, न तक़लीले ग़िज़ा से ख़त्म हो सकता है। बस इससे मुजाहिदे का नफ़ा यह है कि तक़ाज़ा ख़फ़ीफ़ हो जाता है कि पहले मुक़ावमत दुश्वार थी अब आसान हो गई। अगर तक़ाज़ा बिल्कुल ज़ाईल हो जाए तो सवाब क्योंकर होगा, सवाब तो इसी वास्ते मिलता है कि आदमी तक़ाज़े का मुक़ाबला करके नेक कामों पर जमा रहता है।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

तर्के निकाह के आज़ार

अगर किसी को उज़्र हो (और इस उज़्र की वजह से वह निकाह न कर सकता हो तो वह हदीस मज़कूरा की वईद से मुस्तस्ना है)। उज़्र बदनी हो या माली या दीनी। उज़्र बदनी व माली तो ज़ाहिर है।

दीनी उज़्र यह है कि निकाह के बाद ज़ोफ़े हिम्मत की वजह से दीन की हिफ़ाज़त न कर सकेगा। (या दीनी अशग़ाल की वजह से बीवी के हुक़ूक़ अदा न कर सकेगा।) (मल्फ़ूज़ाते-अशर्फ़िया)

ख़ुलासा यह है कि अगर अंदेशा है कि बीवी के हुक़ूक़ अदा न कर सकेगा, ख़्वाह हक़्क़े नफ़्स हो, ख़्वाह हक़्क़े माल, तो ऐसे शख़्स के लिए निकाह करना मना है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

उज़्रे निकाह से मुताल्लिक़ चन्द अहादीस

इब्ने मसऊद व अबू हुरैरह (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि लोगों पर एक ऐसा ज़माना आएगा कि आदमी की हलाकत उसकी बीवी और माँ-बाप और औलाद के हाथों होगी कि ये लोग उस शख़्स को (ग़ुरबत और) नादारी से आर दिलाएंगे और ऐसी बातों की फ़रमाइश करेंगे जिसको वह बर्दाश्त न कर सकेगा। सो वह ऐसे कामों का इरतिकाब करेगा जिसमें उसका दीन जाता रहेगा फ़िर वह बर्बाद हो जाएगा।

हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से रिवायत है कि एक शख़्स अपनी बेटी को नबी (सल्ल०) के पास लाया और अर्ज़ किया कि यह मेरी बेटी निकाह करने से इंकार करती है। आपने उस लड़की से (निकाह के बारे में) फ़रमाया कि अपने बाप का कहना मान ले। उसने अर्ज़ किया क़सम उस ज़ात की जिसने आपको सच्चा दीन देकर भेजा! मैं निकाह न करूंगी जब तक कि आप मुझे यह न बतला दें कि ख़ाविंद का बीवी के ज़िम्मे क्या हक़ है। आपने हुक़ूक़ का ज़िक्र फ़रमाया। उसने अर्ज़ किया क़सम उस ज़ात की जिसने आपको सच्चा दीन देकर भेजा! मैं कभी न करूंगी। आप ने फ़रमाया, औरतों का निकाह (जब शरअन वह बा-इख़्तियार हो) उनकी इजाज़त के बग़ैर मत करो। पहली हदीस में मर्दों के उज़्र का ज़िक्र है और वह उज़्र ज़ाहिर है (यानी जब दीन के ज़रर का

क़वी अंदेशा हो)।

और दूसरी हदीस में औरत के लिए उज़्र है। उसका उज़्र यह था कि उसको उम्मीद न थी कि ख़ाविंद का हक़ अदा कर सकूंगी। (इसलिए) आप (सल्ल०) ने उसको मजबूर नहीं फ़रमाया। (इसी तरह) जब (किसी बेवा) औरत को यह अंदेशा हो कि दूसरा निकाह करने से उसके बच्चे बर्बाद हो जाएंगे तो (एक) हदीस में यह भी उज़्र है। (हयातुल-मुस्लिमीन)

फ़स्ल (2)

निकाह करने का फ़िक्ही हुक्म

वाजिब निकाह

जब ज़रूरत यानी नफ़्स में तक़ाज़ा हो और वुसअत भी हो, गो इस क़द्र हो कि रोज़ के रोज़ कमाऊंगा और खिलाऊंगा तो निकाह करना इस सूरत में वाजिब है और इस तर्क से गुनाहगार होगा।

फ़र्ज़ निकाह

और अगर वुसअत के साथ बहुत ज़्यादा तक़ाज़ा है कि बग़ैर निकाह किए हुए हरामकारी में मुब्तला हो जाने का अंदेशा है तो निकाह करना फ़र्ज़ होगा।

وَمِنَ الْفِعْلِ الْحَرَامِ النَّظَرُ الْمُحَرَّمُ وَالْإِسْتِمْنَاءُ بِالْكَفِّ

"हरामकारी में हराम नज़र और जलक़बाज़ी मुश्तज़नी (यानी अपने हाथ के ज़रिए माद्दा को ख़ारिज करके ख़्वाहिश पूरी करना) यह भी शामिल है।"

ममनूअ् सूरत

अलबत्ता अगर अंदेशा है कि बीवी के हक़ अदा न कर

सकेगा ख़्वाह हक़्क़े नफ़्स हो, ख़्वाह हक़्क़े माल तो ऐसे शख़्स के लिए निकाह कर लेना यक़ीनन ममनूअ् है।

मुख़्तलिफ़ फ़ीहि सूरत

और अगर ज़रूरत हो और वुसअत न हो तो उसमें अक़वाल मुख़्तलिफ़ हैं; अहक़र वुजूब के क़ौल को राजेह समझता है और वुसअत का तदारुक, मेहनत मज़दूरी या क़र्ज़ से लेकर उसकी अदायगी की पक्की नीयत रखे और अदा की कोशिश भी करे और अगर इस पर भी अदा न हो सका तो उम्मीद है कि हक़ तआला उसके क़र्ज़ को अदा फ़रमा देंगे क्योंकि उसने दीन की हिफ़ाज़त के लिए निकाह किया था और उसमें मक़रूज़ हो गया था, मगर फ़ुज़ूलियात के लिए यह क़र्ज़ जाइज़ नहीं बल्कि नान व नफ़्क़ा के लिए या महर के लिए जहाँ महर फ़ौराज़ लिया जाता हो। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

जिसको निकाह करने की हैसियत न हो वह क्या करे?

एक शख़्स मेरे पास आया, उसपर ख़्वाहिशे नफ़्सानी का ग़लबा था मगर ग़रीब-नादार था। इतनी क़ुदरत न थी कि वह निकाह कर सके। उसने मुझसे अपनी हालत बयान की और इलाज का तालिब हुआ। अभी मैं उसको जवाब भी न देने पाया था कि मेरे बोलने से क़ब्ल उसकी गुफ़्तगू सुनते ही (ग़ैर-मुक़ल्लिद साहब) बोले कि रोज़े रखा करो क्योंकि हदीस में आया है— "जो शख़्स निकाह करने की इस्तताअत न रखता हो उसको रोज़े रखना चाहिए।" उस शख़्स ने जवाब दिया कि मैंने रोज़े भी रखे थे मगर उससे भी मेरी ख़्वाहिश कम नहीं हुई। उसका यह जवाब सुनकर उन (ग़ैर-मुक़ल्लिद) साहब के पास कोई जवाब न था।

मैंने उन साहब को सुनाकर उस शख़्स से दर्याफ़्त किया कि तुमने कितने रोज़े रखे थे? उसने कहा, दो रोज़े रखे थे। मैंने कहा कि यही वजह है कि तुमको कामयाबी नहीं हुई, क्योंकि तुमको

कसरत से रोज़े रखने चाहिए थे और यह शर्त ख़ुद इस हदीस पाक से साबित है और वह इस तरह कि हुज़ूर (सल्ल०) का इर्शाद है– 'फ़-अलैहि बिस्सौम'। लफ़्ज़ 'अला' लुज़ूम के लिए आता है और लुज़ूम की दो क़िस्में हैं– एक लुज़ूम एतिक़ादी, दूसरी अमली। मगर दलाइल से यहाँ ज़ोम एतिक़ादी तो मुराद नहीं हो सकता।

क्योंकि यह सौम (रोज़ा रखना) फ़र्ज़ नहीं महज़ इलाज है, बस लुज़ूम अमली मुराद होगा और लुज़ूम अमली होता है तकरार व कसरत से। चुनांचे जब कोई शख़्स किसी काम को बार-बार और कसरत से करता हो तो समझा जाता है कि यह काम उसने अपने ऊपर अमली तौर पर लाज़िम कर लिया है, पस मुराद हुज़ूर की यह है कि कसरत से रोज़े रखो। और मुशाहिदा है कि क़ुव्वते बहमिया (शहवानी क़ुव्वत) के इंकिसार (तोड़ने) के लिए जो कि इलाज का हासिल है थोड़े रोज़े काफ़ी नहीं, बल्कि कसरते सौम पर यह असर मुरत्तब होता है। यही वजह है कि शुरू रमज़ान में ज़ोफ़ (कमज़ोरी) नहीं होता और आख़िर रमज़ान में ज़ोफ़ हो जाता है।

और यह तजुर्बा है कि शुरू में तो क़ुव्वत बहमिया नहीं होती बल्कि रतूबात फ़ज़लिया की सोख़्त हो जाने की वजह से उसमें क़ुव्वत और इर्तआश (जोश) होता है फिर रफ़्ता-रफ़्ता ज़ोफ़ बढ़ जाता है यहाँ तक कि आख़िर में पूरा ज़ोफ़ हो जाता है जिससे क़ुव्वते बहमिया शिकस्ता हो जाती है क्योंकि उस वक़्त रोज़े की कसरत मुस्तहक़्क़िक़ हो जाती है।

वह साइल तो चला गया मगर मुजतहद साहब फिर कभी नहीं बोले। मेरे पास उनका ख़त आया था कि मैं तुम्हारा इम्तहान लेने आता हूँ और उन ही ग़रीब का इम्तिहान हो गया। (ऐज़न)

लड़के और लड़की की शादी करना बाप के ज़िम्मे वाजिब है या नहीं, ताख़ीर करने से कितना गुनाह होगा?

सवाल : लड़कियों की शादी करने का कोई ताकीदी हुक्म

ख़ासतौर से है या नहीं? और ताख़ीर की सूरत में कोई गुनाह लाज़िम आता है या नहीं? अगर लाज़िम आता है तो किस क़द्र? नस (क़ुरआन व हदीस) से अलग-अलग जवाब दें।

जवाब : शादी का ताकीदी हुक्म क़ुरआन में भी है और हदीस में भी। निकाह कर लेने की ताकीद ख़ासतौर पर है जिसमें लड़का-लड़की दोनों शामिल है और लड़कियों के लिए ख़ुसूसियत से भी قَالَ اللهُ تَعَالٰى وَاَنْكِحُوا الْاَيَامٰى مِنْكُمْ الاٰية यह अम्र का सेग़ा है जिसका मदलूल वजूब और अयामी जमा ऐम की है। शराह हदीस ने तशरीह की है—

اَلْاَيِّمُ مَنْ لَا زَوْجَ لَهَا بِكْرًا كَانَتْ اَوْ ثَيِّبًا وَّ يُسَمّٰى الرَّجُلُ الَّذِىْ لَا زَوْجَةَ لَهٗ اَيِّمًا اَيْضًا.

क़ुरआन पाक की आयत का तर्जमा है कि तुम लोग अयामा का निकाह कर दिया करो और अयाम ऐम की जमा है जिसका मतलब यह है कि ऐसी लड़की जिसका शौहर न हो ख़्वाह बाकरह हो या सेबह यानी कुँवारी हो या ब्याही इसी तरह ऐम उस मर्द को भी कहते हैं जिसकी बीवी न हो।

अब रह गई हदीस तो मिश्कात शरीफ़ बाब ताजलुस्सलाह में हज़रत अली (रज़ि०) से मरवी है—

اِنَّ النَّبِىَّ قَالَ يَا عَلِىُّ ثَلَاثٌ لَا تُؤَخِّرْهَا الصَّلٰوةُ اِذَا اَتَتْ وَالْجَنَازَةُ اِذَا حَضَرَتْ وَالْاَيِّمُ اِذَا وَجَدْتَ لَهَا كُفُوًا

(رواه الترمذى)

तर्जमा : हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया ऐ अली तीन चीज़ों में ताख़ीर न करो, एक तो नमाज़ जब उसका वक़्त आ जाए, दूसरे जनाज़े में जब वह तैयार हो जाए, तीसरे बेनिकाह लड़के और लड़की की शादी में जब कि जोड़ मिल जाए।

عَنِ ابْنِ عَبَّاسٍ قَالَ قَالَ رَسُوْلُ اللهِ مَنْ وُّلِدَ لَهٗ وَلَدٌ فَلْيُحْسِنْ اِسْمَهٗ وَاَدَبَهٗ فَاِذَا بَلَغَ فَلْيُزَوِّجْهُ فَاِنْ بَلَغَ وَلَمْ يُزَوِّجْهُ فَاَصَابَ اِثْمًا فَاِنَّمَا اِثْمُهٗ عَلٰى اَبِيْهِ.

(مشكوة باب اول)

तर्जमा : हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि जिसकी

औलाद लड़का या लड़की) हो उसको चाहिए कि अच्छा नाम रखे उसकी तालीम व तर्बियत करे जब बालिग़ हो जाए तो निकाह कर दे बालिग़ होने के बाद अगर निकाह नहीं किया और वह किसी गुनाह में मुब्तला हो गई तो उसका गुनाह बाप पर होगा।

عَنْ عمر بن الخطاب-----------عن رسول الله قال فى التوراة مكتوب من بلغت ابنته الثنى عشرة سنة ولم يزوجها فاصابت اثما فاثم ذالك عليه رواهما البيهقى فى شعب الايمان.

तर्जमा : हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि तौरात में लिखा था कि जिसकी लड़की बारह साल की हो गई और उसने निकाह नहीं किया, फिर वह किसी गुनाह में फँस गई तो उसका गुनाह उसके बाप पर होगा।

इन रिवायातों से इस हुक्म का मुअक्किद होना मालूम हुआ और मुअक्किद (ज़रूरी) का तर्क करना मूजिबे-मुआख़िज़ह (अज़ाब का बाइस) होता है।

और आख़िर की हदीसों से गुनाह की मिक़दार भी मालूम हो गई कि ताख़ीर की सूरत में जिस गुनाह में यह औलाद मुब्तला होगी ख़्वाह निगाह का गुनाह या कान का गुनाह या ज़बान का गुनाह या दिल का गुनाह इतना ही गुनाह उस साहिबे औलाद यानी बाप को होगा। वल्लाहु आलम। (इम्दादुल-फ़तावा)

फ़स्ल (1)

बीवी के बयान में बीवी के फ़ज़ाइल

मुनाफ़े व फ़वाइद

ख़ुदा तआला ने यह ताल्लुक़ ही ऐसा बनाया है कि बीवी से ज़्यादा कोई भी इंसान को राहत नहीं दे सकता। बीमारी में बाज़ दफ़ा सारे अज़ीज़ अलग होकर नाक-मुँह चिढ़ाने लगते हैं, ख़ुसूसन अगर किसी को दस्तों की बीमारी हो जाए (तो कोई क़रीब नहीं आता), मगर बीवी से यह भी नहीं हो सकता कि वह शौहर को इस हाल में छोड़ दे। वह बीमारी में सबसे ज़्यादा राहत पहुँचाती है।

बीवी सबसे गहरी दोस्त है

बीवी से बढ़कर दुनिया में कोई दोस्त नहीं हो सकता। तजुर्बा है कि ज़मानाए-इफ़लास व मुसीबत में सब अहबाब अलग हो जाते हैं और माँ-बाप तक इंसान को छोड़ बैठते हैं मगर बीवी हर हाल में मर्द का साथ देती है। इसी तरह बीमारी में जैसी राहत बीवी से पहुँचती है किसी दोस्त से, बल्कि माँ-बाप से भी नहीं पहुँचती। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि बीवी के बराबर दुनिया में मर्द का कोई दोस्त नहीं। (हुक़ूक़ुल-हिय्यत)

औरतों की अहमियत और उनकी ख़िदमत की क़द्र

फ़रमाया कि औरतों की ख़िदमत से मेरे ऊपर ख़ास असर होता है लौंडियों की तरह ख़िदमत करती हैं हर वक़्त काम करती फिरती हैं। अगर यह अपनी शान जानने के बाद ख़िदमत करती

तो बहुत दूर पहुँचती। उनकी ख़िदमत पर मैं कहा करता हूँ कि उनको अपना मुहताज इलैह होना (यानी यह कि मर्द औरतों के मुहताज हैं) मालूम नहीं, वरना मर्दों को हक़ीक़त नज़र आ जाती। हदीस में जो आया है—

(ع) حبب الی ثلث النساء والطیب 'हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि मुझको तीन चीज़ें महबूब हैं— औरत, ख़ुश्बू, मिस्वाक।

बीवी बड़ी मोहसिन है

औरतों का एक हक़ तो इस वास्ते है कि वे बेकस-बेबस हैं, दूसरे इस वास्ते भी हक़ है कि वे तुम्हारी दोस्त हैं जैसा कि ऊपर मालूम हो चुका है कि दोस्ती की वजह से हक़ बढ़ जाता है। फिर वे तुम्हारे दीन की भी मुहाफ़िज़ हैं।

ग़रज़ बीवी इस लिहाज़ से भी क़ाबिले क़द्र है कि उससे दीन की हिफ़ाज़त और ख़्यालाते फ़ासिदा की रोक होती है। इस दर्जे में वे बड़ी मोहसिन हैं। जो लोग दीनदार हैं वे इस एहसान की क़द्र करते हैं। इसलिए बीवी की क़द्र करना चाहिए क्योंकि वे दीन व दुनिया दोनों की मुईन हैं और उसके हुक़ूक़ की रिआयत बहुत ज़रूरी है क्योंकि इसमें चन्द दर चन्द ख़ुसूसियात हैं जिसमें से हर एक सिफ़त के बहुत-से हुक़ूक़ हैं। (अत-तबलीग़)

बीवी की क़ुर्बानी और सबसे बड़ा कमाल

बीवी कैसी, भी हो फूहड़ हो या बदतमीज़, उसने तुम्हारे लिए अपनी माँ को छोड़ा, अपने बाप को छोड़ा, सारे कुंबे को छोड़ा। अब उसकी नज़र सिर्फ़ तुम्हारे ही ऊपर है जो कुछ है उसके लिए एक शौहर का दम है। बस इंसानियत की बात यही है कि ऐसी वफ़ादार को किसी क़िस्म की तकलीफ़ न दो। (अत-तबलीग़)

बीवी का सबसे बड़ा कमाल यह है कि आपकी ख़ातिर उसने अपने सब ताल्लुक़ात को छोड़ दिए।

चुनाँचे अगर उसके माँ-बाप या किसी अज़ीज़ के साथ शौहर की अनबन हो जाए तो औरत अमूमन शौहर का साथ देती है,

माँ-बाप का साथ नहीं देती। मगर इस पर भी बाज़ मर्द उन पर बहुत ज़्यादती करते हैं बावजूद इसके कि वे उन पर ऐसी फ़िदा हैं। मगर बाज़ लोग उनके साथ जूते ही से बात करते हैं, बाँदी और गुलाम से भी बदतर रखते हैं और बाज़ लोग खाने-कपड़े की भी ख़बर नहीं रखते। (मजालिस हकीमुल-उम्मत रह०)

औरत के एहसानात

मैं कहता हूँ कि अगर बीवी कुछ भी घर का काम न करे सिर्फ़ इंतिज़ामात और देख-भाल ही करे तो यही इतना बड़ा काम है, जिसकी दुनिया में बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें हैं और मुंतज़िम (इंतिज़ाम करनेवाले) की बड़ी इज़्ज़त व क़दर की जाती है। देखिए वायसराय ज़ाहिर में कुछ काम नहीं करता क्योंकि उसके तहत में इतना बड़ा अमला काम करने वाला होता है कि उसको ख़ुद किसी काम में हाथ लगाने की ज़रूरत नहीं, होती मगर उसकी जो इतनी बड़ी तनख़्वाह और इज़्ज़त है महज़ ज़िम्मेदारी और इंतिज़ाम की वजह से है। पस बीवियों का यही काम इतना बड़ा है कि जिसका बदला नान-नफ़्क़ा नहीं हो सकता। मगर हम तो शरीफ़ ज़ादियों को देखते हैं वे ख़ुद भी अपने हाथ से घर का बहुत काम करती हैं, ख़ुसूसन बच्चों की बड़ी मेहनत से परवरिश करती हैं कि यह वह काम है कि तनख़्वाहदार मामा कभी बीवी के बराबर नहीं कर सकतीं। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

एक मौलवी साहब कहते थे कि औरतों के ज़िम्मे खाना पकाना वाजिब है। मेरी राय है कि उनके ज़िम्मे वाजिब नहीं। मैंने अदम वजूब पर इस आयत से इस्तदलाल किया है—

وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوْٓا اِلَيْهَا

हासिल यह है कि औरतें इस वास्ते बनाई गई हैं कि उनसे तुम्हारे क़ल्ब को सुकून हो, जी बहले, तो औरतें जी बहलाने के वास्ते हैं न कि रोटियां पकाने के लिए।

बग़ैर बीवी के घर का निज़ाम व इंतिज़ाम दुरुस्त नहीं रह सकता

तजुर्बा है कि बग़ैर बीवी के घर का इंतिज़ाम दुरुस्त नहीं हो सकता। बस मर्द का काम तो इतना है कि यह माल जमा कर देता है बहुत औरतों ही से मैंने बाज़ रऊसा को देखा है कि माल व दौलत उनके पास बहुत कुछ था, मगर बीवी न थी तो उनके घर का कुछ भी ढंग व इंतिज़ाम न था। लाख बावर्ची रखो, नौकर रखो, वह राहत कहाँ जो बीवी से होती है। बावर्ची तो तनख़्वाह का मुलाज़िम है, एक दिन तुमने कोई ज़रा-सी सख़्त बात उससे कह दी तो वह हाथ झाड़कर अलग हो जाता है। फिर मुसीबत का सामना होता है। रोटी अपने हाथ से पकाओ, चूल्हा झोंको, बर्तन धोओ, और बीवी से यह कब हो सकता है कि मर्द को अपने हाथ से पकाने दे।

फिर तजुर्बा है कि अगर बीवी के सामने भी नौकरों से काम लिया जाए और बग़ैर बीवी के भी उनसे काम लिया जाए तो दोनों सूरतों में आसमान व ज़मीन का फ़र्क़ होगा। घर की मालिक के सामने मामाएँ और नौकरानियाँ ज़्यादा चोरी नहीं कर सकतीं और उसके बग़ैर तो घर कापड़ा हो जाता है।

अलबत्ता अगर कोई मर्द घर का काम ख़ुद भी जानता हो तो उससे तो नौकर ज़रा दबते हैं गो औरत जैसा इंतिज़ाम फिर भी नहीं होता। (अत-तबलीग़)

मैं कहता हूँ कि तुम्हारे खाने कपड़े (नान-नफ़क़ा) के एवज़ में बीवियाँ तुम्हारी इस क़द्र ख़िदमत करती हैं कि इतनी तनख़्वाह में कोई नौकर या मामा हरगिज़ नहीं कर सकतीं। जिसको शक हो वह तजुर्बा करके देख ले। बग़ैर बीवी के घर का इंतिज़ाम हो ही नहीं सकता चाहे तुम लाख मुलाज़िम रखो। हमने बाज़ लोगों को देखा है जिनकी माक़ूल तनख़्वाह थी, मगर बीवी न थी। नौकरों

के हाथों ख़र्च था तो उनके घर का ख़र्च इस क़द्र बढ़ा हुआ था जिसकी कुछ हद नहीं, निकाह ही के बाद घर का इंतिज़ाम हुआ।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

फ़स्ल (2)

दुनिया से नावाक़िफ़ देहाती औरतों की ख़ूबी

फ़रमाया, क़सबात की औरतें कज-अख़्लाक़, कज-फ़ह्म (नासमझ) और बेसलीक़ा होती हैं, लेकिन उनका कमाल है कि उनमें चालाक और दग़ाबाज़ नहीं होतीं इसके बरअक्स उनमें अफ़ीफ़ पाक दामन निहायत दर्जे की होती हैं।

(मलफ़ूज़ात ख़बरत)

कुरआन पाक में औरतों के बारे में आया है – الْغٰفِلٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ 'अल-ग़ाफ़िलातुल मुमिनात'। इससे मालूम हुआ कि ख़ारजियात से बेख़बरी औरतों की असल वज़अ (फ़ितरत) है। गोया यहां आयत में ग़फ़लत 'अनिल फ़वाहिश' मुराद हो सकती है लेकिन इसके बावजूद औरतों की मदह में इसको लाए हैं, मर्दों के लिए नहीं फ़रमाया। इससे साफ़ मालूम हुआ कि मुतलक़ बेख़बरी भी औरतों के लिए ज़्यादा मुनासिब है। अब नालायक़ कहते हैं कि परदा तोड़कर बेपरदा हो जाओ और तरक़्क़ी करो। अजीब गोबर दिमाग़ों में भरा है (अल-इफ़ाज़ातुल- यौमिया) और अगर सब हुनर हों लेकिन हया न हो तो वह सब कुछ है मगर औरत नहीं।

और निकाह के मसालेह के लिए चाहिए कि औरत के निकाह में मसालेह निकाह की रिआयत सबसे मुक़द्दम है जो औरत की बेहयाई होते हुए सब गर्द (बेकार) है, (इस्लाहे-इंक़िलाब)। वाक़ई हिन्दुस्तान की औरतें अकसर ऐसी हैं कि उनको अपने कोने के सिवा दुनिया की कुछ ख़बर नहीं होती। बस उनकी वह शान है

जो हक़ तआ़ला ने बयान फ़रमाई है कि اَلْمُحْصَنٰتُ الْغٰفِلٰتُ الْمُؤْمِنٰتُ

तर्जमा : यानी वो पाक दामन हैं और भोली हैं, चालाक नहीं हैं।

हक़ तआ़ला औरतों के भोलेपन और बेख़बरी की तारीफ़ फ़रमाते हैं तो समझ लो इसी में ख़ैर है और उस ख़बरदारी में ख़ैर नहीं जिसको तुम तजवीज़ करते हो, तजुर्बा ख़ुद बतला देगा। क़ुरआन की तालीम यह है कि औरतों के लिए ग़ाफ़िल व बेख़बर होना ही अच्छा है यह सिफ़त हिन्दुस्तान की औरतों में बेनज़ीर है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

बद अख़्लाक, बद सलीक़ा, और फूहड़ औरतों की ख़ूबी

एक साहब ने अर्ज़ किया है कि बाज़ औरतें फूहड़ (बद सलीक़ा) होती हैं इस वजह से बाज़ औक़ात ख़ाविंद को उसकी हरकात से बददिली हो जाती है।

फ़रमाया, औरत का फूहड़ होना तो अपने एक ख़ास असर के सबब ऐसे कमाल की सिफ़त है जो निहायत ही महबूब और क़ाबिले क़द्र चीज़ है और वह ख़ास असर अफ़ीफ़ होना है। फूहड़ औरतें अकसर अफ़ीफ़ होती हैं। ब-ख़िलाफ़ औरतों के कि वे हर वक़्त बनाओ, शृंगार और तसनीअ और ज़ाहिरी तहज़ीब व सफ़ाई में रहती हैं।

इसी तरह बाज़ औरतें बद मिज़ाज, बद ख़ुल्क़ होती हैं मगर मुझको ऐसी औरतों की इफ़्फ़त में शुबह नहीं होता और ग़ैर-अफ़ीफ़ ख़ुल्क़ जो बस चिकनी-चुपड़ी रहती हैं मुझे उन पर शुबह। होता है और फिर ज़ाहिरी अख़्लाक भी शाइस्ता होते हैं यह ख़तरनाक होती हैं। अपनी चालाकियों से अपनी शरारतों को बिल्ली की ग़लाज़त की तरह छुपाती हैं और मर्द को (बेवक़ूफ़) और गर्वीदा बनाए रखती हैं। ऐसी औरतों पर मुझे इत्मीनान नहीं होता। और फूहड़ औरत का फूहड़पन गो तबअन नागवार होता है,

वह इसलिए कि भंगन-सी बनी हुई है। न बात में मज़ा, न उठने-बैठने में तमीज़, न खाना पकाने का सलीक़ा, न बच्चों की ख़बर गीरी और ख़िदमत। मगर एक सिफ़त इफ़्फ़त की वजह से उसकी तमाम बुराइयाँ और बद-तमीज़ियाँ मुबद्दल बाकमाल हो जाती हैं कि वे अफ़ीफ़ होती हैं मुझको ऐसी औरतों पर बेहद इत्मीनान है। अफ़ीफ़ होने की वजह से वह बनावटी बातों से मुस्तग़ना हैं इस बिना पर यह औरत का एक बहुत बड़ा जौहर है, उसकी क़द्र करना चाहिए (नुसरतुन निसा)। मेरा तजुर्बा है कि जो औरतें इंतिज़ाम में फूहड़ बद नज़्म व बद सलीक़ा होती हैं उनमें जौहरे- इफ़्फ़त पूरा होता है अगर कोई शख़्स उसमें मुब्तला हो तो उसको चाहिए कि उसकी इफ़्फ़त व पाक दामनी के आला वस्फ़ का इस्तहज़ार किया करे ताकि दिल की कदूरत दूर हो जाए। क़ुरआन की यही तालीम है–

عَسٰى اَنْ يَّجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِنَّ خَيْرًا كَثِيْرًا

"कुछ बईद नहीं कि अल्लाह तआला उनमें ही ख़ैरे-कसीर और बड़ी भलाई अता फ़रमा दें।"

बूढ़ी बीवी की क़द्र

आजकल तो बाज़ लोग बूढ़ी बीवी से नफ़रत करने लगते हैं, हालाँकि तुमने ही तो उसको बूढ़ा किया है।

मौलाना फ़ज़्लुर्रहमान साहब ने फ़रमाया : पुरानी बीवी अम्मा हो जाती है इस तरह कि शुरू-शुरू में तो उसमें लज़्ज़त होती है मगर फ़वाइद अख़ीर में बढ़ते हैं कि मूनिस होती है, ख़िदमतगुज़ार होती है, अक़लवालों के नज़दीक़ ज़्यादा नज़र के क़ाबिल फ़वाइद होते हैं न कि लज़्ज़त।

मैं कहा करता हूँ कि मुहब्बत का ज़माना तो जवानी का होता है, उस वक़्त जानबीन में जोश होता है और हमदर्दी का ज़माना ज़ईफ़ी का है दोनों का और देखा भी जाता है कि ज़ईफ़ी की

हालत में सिवाए बीवी के कोई दूसरा काम नहीं आ सकता।

मौलाना मुहम्मद मज़हर साहब (मदरसा मज़ाहिरुल-उलूम) की यह हालत थी कि उनकी बीवी बूढ़ी हो गई थीं मगर मौलाना को उनसे ऐसा ताल्लुक़ था कि जब वे ज़रा बीमार होतीं तो मौलाना फ़ौरन मदरसे से रुख़सत लेकर ख़ुद अपने हाथ से उनकी ख़िदमत करते थे। नौकर और मामाओं पर अपनी बीवी की ख़िदमत को न टालते थे, बल्कि मदरसे से रुख़सत लेकर ख़ुद ख़िदमत करते थे।

(अत-तबलीग़)

एक हिकायत

ज़ईफ़ी और हमदर्दी पर एक हिकायत याद आई। एक विलायती रईस थे। गवरमेंट में उनका बड़ा ऐजाज़ और बड़ी क़द्र थी। उनकी बीवी का इंतिक़ाल हो गया। कलेक्टर साहब ताज़ियत के लिए गए। कलेक्टर साहब ने फ़रमाया कि आपकी बीवी का इंतिक़ाल हो गया। हमको बड़ा रंज हुआ। इस पर विलायती साहब अपनी टूटी-फूटी ज़बान में फ़रमाने लगे, कलेक्टर साहब वह हमारा बीवी न था, वह हमारा माँ था हमको गरम-गरम रोटी खिलाता था, पंखा झलता था, ठंडा-ठंडा पानी पिलाता था यह कहते जाते थे और रोते जाते थे।

ख़ैर ये तो विलायती थे, कुछ ऐसे पढ़े-लिखे न थे। अपनी सादगी से ऐसा कह दिया, मगर एक हिन्दू लीडर ने अपने लेक्चर में यही कहा कि यह मेरी बीवी नहीं अम्मा है। यह मैंने ख़ुद अख़बार में देखा है, यह तो तालीम-याफ़ता है। उसको क्या सूझी, यह भी कोई फ़ख़्र की बात थी। मैं यह कह रहा था कि ज़ईफ़ी में सिवाए बीवी के कोई काम नहीं आता।

फ़स्ल (३)

हिन्दुस्तानी औरतों के फ़ज़ाइल

शौहरों से इश्क़

मैं कहा करता हूँ कि हिन्दुस्तान की औरतें हूरें हैं। वे हुस्न व जमाल में नहीं, बल्कि अख़्लाक में हिन्दुस्तान की औरतों में बहुत से फ़ज़ाइल हैं।

ये हिन्दुस्तान की औरतें ख़ुसूसन हमारे अतराफ़ की औरतें तो वाक़ई जन्नत की हूरें हैं, जिनकी शान में 'उरबन' यानी आशिक़ातुल-अज़्वाज (अपने शौहरों की आशिक़ हैं)। चुनांचे मर्दों पर फ़िदा हैं कि मर्दों की ईज़ा को हर तरह सहती हैं और सब्र करती हैं। कुछ जगहों पर तो हालत यह है कि जहाँ औरत मर्द में नाइत्तिफ़ाक़ी हुई और औरत ने क़ाज़ी के यहाँ दावा दायर कर दिया और अनवस्त का ख़ास्सा है कि हाकिम औरत ही को मज़लूम समझता है इसलिए अमूमन उन्हीं को डिगरियाँ मिलती हैं और फ़ौरन मर्द को ख़ुला या तलाक़ पर मजबूर किया जाता है।

हिन्दुस्तान में यह हालत है अव्वल तो कोई औरत ख़ुला व तलाक़ को गवारा नहीं करती और जो सख़्त मुसीबत में ख़ुला की दरख़्वास्त करती भी है तो यह हाल होता है कि कानपुर में एक क़स्बे में क़ाज़ी साहब के कहने से मर्द ख़ुला पर राज़ी हो गया फिर जब उसने औरत को तलाक़ दी है तो हालांकि ख़ुद उसी की दरख़्वास्त पर दी थी लेकिन तलाक़ देते ही वह दहाड़ें मारकर रोती थी कि हाय मैं बर्बाद हो गई, हाय मैं तबाह हो गई।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

इफ़्फ़त व पाक दामनी

एक बड़ी सिफ़तें इफ़्फ़त (पाक दामनी) की तो उनमें ऐसी है कि उसको देखते हुए यह आयत उन पर सादिक़ आती है—

فِيهِنَّ قٰصِرٰتُ الطَّرْفِ لَمْ يَطْمِثْهُنَّ إِنْسٌ قَبْلَهُمْ وَلَا جَانٌّ

"यानी हक़ तआला ने हूरों की तारीफ़ में बयान फ़रमाया है कि वे अपनी निगाहों को शौहर ही पर मुंहसिर करनेवाली होंगी, किसी ग़ैर पर नज़र न डालेंगी।"

वाक़ई हिन्दुस्तान की औरतें इस सिफ़त में तमाम मुमालिक की औरतों से मुमताज़ हैं। हमने देखा है कि बाज़ मर्द बदसूरत भी होते हैं, मगर उनकी बीवियाँ बजुज़ उनके शौहर के किसी की तरफ़ आँख उठाकर नहीं देखतीं। वाक़ई हिन्दुस्तान की औरतें तो इस सिफ़त में हूरें हैं, अपने शौहरों की वे आशिक़ होती हैं ख़्वाह शौहर कैसा ही हो।

घरों में बैठने वालियाँ तो हैं ही यहाँ तक कि बाहर फिरने वालियां भी अकसर पाक व साफ़ हैं। जब घर से निकलती हैं तो निगाहें नीचे किए हुए घूँघट निकाले हुए रास्ते में किसी को सलाम तक नहीं करतीं। उनको मर्दों से शर्म होती ही है। ग़ैर औरतों से और बड़ी उम्रवाली औरतों से भी शर्म आती है। अगर कोई मर्द उनसे बात पूछे तो अकसर जवाब नहीं देतीं या देती हैं तो सिर्फ़ इशारे से।

बाहर फिरनेवालियों की इफ़्फ़त का भी यही हाल है कि अपने मर्द के सिवा दूसरी तरफ़ कभी तमाम उम्र भी उनका ख़्याल न गया होगा। यूँ सौ पचास में कोई एक बदज़ात हो जाए तो क़ाबिले शुमार नहीं और अगर औरतों को किसी में यह ऐब मालूम हो जाए तो उसको बिरादरी से ख़ारिज कर देती हैं। मैं तो कहता हूँ कि एक फ़ीसद निकलेगा जो नज़र या ख़्याल से महफ़ूज़ हो और औरतों में शायद एक फ़ीसद निकले जो नापाक हो।

हिन्दुस्तान की औरतों को अपने शौहरों के सिवा किसी की तरफ़ मैलान नहीं होता। बाज़ लोगों को उम्र भर ग़ैर मर्द का वस्वसा तक नहीं आता और अगर उनको किसी ग़ैर का मैलान अपनी तरफ़ मालूम हो जाए तो उससे सख़्त नफ़रत हो जाती है।

यहाँ की यही तहज़ीब है मगर यूरोप की यह तहज़ीब है कि अगर वहाँ की औरतें किसी को अपनी तरफ़ माइल देखती हैं तो उसकी ख़ूब ख़ातिर-मदारात करती हैं। और हिन्दुस्तान की औरतों को जो अपने मर्दों के साथ इस क़द्र ताल्लुक़ है यह ज़मीने- हिन्द का ख़ास्सा है और सती की रस्म का मंशा यही ताल्लुक़ है, गो यह ग़ुलू है। तो हिन्दुस्तान का मज़ाक़ मैलानुन्निसा इलर्रिजाल है और अरब का मज़ाक़ मैलानुर्रिजाल इलन्निसा है और सबसे गंदा मज़ाक़ फ़ारस का है यानी मैलानुर्रिजाल इलर्रिजाल।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

सब्र व तहम्मुल

ये बेचारी अमूमन बेकस व बेबस होती हैं कि किसी से कुछ शिकायत कर ही नहीं सकतीं और अगर किसी के माँ-बाप ज़िंदा हों, जब भी शरीफ़ औरतें अपने ख़ाविंद की शिकायत किसी से नहीं करतीं, (अत-तबलीग़)। अरब, भोपाल में सुना है कि आए दिन औरतें क़ाज़ी के यहाँ खड़ी रहती हैं। ज़रा उनके आराम में कमी हुई अदालत में पहुंचीं। यहाँ की तरह नहीं कि औरतें अदालत के नाम से भी कांपती हैं चाहे मर जाएँ, मगर अदालत में नहीं जा सकतीं। यूँ आपस में अज़ीज़ों में हज़ार बातें हज़ार शिकायतें कर लेंगी यह तो उनका मशग़ला ही है। मगर जब कचहरी का नाम आएगा तो कानों पर हाथ रख लेंगी कि ख़ुदा न करे जो हाकिम के यहाँ जाएँ। मैं यह नहीं कहता कि हमारे अतराफ़ की कोई औरत भी ऐसी नहीं जो अदालत में जाती हो। हज़ारों में एक दो ऐसी बस्ती भी निकलेंगी, मगर ग़ालिब हालत औरतों की इस इलाक़े में यही है कि अदालत जाने से घबराती हैं।

(अत-तबलीग़)

कसरे नफ़्सी व हक़ वज़ाई

अरब या बाज़ हिन्दुस्तानी रियासतें कि वहाँ औरत क़ाज़ी के यहाँ जाकर नालिश कर देती है। अब या तो क़ाज़ी की तजवीज़

के मुवाफ़िक़ नान व नफ़्क़ा देना पड़ता है वरना जबरन तलाक़ दिलवाई जाती है, जिसके बाद फ़ौरन औरत की तरफ़ से महर की नालिश हो जाती है और बाज़ मुमालिक में निकाह के वक़्त ही महर पेशगी धरवा लेते हैं ये बेचारी हिन्दुस्तान ही की औरतें हैं कि जो महर भी माफ़ कर देती हैं और उम्र भर नान व नफ़्क़ा की तकलीफ़ भी सहती हैं। (अत-तबलीग़)

अरब में महर के मुताल्लिक़ यह रसम है कि औरतें मर्दों की छाती पर चढ़कर महर वुसूल करती हैं और हिन्दुस्तान में इसको बड़ा ऐब समझा जाता है। हिन्दुस्तान की औरतें महर को ज़बान पर भी नहीं लातीं और ख़ाविंद के मरतें वक़्त अकसर बख़्श ही देती हैं। (अत-तब्लीग़)

ईसार व जाँनिसारी का जज़्बा, और शौहर की इज़्ज़त का ख़्याल

ग़र्ज़ औरतों में ख़ुसूसन हिन्दुस्तान की औरतों में ऐब ही ऐब नहीं बहुत से फ़ज़ाइल भी हैं। मर्दों की जाँनिसार इस क़द्र हैं कि ख़ाविंद से लड़ेंगी, रोएँगी, झिड़केंगी मगर कब तक जब तक बेफ़िक्री और फ़ुरसत हो और जहाँ ख़ाविंद का ज़रा कान गरम हो उसी वक़्त लड़ाई-झगड़ा सब भूल गईं। अब यह हालत है न खाने का होश है, न पीने का होश है रात भर खड़े गुज़र गई। किसी वक़्त पंखा हाथ से नहीं गिरता। कोई देखने वाला नहीं कह सकता कि ये वही हैं जो एक वक़्त में लड़ रहीं थीं। बस उस वक़्त अपने आपको फ़ना कर देती हैं।

इसी तरह औरतों में ईसार इस क़द्र है कि रोज़मर्रा खाना उस वक़्त खाती हैं जब मर्दों को पहले खिला लेती हैं और अच्छे से अच्छा ऊपर का तार मर्दों के लिए निकालती हैं नीचे का तलचट और बचा-खुचा अपने वास्ते। अगर किसी वक़्त मेहमान बेवक़्त आ गया तो ख़ाविंद की बात को और इज़्ज़त को हरगिज़ नीचा न करेंगी, बल्कि जो कुछ घर में है फ़ौरन मेहमान को खिला देंगी,

ख़ुद फ़ाक़ा करेंगी। ये अख़्लाक़ ऐसे पाकीज़ा हैं कि उनसे बड़े दर्जे हासिल हो सकते हैं। अकसर मर्दों को यह अख़्लाक हासिल ही नहीं।

(अत-तबलीग़)

हिन्दुस्तानी औरतों की वफ़ादारी

वाक़ई हिन्दुस्तान की औरतें दीगर मुमालिक की औरतों से मुमताज़ हैं। ये (औरतें) तो निकाह करके शौहर के साथ ऐसे वाबस्ता हो जाती हैं कि अपने माँ-बाप को अकसर दफ़ा छोड़ देती हैं। चुनांचे अगर उसके बाप या माँ या और किसी अज़ीज (रिश्तेदार) के साथ कभी शौहर की अनबन हो जाए तो औरत अमूमन शौहर का साथ देती है, माँ-बाप का साथ नहीं देती।

ये बेचारी हिन्दुस्तान की औरतें हैं जो महर भी माफ़ कर देती हैं और उम्र भर नान व नफ़्क़ा की तकलीफ़ भी सहती हैं। ख़ैर किसी के पास हो ही नहीं तो उसकी शिकायत नहीं। इस सूरत में तो औरतें ख़ुद मेहनत-मज़दूरी करके शौहर को भी खिलाती हैं।

(अत-तब्लीग़)

अगर ख़ाविंद बेतवज्जोही से या और किसी वजह से लड़-भिड़कर या नादारी की वजह से या क़ैद होकर घर से चला जाए और पचास बरस तक दूर रहे, अपनी ख़बर तक भी न दे कि मर गया हूँ या ज़िंदा हूँ और बीवी की कोई मआश भी न हो उस पर भी वह जिस वक़्त आएगा बीवी को उस कोने में बैठा देख लेगा, जिसमें छोड़कर गया था। आँखों से देख लेगा कि नामुराद मर रही है, सड़ रही है, मर्दों से बदतर हालत है मगर यह नहीं हुआ होगा कि अमानत में ख़यानत की हो या किसी और पर निगाह डाली हो। यह सिफ़त ऐसी है कि इसके वास्ते सब नाज़ गवारा किए जा सकते हैं। इस सिफ़त के सामने किसी ऐब पर भी नज़र नहीं पड़ना चाहिए। (अत-तबलीग़)

कानपुर में देखा गया है कि बाज़ औरतों ने ख़ाविंद के ज़ुल्म

और मार-कुटाई से तंग आकर क़ाज़ी जी के यहाँ जाकर तलाक़ लेने की दर्ख़्वास्त की। क़ाज़ी जी ने कोशिश करके तलाक़ दिलवा दी। सारी उम्र की मुसीबतों और पिटाई की वजह से तलाक़ ले तो ली मगर तलाक़ के वक़्त ज़ारो-क़तार रोती हैं और यह हालत कि मर जाएंगी या ज़मीन फट जाए तो उसमें समा जाएँ।

औरतों की यह बात क़ाबिले-क़द्र है कि उनको ख़ाविंद से इश्क़ होता है। हमारी औरतों में मुहब्बत का माद्दा इस क़द्र है कि सचमुच इश्क़ का मर्तबा है फिर क्या उसकी यही क़द्र है कि उनको तकलीफ़ दी जाए या ज़रासी नागवारी पर उनको अलग कर दिया जाए। (अत-तब्लीग़)

बेवा औरत के बयान में

बेवा औरत का निकाह

जिहालत की कसरत के सबब से अकसर लोग बेवा के दूसरे निकाह को मायूब समझते हैं। बाज़ जगह तो यहाँ तक ग़ज़ब सुना है कि मंगनी होने के बाद अगर लड़का मर गया तो फिर लड़की को तमाम उम्र बिठलाए रखा और यह ब-कसरत है कि शादी के बाद बचपन या जवानी में बेवा हो गई बस अब उसकी शादी करना गोया बड़ा गुनाह समझा जाता है।

बाज़ लोग अगरचे इल्मे-दीन और वाज़ के चर्चों के सबब से अब इस दर्जे का ऐब नहीं समझते, ताहम जिस तरह उस लड़की की पहली शादी की फ़िक्र थी दूसरी शादी की फ़िक्र उससे आधी भी नहीं, यानी कोई एहतिमाम नहीं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

बेवा का निकाह न करना जाहिलियत के ज़माने की रसम है

अरब में भी यह रस्म थी कि जब कोई शख़्स माँ छोड़कर मर जाता तो उसकी बीवी को निकाह न करने देते थे यह रस्म हिन्दुस्तान में भी थी और है कि बेवा का निकाह नहीं करने देते अकसर इसकी वजह यही होती है कि उसकी जायदाद अलाहिदा करनी पड़ेगी। भाइयो! इसकी इस्लाह करनी ज़रूरी है। ख़ुदा के लिए अपनी हालत पर तवज्जोह करो और इस रस्मे जाहिलियत को मिटाने की कोशिश करो। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

बाज़ सूरतों में बेवा का निकाह फ़र्ज़ है

बाज़ सूरतों में निकाह सानी भी निकाह अव्वल की तरह फ़र्ज़ है, मसूलन कोइ औरत जवान है और क़राइन से तबीयत का

तक़ाज़ा मालूम होता है, तजर्रुद (शादी न करने में) रही तो फ़साद में मुब्तला हो जाएगी या नान-नफ़्क़ा की तंगी में पड़ जाएगी, फिर इफ़्लास में आबरू और दीन के ज़ाया होने का एहतिमाल है तो बेशक ऐसी औरत का निकाहे सानी करना फ़र्ज़ होगा।

(इस्लाहुर्रसूम)

कुँवारी के मुक़ाबले में बेवा का निकाह ज़्यादा ज़रूरी है

अगर ग़ौर से काम लिया जाए तो ब-निस्बत पहले निकाह के (जबकि वह कुँवारी थी) दूसरा निकाह उस बेवा का अहम है। क्योंकि पहले तो वह ख़ाली ज़ेहन थी। उसे सालिह ज़ौजियत का इल्म ही न था या सिर्फ़ इल्मुल-यक़ीन था (यानी सिर्फ़ इल्म था) और अब उसको ऐनुल- यक़ीन (यानी मुशाहिदा) हो गया है। इस हालत में वसाविस व हसरात का हुजूम ज़्यादा होता है जिससे कभी सेहत, कभी आबरू, कभी दीन, कभी सब कुछ बर्बाद हो जाते हैं। (इस्लाहे-इंक़लाब)

कुँवारी के मुक़ाबले में ब्याही औरत की निगरानी व हिफ़ाज़त की ज़्यादा ज़रूरत है

आम लोगों का यह ख़्याल है कि कुँवारी की हिफ़ाज़त ज़्यादा ज़रूरी है और ब्याही हुई कि निगहबानी की ज़रूरत नहीं। यह ख़्याल पूरी तरह हिन्दुओं से माख़ूज़ है। इसका मंशा यह है कि अगर कुँवारी से कोई बात हो जाती है तो उसमें बदनामी और रुसवाई होती है और ब्याही से कोई बात हो जाती है तो बदनामी और रुसवाई नहीं होती। क्योंकि उसका तो शौहर है उसकी तरफ़ निसबत की जाएगी, मगर यह ख़्याल महज़ जिहालत पर मब्नी है।

जब इंसान दीन छोड़ता है तो अक़्ल भी रुख़सत हो जाती है। अगर अक़्ल से काम लिया जाए तो मालूम होगा कि कुँवारी की हिफ़ाज़त की इतनी ज़रूरत नहीं जितनी ब्याही हुई के लिए ज़रूरी है। राज़ इसमें यह है कि कुँवारी में क़ुदरती तौर पर शर्म व

हिजाब बहुत होता है, इसलिए उसके साथ एक तबई माने मौजूद है और ब्याही हुई की तबीअत खुल जाती है। माने तबई उसके साथ मौजूद नहीं रहता, इसलिए उसकी इस्मत व इफ़्फ़त महफ़ूज़ रखने के लिए बहुत बड़ी निगहबानी की ज़रूरत है नीज़ कुँवारी को रुसवाई का ख़ौफ़ भी ज़्यादा होता है और ब्याही को इतना ख़ौफ़ नहीं होता। इसलिए ब्याही हुई की तबीअत बुरे कामों पर कुँवारी से ज़्यादा माइल हो सकती हैं। उसकी हिफ़ाज़त कुँवारी से ज़्यादा होनी चाहिए, मगर लोगों ने इसका उलटा रखा है, क्योंकि आजकल इसकी परवाह नहीं की जाती कि इसमत व इफ़्फ़त महफ़ूज़ रहे। सिर्फ़ अपनी बदनामी और रुसवाई की परवाह की जाती है। (अज़्लुल-जाहिलिया)

बेवा औरत का निकाह न करने की ख़राबी

बहुत-सी क़ौमों में अब तक यह जिहालत मौजूद है कि बेवा बैठी रहती है। बाज़ औक़ात यह ग़रीब खाने-पीने से मुहताज हो जाती है अकसर शराफ़ते उर्फ़िया (रसमी शराफ़त) लिए हुए है तो किसी की मज़दूरी नहीं कर सकती और अगर दूसरे घर की मज़दूरी गवारा की तो बाज़ औक़ात (उसी घर में) रहना पड़ता है। चूंकि उसका कोई सरपरस्त नहीं होता, इसलिए बदनफ़्स-परस्त (बुरे ख़्यालात के लोग) उस बेचारी के दर्पे होते हैं। कभी तर्ग़ीब (लालच) और कभी तर्हीब (डरा-धमका कर) किसी हीले बहाने से ख़ासकर जबकि उसमें भी नफ़्सानी ख़्वाहिश हो उसकी आबरू और दीन ख़राब कर देते हैं। (इस्लाहे-इंक़लाब)

बेवा इंकार करे तब भी शफ़्क़त और ख़ैर ख़्वाही का तक़ाज़ा यह है कि उसका निकाह कर दिया जाए

बाज़ लोग कहते हैं कि हमने पूछा था, वह राज़ी नहीं होती। मुझको इसमें भी कलाम है कि जो तरीक़ा पूछने का होता है क्या उसी तरह पूछा था? या चलती हुई बात कह के इलज़ाम उतार

दिया? पूछने पर जो बेवा इंकार करती है उसकी वजह यह है कि वह जानती है कि अगर मैं एकदम से राज़ी हो जाऊंगी तो ख़ानदान के लोग यही कहेंगे कि यह तो मुंतज़िर ही बैठी थी। यह ख़ाविंद को तरस रही थी। इसमें बदनामी होगी। इस ख़ौफ़ से वह ज़ाहिरन (दिखलाने के लिए) इंकार कर देती है।

होना यह चाहिए कि उसको अच्छी तरह मसलिहतें बतलाओ, उसके वसवसे रफ़ा करो। शफ़्क़त और एहतिमाम से गुफ़्तुगू करो, (उसको समझाओ) निकाह होने के फ़वाइद और न होने के नुक़सानात बतलाओ। अगर उस पर भी वह राज़ी न हो तो तुम माज़ूर हो। (इस्लाहे-इंक़लाब)

उम्र रसीदा बच्चोंवाली बेवा निकाह न करे तो कोई हर्ज नहीं

ग़रज़ हत्तुल-इमकान बेवा का निकाह कर ही देना मुनासिब है अलबत्ता अगर कोई बेवा बच्चे वाली हो और उम्र भी ढल गई हो और खाने-पीने की भी गुंजाइश हो और वह इंकार करती हो इसके साथ ही क़राइन से शौहर से उसका इस्तग़ना होना (बेनियाज़ होना) मालूम हो तो उसके लिए एहतिमाम ज़रूरी नहीं।

(इस्लाहे-इंक़लाब)

बेवा औरत पर उसके ससुरालवालों की तरफ़ से ज़ुल्म

बाज़ मुसलमान क़ौमों में यह बात है कि शौहर के मरने के बाद इद्दत में शौहर के घरवाले अपना हक़ समझते हैं। यानी माँ-बाप उसके मालिक नहीं रहते, बल्कि देवर, ससुर मालिक हो जाते हैं बल्कि वह औरत ख़ुद भी अपनी मालिक नहीं रहती, न वह ख़ुद अपना निकाह कर सकती न माँ-बाप कर सकते हैं, बल्कि जहाँ जेठ वग़ैरह करना चाहेंगे वहाँ होगा। मस्लन ससुर चाहे कि अपने छोटे बेटे से निकाह कर दूँ और बाप चाहे कि दूसरी जगह करेगा तो बाप का कुछ ज़ोर न चलेगा और तमन्ना

यह होती है कि बहू घर से बाहर न जाए।

कानपुर में एक देवर से ज़बरदस्ती लड़की का निकाह कर दिया गया। औरत इसलिए मजबूर होती है कि अगर ससुर का कहना न मानूँ तो रोटी न मिलेगी। मेरे पास एक शख़्स आया कि मेरी भावज पर मेरा हक़ है और वह दूसरी जगह निकाह करना चाहती है। ऐसा कोई तावीज़ दो कि वह मुझसे निकाह कर ले। एक और औरत ने अपनी बहू का निकाह एक बच्चे से कर दिया। अफ़सोस यह है कि औरत की अक़्ल पर तो परदा पड़ा ही था मर्दों की अक़्ल भी मारी गई। उनको भी इसका कुछ ख़्याल नहीं होता और इसको अपने नज़दीक़ हल्की बात समझते हैं। नानौता में एक बेवा का निकाह हुआ और रुख़सती हुई मगर वह जाने को राज़ी न हुई, तो उसको जबरन बरात के साथ कर दिया गया और यह कह दिया गया कि वहाँ ले जाकर इसको राज़ी कर लेना।

यहाँ एक निकाह इद्दत में हुआ। जब मैंने पूछा तो कहने लगे कि निकाह की नीयत से नहीं किया। ज़रा बाढ़ लगा दी ताकि किसी और से निकाह न कर सके। मगर उस कमबख़्त ने इद्दत के बाद फिर भी निकाह न किया। इस पर लोग शिकायत करते हैं कि वबा आ गई, ताऊन आ गया जब लोग इस तरह हलाल के परदे में हराम करें तो ताऊन क्यों न आए। (अक़्लुल-जाहिलिया)

ज़ुल्म दर ज़ुल्म

ग़रज़ औरतों पर इस तरह ज़ुल्म हो रहा है कि मर्द हर तरह से उन पर अपना हक़ समझते हैं और इसका इतना आम असर है कि औरत भी अपने आपको उनकी ममलूक समझती हैं और उसको यह भी ख़बर नहीं कि मुझ पर ज़ुल्म हो रहा है बल्कि इससे बढ़कर यह होता है कि कभी यह मज़लूमियत ज़ालिमयत होती है। जैसे किसी ने कहा है कि इस क़द्र सिम्टी परेशानी की जमीअत हुई मसूलन शौहर मर गया और कुछ छोड़ा नहीं, सिर्फ़

बीवी छोड़ी। सास-ससुर बहू से तंग हैं मगर बहू है कि जाती नहीं कि मेरा तो यही घर है जहां डोला आया वहीं से खटोला निकलेगा। चूंकि इस जुल्म से यह अपने को ममलूक समझने लगी तो इसके नज़दीक भी अपने माँ-बाप से कोई ताल्लुक़ नहीं रहा। अब वह सास-ससुर पर अपना हक़ समझने लगी और इससे उस पर जुल्म होने लगा। बहुत अच्छा हुआ, तुम्हारी सज़ा यही है। ग़र्ज़ यह नौबत पहुँच गई है कि मालिक तो मालिक ममलूक भी जुल्म करने लगा।

शरीअत की मुखालिफ़त और जाहिलाना रस्म

ग़रज़ जाहिलों को अलग ख़बत है कि बहू को अपनी मिल्कयत समझते हैं ससुरालवाले लड़की के माँ-बाप की बात चलने नहीं देते अपना समझते हैं, यह पहला गुनाह है माँ-बाप के हक़ को जो रोकते हैं यह दूसरा गुनाह है।

तीसरे जवान औरत को इख़्तियार है कि जहाँ चाहे अपना निकाह करे। ये लोग इसको बातिल करते हैं तो शरीअत की कितनी मुख़ालिफ़त की। औरत की आज़ादी खोई, माँ-बाप का हक़ ग़ारत किया और अपना हक़ क़ायम किया। अफ़सोस तो यह है कि ऐसे लोग अपने को अच्छा भी समझते हैं कि हमने बेवा का निकाह कर दिया, हालांकि उन्होंने निकाह की कोई मसलिहत मलहूज़ नहीं रखी।

अरब में भी इस क़िस्म के जुल्म होते थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने तशरीफ़ लाकर इसको मिटाया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि छः शख़्सों पर मैं और हक़ तआ़ला और फ़रिश्ते लानत करते हैं उनमें से एक वह शख़्स है जो रस्मे-जाहिलियत को ताज़ा करता है तो उसके बारे में तुम लोग शरीअत का मुक़ाबला कर रहे हो ख़ुदा के लिए रसूमे-कुफ़्फ़ार को छोड़ दो, इस रस्मे-जाहिलियत को मिटाने की कोशिश करो।

ज़बरदस्ती का निकाह

बाज़ लोग कहते हैं कि हमने इसकी (बेवा की) ज़बान से इज़्न कहलवाया था यानी (इजाज़त ले ली थी) तो यह ज़बान से कहलवाना भी महज़ नाम करने को है ताकि कोई यह न कहे कि बे पूछे निकाह कर दिया क्योंकि मसअला यह है कि बेवा का निकाह बग़ैर ज़बान से कहे जायज़ नहीं होता। तय्यब ख़ातिर (दिली रज़ामंदी) का इसमें बिल्कुल ख़्याल नहीं किया जाता और बाज़ मर्तबा बे पूछे ही निकाह कर देते हैं और बाज़ लोग ज़बान से गो कहलवाते हैं मगर फिर भी तो उस पर ज़ुल्म हुआ क्योंकि ये लोग अपने आपको मालिक समझकर कहलवाते हैं। दूसरे ख़राबी इसमें यह है कि माँ-बाप को मालिक नहीं समझते।

औरत के बेवा हो जाने के बाद ससुराल वालों को क्या करना चाहिए?

इस्लामी तालीम

(शौहर मर जाने और औरत के बेवा हो जाने के बाद) उनको (मीरास) का हिस्सा देकर (इद्दत के बाद) उसके माँ-बाप के सिपुर्द कर दो। अपने घर में न रखो। क्योंकि जब तक अपने घर में रखोगे, यह ख़्याल दिल से न निकलेगा तो वाजिब है कि हिस्सा देकर माँ-बाप के सिपुर्द कर दो ख़्वाह वह उसको बिठला दें या कहीं निकाह कर दें। (अज़लुल-जाहिलिया)

बाब 4

फ़स्ल (1)

बराबरी का बयान

किफ़ायत की अहमियत और कुफ़ू में शादी न करने की ख़राबी

शरीअत ने किफ़ायत (बराबरी) में चन्द औसाफ़ का एतिबार किया है और बेहतर यही है कि मंकूहा (लड़की) अपने ही कुफ़ू की लाई जाए। क्योंकि ग़ैर कुफ़ू के अख़्लाक़ व आदात अकसर अपने मुवाफ़िक़ नहीं होते, जिसकी वजह से हमेशा आपस में नाचाक़ी रहती है नीज़ वह मंकूहा मर्द के ख़ानदान में बेक़द्र रहती है। तो एक मुसलमान औरत को बिला वजह उम्र भर के लिए बेक़द्र करना क्या ज़रूरी है।

नीज़ उर्फ़न उसकी औलाद की शादी में दुश्वारियां पेश आती हैं, इसलिए बिला ज़रूरत इन कुल्फ़तों में क्यों पड़े।

अगर औलाद ग़ैर कुफ़ू हुई तो अहले बिरादरी उर्फ़न उसको अपने बराबर का नहीं समझेंगे और उसकी शादी वग़ैरह करने में तंगी होगी। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

(अलग़र्ज़ ग़ैर कुफ़ू में निकाह) ग़ैरत व मसलिहत के भी ख़िलाफ़ है शरीफ़ा को वली (कम मर्तबा वाले) का फ़राश बनाया जाता है, नीज़ अकसर ऐसे मौक़े पर औरत की नज़र में ख़ाविंद की वक़अत भी नहीं होती, जिससे निकाह की तमाम मस्लिहतें फ़ौत हो जाती हैं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

किफ़ायत का एतिबार करने की वजह और उसका दारोमदार

वजह इसकी यह है कि किफ़ायत का एतिबार आर दफ़ा

करने के लिए है (यानी) अटल मदारे-आर व अदमे-आर है और आर का मदार उर्फ़ पर है। (इम्दादुल-फ़तावा)

किफ़ायत में एतिबार मर्द की जानिब से है न कि औरत की जानिब है

(यानी) मर्द औरत से कम दर्जे का न होना चाहिए, अलबत्ता अगर औरत कम दर्जे की हो तो गवारा किया जा सकता है।

बाज़ लोग कहते हैं कि कमज़ात को ख़्वाह लड़की दे दे, मगर कमज़ात की लड़की ले नहीं, क्योंकि अगर कमज़ात की लड़की आती है और उससे औलाद होती है तो अपने ख़ानदान की नस्ल बिगड़ती है और अगर कमज़ात के घर लड़की चली गई है तो उसकी नस्ल सँवरती है (हालांकि यह बिल्कुल ग़लत है, इस नज़रये में) शरीअत के साथ मज़ाहमत है, फ़िक़ह का मसअला है—

الکفائۃ معتبرۃ من جانبہ ای الرجل لان الشریفۃ تابی ان تکون فراشا لادنی ولا تعتبر من جانبہا لان الزوج مستفرش فلا تغیضہ (الخ)

तर्जमा : किफ़ायत मर्द की जानिब से मोतबर है क्योंकि शरीफ़ (ऊँचे ख़ानदान) की औरत कम दर्जे के मर्द की फ़राश बनने से इंकार करती है। और किफ़ायत औरत की तरफ़ से मोतबर नहीं, क्योंकि ख़ाविंद साहब फ़राश हैं तो वह फ़राश के इस्तेमाल में कराहत नहीं करता और यह मसअला सबके नज़दीक़ सहीह है। (इस्लाहे-इंक़लाब)

ग़ैर कुफ़ू में निकाह मुंअक़िद होने न होने की तहक़ीक़ व तफ़सील

ग़ैर कुफ़ू में निकाह होने की कई सूरतें हैं। बाज़ में निकाह बिल्कुल बातिल हो जाता है और बाज़ में सहीह और लाज़िम हो जाता है। यानी फ़िस्ख़ का इख़्तियार भी नहीं रहता। और बाज़ में

सहीह तो होता है, मगर लाज़िम नहीं होता बल्कि फ़िस्ख़ का इख़्तियार रहता है।

पहली सूरत : बालिग़ औरत अस्बा वली की इजाज़त के बग़ैर ग़ैर कुफ़ू में निकाह करे। इस सूरत में फ़त्वा यह है कि निकाह सहीह नहीं होता बल्कि बिल्कुल बातिल है, हत्ताकि अगर निकाह के बाद वली अस्बा जायज़ भी रखे तब भी सहीह नहीं होता। क्योंकि निकाह से क़ब्ल इजाज़त का होना शर्त है लिहाज़ा औरत को लाज़िम है कि ऐसा हरगिज़ न करे। अगर करेगी तो निकाह कुलअदम होने की वजह से हमेशा मासियत में मुब्तला रहेगी।

(कज़ाफ़ीदुर्रुल-मुख़तार)

दूसरी सूरत : यह है कि बाप दादा ने बदुरुस्तीए-होश व हवास नाबालिग़ का निकाह ग़ैर कुफ़ू में किया हो और वह बाप-दादा मारूफ़ बसूउल इख़्तियार (बदख़्वाह) न हों इस सूरत में निकाह लाज़िम हो जाता है और उस निकाह को फ़िस्ख़ कराने का भी इख़्तियार नहीं है।

तीसरी सूरत : यह कि बाप-दादा के सिवा किसी दूसरे वली ने नाबालिग़ का निकाह ग़ैर कुफ़ू में कर दिया हो या बाप-दादा ने किया हो मगर वह मारूफ़ बसूउल इख़्तियार (बदख़्वाह) हों या नशा की हालत में निकाह किया हो, इस सूरत में भी निकाह बातिल है।

चौथी सूरत : यह कि बालिग़ा औरत का निकाह वली की इजाज़त से ग़ैर कुफ़ू में हुआ हो। इसका हुक्म यह है कि निकाह सहीह और लाज़िम हो जाता है और किसी को फ़िस्ख़ का इख़्तियार नहीं रहता। (अल-हयातुल फ़ाजिरा)

फ़स्ल (2)

हसब व नसब का बयान

हसब-नसब की तारीफ़

शरीअत ने किफ़ायत बराबरी में जिन औसाफ़ का एतिबार किया है उनमें एक नसब भी है। (इम्दादुल-फ़तावा)

नसब निस्बत 'इला' है। (यानी आबाओ-अजदाद की तरफ़ निस्बत करने को कहते हैं) और हसब लुफ़्ता आम है। (कमा फ़िल क़ामूस)

लेकिन उर्फ़ में ख़ास है। शर्फ़े-नफ़्स (ज़ाती शराफ़त) के साथ ख़्वाह दीनी हो या दुनियावी और किफ़ायत में नसब की तरह यह भी मोतबर है। चुनांचे फ़ुक़्हा का 'दिया-न-तहू ब-मालन व हु-फ़-तहू' कहना इसकी सरीह दलील है और इसका मदार भी उर्फ़ पर है। (अल-हयात)

नसब और ख़ानदानी इख़्तिलाफ़ की हिक्मत

يَا أَيُّهَا النَّاسُ إِنَّا خَلَقْنَاكُم مِّن ذَكَرٍ وَأُنثَىٰ وَجَعَلْنَاكُمْ شُعُوبًا وَقَبَائِلَ لِتَعَارَفُوا۟

तर्जमा : यानी हमने तुम सबको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और तुम्हारी मुख़्तलिफ़ क़ौमें और ख़ानदान बनाए ताकि एक-दूसरे की शनाख़्त कर सको।

जिसमें यह भी दाख़िल है कि कौन हमारा अस्बा (क़रीबी और दूर का रिश्तेदार है) ताकि उनके हुक़ूक़ अदा कर सको।

यहाँ हक़ तआ़ला ने मुख़्तलिफ़ ख़ानदानों और मुख़्तलिफ़ क़ौमों के बनाने में यह हिक्मत बतलाई है कि इससे तआरुफ़ और शनाख़्त हो जाता है कि यह क़ुरैशी है, यह अंसारी है, यह सिद्दीक़ी है, यह फ़ारूक़ी है वग़ैरह-वग़ैरह अगर यह तफ़ावुत न होता तो इम्तियाज़ सख़्त दुश्वार हो जाता, क्योंकि नामों में अकसर तवारिद होता है (यानी एक जैसे होते हैं) एक ही नाम के बहुत से आदमी होते हैं। और किसी क़द्र इम्तियाज़ सकूनत की

जगह से हो जाता है कि एक देहलवी है, एक लखनवी। फिर एक शहर में भी एक नाम के बहुत से होते हैं तो मुहल्लों के नाम से इम्तियाज़ हो जाता है और मुहल्ले में भी एक नाम के दो-तीन होते हैं तो क़बाइल की तरफ़ से निस्बत से इम्तियाज़ हासिल हो जाता है। यह हिक्मत है क़बाइल के मुख़्तलिफ़ होने की।

मगर आजकल भाइयों ने इसी को मदारे-फ़ख़्र बना लिया है। अब यहाँ दो क़िस्म के लोग हो गए हैं। बाज़ ने तो नसब व शर्फ़ की जड़ ही उखाड़ दी उनको इससे शुब्हा है कि इस आयत में इख़्तिलाफ़ात क़बाइल की हिकमत सिर्फ़ तआरुफ़ बतलाई गई है। इस पर नज़र करके बाज़ लोगों ने शराफ़ते नसब का इंकार कर दिया कि इससे कुछ शर्फ़ नहीं होता बल्कि जिस तरह देहलवी, लखनवी हिन्दुस्तानी, बंगाली ये सब निस्बतें तआरुफ़ के लिए हैं और इनसे कुछ शर्फ़ हासिल नहीं होता। इसी तरह क़ुरैशी, अंसारी, सय्यदी और फ़ारूक़ी, उसमानी वग़ैरह ये निस्बतें भी शनाख़्त के लिए हैं इनसे भी कुछ शर्फ़ हासिल नहीं होता।

और इस्तिदलाल किया है 'लि-तआरुफ़ू', से कि नसब का फ़ायदा महज़ तआरुफ़ है। इससे कोई शर्फ़ हासिल नहीं होता। मगर इसके साथ-साथ क़ुरआन की दूसरी आयतों और अहादीस को भी देखना चाहिए। (अत-तबलीगुल इकरमिया)

नसब की बिना पर शराफ़त एक वाक़ई हक़ीक़त है

हक़ तआ़ला फ़रमाते हैं—

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا نُوْحًا وَّاِبْرَاهِيْمَ وَجَعَلْنَا فِيْ ذُرِّيَّتِهِمَا النُّبُوَّةَ وَالْكِتَابَ

तर्जमा : और हमने नूह और इब्राहीम अलैहिस्सलाम को भेजा और नुबूवत व किताब को उनकी ज़ुर्रियत में दे दिया।

इससे मालूम हुआ कि नूह और इब्राहीम अलैहिस्सलाम के बाद से उनकी ज़ुर्रियत में नुबूवत और किताब मुंहसिर की गई तो औलादे-इब्राहीम को बाक़ी ख़ानदान वालों पर यह शर्फ़ हासिल है

कि इब्राहीम अलैहिस्सलाम के वक़्त से क़ियामत तक नुबूवत्त और किताब इसी ख़ानदान में मुंहसिर हो गई।

2. अहादीस को भी मिलाना चाहिए एक हदीस में आया है—

الناس معادن كمعادن الذهب والفضة خيارهم فى الجاهلية خيارهم فى الاسلام اذافقهوا

कि जैसे चाँदी-सोने की कानें हैं इसी तरह आदमियों की भी मुख़्तलिफ़ कानें हैं। फिर आप फ़रमाते हैं कि जो ख़ानदान जाहिलियत में 'अच्छे शुमार होते थे वही इस्लाम के बाद भी अच्छे हैं जबकि इल्म भी हासिल कर लें।

बाज़ हज़रात ने यह समझा है कि इसमें 'क़ैद इज़ाफ़क़हू' अहलुंनिसाब के वास्ते मुज़िर है, मगर कुछ भी मुज़िर नहीं। क्योंकि हुज़ूर (सल्ल०) फ़िक़ह के बाद 'ख़्यारफ़िल जाहिलिया' को 'ख़्यारुल इस्लाम' फ़रमा रहे हैं तो फ़िक़्ह के बाद मुसावात न रही। बल्कि हासिल यह हुआ कि फ़क़ीह ग़ैर साहिबे-नसब फ़क़ीह साहिबे नसब के बराबर नहीं, बल्कि फ़क़ीह साहबे नसब अफ़ज़ल होगा तो कोई बात तो है जिसकी वजह से वह ख़्यारुल अफ़ज़ल हुए हैं।

हाँ, यह ज़रूर है कि साहिबे नसब जाहिल से ग़ैर साहिबे नसब आलिम अफ़ज़ल है, उसका हमको इंकार नहीं। मगर हदीस से इतनी बात मालूम हो गई कि शफ़े-नसब भी कोई चीज़ ज़रूर है। जिसके साथ इल्म व फ़िक़ह मिल जाए तो साहिबे नसब ग़ैर साहिबे नसब से बेहतर होगा।

3. नीज़ हदीस में है الائمته من قريش कोई तो वजह है कि हुज़ूर (सल्ल०) ने इमामत को क़ुरैश के साथ मख़सूस फ़रमाया (यानी) अमानत कुबरा में क़ुरैशियत को शर्त ठहराया और इमामते सुग़रा में ख़ानदानी शराफ़त को मर्जिहात में से कहा है कि इससे मालूम हुआ कि अहलुंनिसाब में शाने क़बूईयत (सरदारी की शान) दूसरों से ज़्यादा है। (अत-तबलीग़)

अल-अइम्मा मिन क़ुरैश एक इंतिज़ामी मसलिहत है। क़ुदरती

तौर से अल्लाह तआला ने क़ुरैश को फ़ज़ीलत दी है तो जब अइम्मा व उमरा उनमें से होंगे तो औरों को उनकी इत्तिबाअ से आर न होगा और उनको दूसरे की इत्तिबाअ से आर होता और जंग व जिदाल की सूरत क़ायम होती।

नीज़ यह क़ायदा है कि आदमी अपनी ख़ानदानी शै की बहुत हिफ़ाज़त करता है तो अगर क़ुरैश इमाम होगा तो दीन की हिफ़ाज़त दो तरह से करेगा। एक इस वजह से कि दीन उनके घर का है, दूसरे मज़हबी ताल्लुक़ से। पस मालूम हुआ कि नसब में मसालिह तमद्दुनिया वदीअत हैं इसलिए वह बेकार नहीं। जो फ़र्क़ अल्लाह तआला ने रख दिया है उसको कौन मिटा सकता है।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन, व अज़ इस्लाहुन्निसा)

4. नीज़ एक हदीस में बतौरे-रज्ज़ के हुज़ूर (सल्ल०) का यह क़ौल साबित है। انا النبی لا کذب انا ابن عبد المطلب जब जंगे हुनैन में हज़राते सहाबा (रज़ि०) के पैर उखड़ गए तो आप (सल्ल०) ने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया और इर्शाद फ़रमाया कि मैं नबी हूँ यह झूठ बात नहीं है और मैं अब्दुल मुत्तलिब का बेटा हूँ। यानी मैं ख़ानदानी और साहिबे नसब हूँ मैं हरगिज़ पसपा न हूँगा।

तो इसमें हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने साहिबे नसब होने पर फ़ख़्र किया है और दुश्मन को डराया है कि तू अपने मुक़ाबिल को कम न समझना, वह बड़ा ख़ानदानी है, जिसकी बहादुरी सबको मालूम है, अगर शर्फ़े-नसब कोई चीज़ नहीं तो आपने انا ابن عبد المطلب क्यों फ़रमाया?

5. नीज़ एक हदीस में है कि ख़ुदा तआला ने इब्राहीम अलैहिस्सलाम की औलाद में से (व अज़ इस्लाहिंनिसा स० 193) इस्माईल अलैहिस्सलाम का इंतिख़ाब फ़रमाया और इस्माईल अलैहिस्सलाम की औलाद में से कनाना को मुंतख़ब किया है और कनाना में से क़ुरैश को मुंतख़ब किया और क़ुरैश में से बनू

हाशिम को और बनू हाशिम में से मुझको मुंतख़ब किया।

6. एक और हदीस के ये अल्फ़ाज़ हैं—

ان الله خلق الخلق فجعلنى فى خيرهم ثم جعلهم فرقتين فجعلنى فى خير فرقة (اى العرب) ثم جعلهم قبائل فجعلنى فى خيرهم قبيلة (اى قريش) ثم جعلهم بيوتا فجعلنى فى خيرهم بيتا (اى بنى هاشم) فانا خيرهم نفسا وخيرهم بيتا۔

(رواة الترمذى)

तर्जुमा : अल्लाह तआला ने मख़लूक़ को पैदा किया तो मुझे बेहतर लोग में कर दिया, फिर उनकी दो जमाअतें बनाईं और मुझको बेहतर जमाअत में कर दिया, फिर उनके क़बीले बनाए और मुझको बेहतर ख़ानदान यानी क़ुरैश में कर दिया। फिर उनके ख़ानदान कर दिए और मुझको बेहतर ख़ानदान यानी बनू हाशिम में कर दिया, सो मैं सबसे बेहतर हूँ। ज़ात के एतिबार से भी और ख़ानदान के एतिबार से भी।

(तिर्मिज़ी)

इन नसूस से साफ़ मालूम होता है कि नसब मुतलक़ करम से ख़ाली नहीं। गो किराम होने को मुस्तलज़िम न हो। क्योंकि इकरमिया का मदार तो तक़वा है। إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِنْدَ اللهِ أَتْقَاكُمْ ۝

(अत-तबलीग़, वाजुल इकरमिया)

हसब-नसब की शराफ़त बड़ी नेमत है, लेकिन उसकी बिना पर फ़ख़्र और तकब्बुर करना जायज़ नहीं

फ़रमाया, शर्फ़े-नसब ग़ैर इख़्तियार अम्र होने की वजह से फ़ख़्र का सबब नहीं, मगर उसकी नेमत होने में शुबह नहीं। फ़ख़्र अक़्लन उन चीज़ों पर हो सकता है जो इख़्तियारी हों और वह इल्म व अमल है, गो शरअन इस पर भी फ़ख़्र न करना चाहिए।

(मलफ़ूज़ात अशर्फ़िया, स० 70)

नसब की बिना पर फ़ख़्र और तकब्बुर करना हर हालत में

हराम है और आजकल के शुर्फ़ा में तो नसब की बिना पर तकब्बुर है ही मगर ग़ैर शुर्फ़ा में दूसरे तौर पर तकब्बुर पाया जाता है कि अपने को शुर्फ़ा के बराबर समझते हैं और अपने और उनमें कुछ फ़र्क़ नहीं समझते, यह भी ज़्यादती है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

नसब पर फ़ख़्र न करना चाहिए लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि शर्फ़ नसब कोई चीज़ ही नहीं। देखो, आदमी का हसीन व जमील होना बदसूरत या अंधा होना अगरचे ग़ैर इख़्तियारी है और इस पर फ़ख़्र न करना चाहिए। मगर क्या कोई कह सकता है कि हुस्ने सूरत होना नेमत नहीं, यक़ीनन आला दर्जे की नेमत है। इसी तरह यहाँ समझो कि शर्फ़ नसब ग़ैर इख़्तियारी अम्र होने की वजह से फ़ख़्र का सबब नहीं, मगर इसके नेमत होने में शुब्हा नहीं।

किफ़ायत नसब में माँ का एतिबार नहीं, बाप का एतिबार है

एक बड़ी कोताही यह है कि नसब में माँ का भी एतिबार करते हैं। यानी अगर किसी की माँ शरीफ़ न हो तो उसको शरीफ़ नहीं समझते और इसलिए उसको अपना हमसर नहीं जानते, हालांकि शरीअत ने किफ़ायते नसब के बाब में माँ का कुछ एतिबार नहीं किया। इसी तरह दूसरे अहकाम में भी माँ का एतिबार नहीं। मसूलन एक शख़्स की माँ सिर्फ़ बनी हाशिम से है उसको ज़कात् लेना हलाल है। पस सिर्फ़ नजीबुल-अबू (शरीफ़ बाप वाला) हमसर (बराबर) है नजीबुल-तरफ़ेन का यानी जिसके माँ-बाप दोनों शरीफ़ हों। (इस्लाहे-इंक़लाब : 3)

शरई दलील

अहले अरब (भी) नसब में औरतों की वजह से नुक़्स नहीं निकालते (क्योंकि) ख़ुदा तआ़ला ने माँ का नसब में एतिबार की ऐसी जड़ उखाड़ी है कि उनको सर उठाने का मौक़ा नहीं है। क्योंकि हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की दो बीवियाँ थीं एक

हज़रत सारा वह तो उनकी ख़ानदान की थीं। दूसरे हज़रत हाजरा जिनकी औलाद में हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम हैं जो अबुल अरब हैं, वे कनीज़ थीं, तो जो औरत सारे अरब की असल है वह कनीज़ है।

अब जो क़बाइल अरब हिन्दुस्तान में औरत के खोट की वजह से दूसरे ख़ानदानों में ऐब निकालते हैं वे इस धब्बे को धोएँ किस तरह? धोते हैं मगर दर हक़ीक़त यह कोई ऐब ही नहीं इसलिए कि शरीअत ने नसब में माँ का एतिबार नहीं किया।

(अत-तबलीगुल इकरमिया)

सादात का दारोमदार, असली सय्यद किसे कहते हैं

अलबत्ता इस कुल्लिया से सिर्फ़ एक जुज़िया मुसतस्ना है। वह यह कि हुज़ूर (सल्ल०) की सयादते नबीया हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा के लिए। हज़रत फ़ातिमा के औलाद में जो लोग हैं वे सब सय्यद और दूसरे बनी हाशिम से अफ़ज़ल हैं।

(हासिल यह कि) नसब में माँ का एतिबार नहीं लेकिन औलादे- फ़ातिमा में माँ का एतिबार किया गया है। क्योंकि सादात का मदार हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा पर है और सय्यदों का शर्फ़ दूसरे क़बाइल पर उन्हीं की वजह से है।

और यहाँ से बाज़ अल्वियों की ग़लती वाज़ेह हो गई जो अपने को सय्यद कहते थे। हालाँकि सयादत की बिना पर हज़रत अली करमल्लाहु वजहु पर नहीं, बल्कि हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा पर है। पस अली (रज़ि०) की जो औलाद फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा से है वह तो सय्यद है और जो दूसरी बीबी से है वह सय्यद नहीं बल्कि अल्वी है।

और अल्वियों का सयादत का दावा ग़लत है। अलबत्ता बनी हाशिम में से हैं। और बनी हाशिम के जो फ़ज़ाइल हैं वे ज़रूर उनके लिए हासिल हैं।

बाज़ अल्वी जो अपने को सय्यद लिखते हैं, जायज़ नहीं। क्योंकि सयादते-इस्तलाहियात का शर्फ़ तो हुज़ूर (सल्ल०) को हासिल है जो हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हां के वास्ते से ही उनको पहुँचा है। लिहाज़ा हज़रत अली की जो औलाद दूसरे बतून से है वह सब शुयूख़ में शुमार होगी क्योंकि हज़रात ख़ुल्फ़ाए राशिदीन की औलाद शेख़ कहलाती है।

अब एक सवाल यहाँ होता है कि अगर एक शख़्स का बाप सय्यद न हो और माँ सय्यद हो, वह सय्यद है या नहीं तो क़वाइद के मुवाफ़िक़ यह शख़्स सय्यद नहीं है। हाँ, माँ की सयादत की वजह से एक गौना शर्फ़ उसको ज़रूर हासिल है। मगर यह अपने को सय्यद नहीं कह सकता और उसके लिए ज़कात लेना भी हलाल है, अगर वह साहिबे निसाब न हो। बहरहाल माल का नसब में एतिबार नहीं (सिवाए हज़रत फ़ातिमा के) अलबत्ता हुर्रियत वर्क़ में औलाद शरअन माँ के क़ाइम मक़ाम होती है।

फ़स्ल (३)

हिन्दुस्तान के नसब-नामों पर तबसिरा

मुझको तो इसमें क़वी शुब्हा है कि जो शरीफ़ (अंसब) कहलाते हैं वाक़ई में वे ऐसे ही हैं या नहीं। क्योंकि यह अजीब बात है कि जिस क़द्र शुयूख़ में कोई अपने को सिद्दीक़ी कहता है, कोई फ़ारूक़ी, कोई अल्वी, कोई उसमानी, कोई अंसारी क्या इन चार-पाँच सहाबा के अलावा नऊज़ु बिल्लाह और सहाबा मुंक़त-उन्नस्ल थे।

(इफ़ाज़ातुल यौमिया, हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन, इस्लाहुन्निसा)

कोई अपने को यह नहीं कहता कि हज़रत बिन रिबाह (रज़ि०) की औलाद से हैं। या हज़रत मिक़दाद बिन अल-असूद

रज़ियल्लाहु अन्हु की औलाद से हैं। सब इन चार-पाँच हज़रात ही की नसब करते हैं। (इसलिए) शुब्हा होता है कि ये सब तराशीदा-याराँ हैं। मशहूर और जलीलुल क़द्र सहाबा को लेकर उनकी तरफ़ निस्बत करने लगे।

यह शुब्हा अहक़र ने बड़े-बड़े मजामअे में बयान किया कि अकसर जगह लोगों को देखा जाता है कि चन्द सहाबा (रज़ि०) को अपनी तरफ़ मंसूब करते हैं। मसलन हज़रात खुल्फ़ा अर्बआ हज़रत अब्बास (रज़ि०), हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०), इब्ने ख़लजान (रज़ि०)। इसमें यह है कि हिन्दुस्तान में फ़तूहात व ग़ज़वात के लिए ख़ास उन्हीं हज़रात की औलाद मुंतख़ब होकर आई या औरों की नस्ल मुंक़ता हो गई और ये दोनों अम्र आदतन मुस्तबअद (बहुत बईद) हैं उनसे साफ़ शुब्हा होता है कि शायद दूसरों ने इन्हीं हज़रात की तरफ़ इफ़्तिख़ार (फ़ख्र करने के लिए) मंसूब कर दिया।

हिन्दुस्तान, नसबनामे और शजरे

जिनके पास नसबनामा महफ़ूज़ नहीं है कि उनका बयान तो ज़बानी ही क़िस्सा है और जिनके पास नसबनामा है उसमें भी ऊपर से इश्तिबाह है, कोई तहक़ीक़ी बात नहीं। चुनाँचे हम लोग थाना भवन के फ़ारूक़ी मशहूर हैं। मगर तारीख़ से इसमें शुब्हा होता है। इसलिए कि इब्राहीम बिन अधम इस सिलसिले में मौजूद हैं और उनके बारे में इख़्तिलाफ़ है। कोई उनको फ़ारूक़ी लिखता है, कोई अजमी, कोई तमीमी, कोई सय्यद ज़ैदी लिखता है। ख़ुद इस पर कोई दलील काफ़ी नहीं कि यह मुफ़्तख़िरीन "जिस जद (दादा) की तरफ़ मंसूब होने का दावा करते हैं। वह दावा सहीह भी है बल्कि बाज़ क़राइन से इसके ख़िलाफ़ का शुब्हा है।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन, इस्लाहुन्निसा, इस्लाहे-इंक़लाब)

ज़बरदस्ती के नसब-नामे

बाज़ लोग उर्फ़न शरीफ़ नहीं हैं मगर ज़बरदस्ती अपने को इस्तिलाही शरीफ़ों में दाख़िल करते हैं और अपने लिए ग़ैर मारूफ़ नसब और दलील से साबित करते हैं वे महज़ अटकल से यह दावा करते हैं। हदीस में ऐसे मुद्दई पर लानत आई है।

बाज़ ने तो (महज़ अटकल से) अपने को शरीफ़ साबित करना चाहा है। चुनांचे एक क़ौम ने अपना अरब होना साबित किया और कहा कि हमारी अस्ल राई है, चूँकि ये लोग जानवर पालते हैं इसलिए उनको राई कहा गया, फिर अवाम की ग़लती से लफ़्ज़ी तग़य्युर हो गया।

इसी तरह बाज़ लोगों ने अपने को ख़ालिद बिन वलीद (रज़ि०) की औलाद में दाख़िल करने की कोशिश की है और इस तरह वे अरब बनना चाहते हैं। मगर इस तर्कीब में तकल्लुफ़ है। क्योंकि तारीख़ से तो इसका कुछ सबूत नहीं मिलता, महज़ क़यासाते बईदा से काम लेना पड़ता है, जिससे हर शख़्स को मालूम हो जाता है कि यह बात बनाई हुई है। (अत-तबलीग़)

हिन्दुस्तान में नसब की बुनियाद पर कुफ़ू में किस तरह लिहाज़ होगा

फ़रमाया : हिन्दुस्तान में नसबनामों का भी अजीब क़िस्सा है। मालूम नहीं लोगों ने कहाँ से अख़्ज़ कर लिए हैं। कोई अपने को अब्बासी कहता है, कोई फ़ारूक़ी, कोई सिद्दीक़ी बताता है और जिस क़द्र तहक़ीक़ कीजिए उसी क़द्र इख़्तिलाफ़ बढ़ता चला जाता है, अस्ल बात मालूम ही नहीं होती।

एक साहब ने कहा कि अगर यह निस्बत न की जाए तो कुफ़ू का लिहाज़ कैसे हो? फ़रमाया कि उर्फ़ी वजाहत और मौजूदा हालात पर नज़र करके लिहाज़ होगा, गुज़िश्ता इंसाब की तहक़ीक़ पर मदार न होगा।

फिर फ़रमाया कि हमको क़ुरआन शरीफ़ ने हज़रत आदम अलैहिस्सलाम की औलाद होना बताया है इसलिए यह जुज़ तो यक़ीनी है वरना नसब नामों के इख़्तिलाफ़ पर नज़र करके इसमें भी शुब्हा ही रहता है। (हिस्नुल अज़ीज़)

हिन्दुस्तान में क़ौम बिरादरी के एतिबार से किफ़ायत मोतबर है या नहीं

सवाल : हिन्दुस्तान में जो क़ौमें पठान, राजपूत वग़ैरह हैं उनके यहाँ सख़्त आर है कि एक क़ौम दूसरे के यहाँ निकाह करे। अगर ऐसा वाक़िआ कहीं हो जाता है तो उसे ख़ानदान से गिरा हुआ समझते हैं।

और फ़िक़ह की किताबों में लिखा है कि सिवाए अरब के और क़ौम में नसब का एतिबार नहीं, क्योंकि अजमी ज़ायउन-नसब हैं (यानी उनका नसब महफ़ूज़ नहीं)।

अब सवाल यह है कि जो क़ौम अजमी हैं और दूसरे क़ौम के मुक़ाबले में फ़ख़्र करते हैं और दूसरे को अपने बराबर नहीं समझते हैं तो रिवाज व उर्फ़ के मुताबिक़ उनमें किफ़ायत का मसअला जारी होगा या नहीं।

अल-जवाब : (मज़कूरा रिवायत के मुताबिक़) जब मदार आर व अदम आर है और अक़वाम मज़कूरा में एक-दूसरे से निकाह करते हुए आरिफ़ होती है पस किफ़ायत का मसअला जारी होगा। (इम्दादुल फ़तावा)

आजकल किफ़ायत में नसब और बिरादरी का भी एतिबार है

रिवायाते-हदीसिया व फ़क़ीहिया से साबित हुआ कि बाहम अजम में (यानी अरब के अलावा मुमालिक में) नसबन (बाएतिबार नसब के) किफ़ायत में मोतबर न होना फ़ुक़हा ने लिखा है। यह भी मुक़य्यद है इसके साथ जबकि अरब में इस तफ़ावुत (फ़र्क़) का एतिबार न हो। वरना उनमें भी बाएतिबारे-नसब (और

ब-एतिबार) क़ौमियत के मोतबर और मदार उसका उर्फ़ पर है जिसका हदीस में भी एतिबार किया गया है। (इम्दादुल फ़तावा)

अंसारी और क़ुरैशी बाहम कुफ़ू हैं या नहीं

अंसारी क़ुरैशी में से तो नहीं हैं, लेकिन बावजूद क़ुरैशी न होने के चूंकि आलमगीरी में क़ौम सहीह उसको कहा है कि अरब सब बाहम कुफ़ू हैं इसलिए क़ुरैशी व अंसारी कुफ़ू समझे जाएंगे।

और वजह इसकी यह है कि किफ़ायत का एतिबार दफ़-ए-आर के लिए है और आर का मदार उर्फ़ पर है। उर्फ़न (आजकल) अंसारी क़ुरैशी के बराबर समझा जाता है और मुक़तदिमीन के ज़माने में गो मुसावात न होगी (मगर आजकल है) इसलिए इख़्तिलाफ़ ज़माने से यह हुक्म बदल गया। (अयज़न)

ख़ुलासा कलाम

किफ़ायत के मुताल्लिक़ एक मौलवी साहब के जवाब में फ़रमाया कि ग़ौर करने से मालूम होता है कि किफ़ायत की क़ैद मुअल्लक़ है, इल्लत के साथ और वह इल्लत उर्फ़ी इज़्ज़त व ज़िल्लत। मस्लन शेख़ज़ादा चाहे फ़ारूक़ी हो या सिद्दीक़ी हो या अंसारी हो या उसमानी हो उनके आपस में तनाकेह (निकाह करना) उर्फ़ में मोजिबे-इस्तकाफ़ (उर्फ़ी ज़िल्लत का बाइस) नहीं। पस यह सब बाहम कुफ़ू होंगे। इनमें इसकी भी क़ैद नहीं होगी कि माँ उर्फ़ियुन्नस्ल हो, क्योंकि इज़्ज़त में ये सब बराबर के समझे जाते हैं। (इफ़ाज़ातुल योमिया हिस्सा-3)

अजमी आलिम अरब औरत का कुफ़ू नहीं

गो बाज़ फ़ुक़हा ने अजमी आलिम को अरबिया का कुफ़ू कहा है मगर दुर्रे मुख़्तार की तसरीह है कि अजमी मर्द अरबी औरत का कुफ़ू नहीं हो सकता। अगरचे वह अजमी आलिम या बादशाह ही क्यों न हो और यही क़ौल ज़्यादा सहीह है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

एक आम ग़लती

एक (आम) कोताही कि बाज़ देहाती लोग तमाम पर्देसियों को रोग़ील और ज़लील समझते हैं। गोया उनके नज़दीक शराफ़त चन्द बस्तियों में मुंहसिर है जिस पर कोई दलील नहीं। इसी वजह से अगर कोई शख़्स बाहर से कोई निकाह करके ले आए तो बिरादरी की औरतें हरगिज़ उसको अपने बराबर नहीं समझतीं। फिर उसकी औलाद की शादी बिरादरी में मुसीबत हो जाती है।

(फ़तहुल-क़दीर, दुर्रे-मुख़्तार)

फ़स्ल (4)

दीन के एतिबार से किफ़ायत (मुसावात)

मिनजुमला इन औसाफ़ के जिनका शरीअत के किफ़ायत में एतिबार फ़रमाया है। एक दीन भी है और उसमें भी नसब की तरह औरत का मर्द से कम (दर्जे का) होना मुज़िर नहीं। अलबत्ता मर्द का औरत से कम होना मुज़िर है। और मर्द की बद्दीनी तीन तरह की है एक एतिक़ादी उसूली, दूसरी एतिक़ादी फ़रोई, तीसरी एतिक़ादी अमली।

पहली क़िस्म

जैसे औरत मुसलमान हो मर्द ग़ैर मुस्लिम हो ख़्वाह यहूदी, नसरानी हो या मजूसी, बुत-परस्त व दहरी इसका हुक्म ज़ाहिर है कि निकाह सहीह न होगा।

दूसरी सूरत

जैसे औरत सुन्नी हो और मर्द मुतबद्दअ (बिदअती हो) इसका हुक्म यह है कि अगर उसकी बिदअत हदे-कुफ़्र व शिर्क तक पहुँच जाए मस्लन इस ज़माने में मिर्ज़ा (गुलाम अहमद क़ादियानी) की नुबूवत का क़ायल होना (क़ादियानी होना) तो इस शख़्स का हुक्म

भी पहली क़िस्म की तरह है। यानी ऐसे शख़्स से सुन्नी औरत का निकाह जायज़ नहीं।

और अगर उसकी बिदअत हदे-कुफ़्र व शिर्क तक नहीं पहुँचती तो वह शख़्स मुसलमान तो है लेकिन सुन्निया का कुफ़ू नहीं।

मुख़्तलिफ़ फ़ीह सूरत

एक सूरत इसमें और भी है वह यह कि बाज़ बिदअती फ़िर्क़ों के कुफ़्र में उलमा का इख़्तिलाफ़ है (जैसे आजकल क़ब्र-परस्त अवाम बिदअती) सो मुकफ़्फ़िरीन (काफ़िर क़रार देने वालों) के नज़दीक़ तो सुन्नी का निकाह ऐसे शख़्स से बातिल है और ग़ैर मुकफ़्फ़िरीन को नज़दीक़ यह निकाह ग़ैर कुफ़ू में है। अहक़र का मामूल इस मुख़्तलिफ़ फ़ीह में यह फ़त्वा देने का है कि जब तक निकाह न हुआ हो बुतलान निकाह (निकाह के बातिल होने) के क़ौल पर अमल लाज़िम है, क्योंकि इसमें एहतियात है कि एक ख़ुश एतिक़ाद (अच्छे अक़ीदे वाली) औरत बद एतिक़ाद मर्द से मुताल्लिक़ हो और बद एतिक़ाद भी ऐसा जिसकी बद एतिक़ादी बाज़ के नज़दीक़ हदे-कुफ़्र तक पहुँची है।

और जब निकाह हो चुका तो सेहते-निकाह के क़ौल को अख़्ज़ करना (यानी यह कि निकाह सहीह है) लाज़िम है। क्योंकि अब इसी में एहतियात है क्योंकि अगर इस सूरत में बुतलान का क़ौल लिया गया और इस बिना पर दूसरे से निकाह कर दिया जाए तो एहतिमाल है कि वह पहला निकाह सहीह हो गया हो तो यह दूसरा अक़द हमेशा के लिए ज़िना हुआ करेगा तो एक दीन-दार औरत का उम्र भर के लिए ज़िना में मुब्तला होना लाज़िम आएगा और सेहते निकाह के क़ौल पर इस एहतमाल का एतबार नहीं किया गया।

तीसरी सूरत

फ़ासिक़ मर्द सालिहा (नेक) औरत का कुफ़ू नहीं और बाज़ फ़ुक़्हा के क़ौल के मुताबिक़ नेक आदमी की बेटी भी सालिहा (नेक) के हुक्म में है। जैसे औरत सालिहा हो और मर्द फ़ासिक़ हो तो यह मर्द उस औरत का कुफ़ू नहीं बाज़ फ़ुक़्हा के नज़दीक़ फ़ासिक़ मुअल्लन (जिसका फ़ुस्क़ एलानिया ज़ाहिर हो) होना भी शर्त है और ग़ैर कुफ़ू के साथ निकाह (होने) न होने की तफ़सील ऊपर मज़कूर हुई है। (इस्लाहे-इंक़लाब)

ज़रूरी तंबीह

लड़के के मुसलमान होने की तहक़ीक़ ज़रूरी है

यह अम्र भी क़ाबिले तंबीह है कि आजकल नो तालीम-याफ़्ता तबक़े में बाज़ लोग ऐसे आज़ाद और बेबाक होते हैं जो बिला तकल्लुफ़ मुलाहिदा की तक़लीद की बदौलत या नफ़्स परस्ती व ख़ुदराई की वजह से क़तई अहकाम में मुख़ालिफ़ाना कलाम करते हैं किसी को रिसालत में कलाम है किसी को नमाज़, रोज़ा के अहकाम पर नुकता चीनी है किसी को वाक़िआत क़यामत में शुब्हात हैं सो ख़ूब समझ लो ऐसा आदमी काफ़िर है ख़्वाह वह अपने को मुसलमान ही समझता हो।

और मुसलमान औरत का निकाह काफ़िर मर्द से नहीं होता। या अगर मुसलमान होने के बाद कोई इन उमूर में से मुर्तकिब हुआ (यानी ऐसी हरकत करे) तो वह काफ़िर हो जाता है और निकाह टूट जाता है और उम्र भर हराम कारी होती है। पस बेहद ज़रूरी है कि निकाह के क़ब्ल दामाद साहब की दाढ़ी और फ़ैशन को अगर न देखो तो उसके मुसलमान होने की तहक़ीक़ तो कर लिया करो। और निकाह के बाद ऐसा अम्र पेश आए तो तौबा कराकर तजदीदे-निकाह करा दिया करो।

इस ज़माने में यह भी देखना चाहिए कि लड़का गुमराह फ़िर्क़ों से मुताल्लिक़ तो नहीं

इस बारे में सख़्त एहतियात लाज़िम है। ख़ुसूसन इस तहक़ीक़े- निकाह से पहले निहायत ज़रूरी है कि नाकिह (लड़का) किसी गुमराह फ़िर्क़े का मोतक़िद तो नहीं है? और क़दीम गुमराह फ़िर्क़ों में से न होने पर भी क़नाअत न की जाए। आजकल रोज़ाना नए-नए फ़िर्क़े निकल रहे हैं और ज़माना आज़ादी का है, इसलिए उस शख़्स की इन नए फ़िर्क़ों में से न होने की मुस्तक़िल तहक़ीक़ ज़रूरी है।

इसी तरह वह अगर अंग्रेज़ी ख़्वाँ है तो देख लिया जाए कि जदीद तालीम के असर से उसकी आज़ादी इस्तिख़फ़ाफ़ (दीन को हल्का और घटिया समझने) या ज़रूरियाते-दीन का इंकार करने तक तो नहीं पहुंच गई, वरना अगर एक कलिमा भी कुफ़्र का मुँह से निकल गया तो बग़ैर तजदीदे इस्लाम व तजदीदे निकाह के हराम का इरतकाब ज़ाहिर है जिसको न ग़ैरत क़बूल करती है न हमियते-इस्लामी।

ईसाई या यहूदी औरत से निकाह करना

बाज़ लोग यूरोप के शहरों से ऐसी औरत निकाह करके लाते हैं जो सिर्फ़ क़ौम के एतिबार से ईसाई होती है और मज़हब के एतिबार से महज़ लामज़हब (जिसका कोई मज़हब नहीं) ऐसी औरत से हरगिज़ निकाह सहीह नहीं होता।

और बाज़ लोग ईसाई औरत लाते हैं, मगर उससे इस क़द्र मग़लूब हो जाते हैं कि रफ़्ता-रफ़्ता अपने मज़हब से अजनबी हो जाते हैं और उसका वाजिबुत तहर्रुज़ (यानी बचने का वाजिब होना भी ज़ाहिर है)। (इस्लाहे-इंक़लाब)

इस ज़माने में यह भी देखना चाहिए कि लड़का मुसलमान है या इस्लाम का दुश्मन व बाग़ी

अब वह ज़माना है कि इसकी भी ज़रूरत है कि यह देख लिया जाए कि दामाद साहब मुसलमान हैं या काफ़िर। बजाए इसके कि पहले यह देखा जाता था कि नेकुकार है या बदकार। क्योंकि मुसलमान औरत से निकाह के वास्ते शर्त है मुसलमान होना। मुसलमान औरत और काफ़िर मर्द का निकाह नहीं हो सकता।

अफ़सोस कि आजकल जिन लड़कों को बेटियाँ दी जाती हैं बाज़ लोग उनमें से जदीद तालीम के असर से ऐसे आज़ाद मंश हैं कि उनको दीन व ईमान से कुछ भी ताल्लुक़ नहीं रहा। (सिर्फ़ नाम के मुसलमान हैं) ज़बान से कलिम-ए-कुफ्ऱ बक जाते हैं और कुछ पर्वाह नहीं होती और फिर उन्हीं से एक मुसलमान लड़की का निकाह पढ़वाया जाता है। और सब घरवाले ख़ुश होते हैं कि एक मसनून तरीक़ा अदा किया जा रहा है। इस सुन्नत के लिए मौक़ूफ़ अलैहि (शर्त) है ईमान। अफ़सोस कि नौशा साहब जाने कितनी दफ़ा इससे ख़ारिज हो चुके हैं।

एक नेक बख़्त लड़की अंग्रेज़ीख़्वाँ लड़के से ब्याही गई जो एक मजमअ में ज़बान से ये लफ़्ज़ कह रहे थे कि मुहम्मद (सल्ल०) वाक़ई में बहुत बड़े रिफ़ारमर मर्द थे और मुझको आपसे बहुत ताल्लुक़ है। (लेकिन रिसालत) यह एक मज़हबी ख़्याल है। नऊज़ु बिल्लाह मिन ज़ालिक।

यह कलिमा कुफ़्र है। इससे निकाह टूट जाता है। यह मसअला अगर लड़कीवालों को बतलाया जाता है तो उल्टे लड़ने को सीधे होते हैं कि हमारे ख़ानदान की नाक कटवाते हैं।

(दावाते अब्दियत, मुनाज़अ़तुल-हवा, हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

माल या ख़ानदान की मसलिहत से बद्दीन से निकाह कर देना

बाज़ लोग माल या जाह के लालच में या दीगर ख़ानदानी मसलिहतों के सबब से अपनी लड़कियों का किसी बद अक़ीदे या बद अमल मर्द से निकाह कर देते हैं और वह बद एतिक़ादी हदे-कुफ़्र तक पहुँची हुई होती है तो ज़ाहिरी कैफ़ियत के अलावा उम्र भर के लिए यह ख़राबी लाज़िम आती है कि ज़िना का इरतकाब लाज़िम आता है। फिर अगर औलाद हुई वह भी ग़ैर हलाली (हरामी) और अगर हदे-कुफ़्र तक न भी पहुँचे तब भी हर वक़्त रूहानी अज़ाब रहता है। (इस्लाहे-इंक़लाब)

दीनदारी की बुनियाद पर रिश्ता करने की वजह

वजह इसकी ज़ाहिर है कि निकाह जिन मसलिहतों के वास्ते मौज़ूअ और मशरूअ हुआ है वह ज़्यादातर सब बाहमी मुवाफ़क़त, आपसी मुहब्बत और दोस्ती पर मौक़ूफ़ हैं और यह यक़ीनी बात है कि आपसी मुहब्बत और दोस्ती में जिस क़द्र दीन को दख़ल है इतना किसी चीज़ को नहीं, क्योंकि सिवाए दीन के सब ताल्लुक़ात ख़त्म हो जाते हैं हत्ता कि क़ियामत में जो कि तमाम ताल्लुक़ात के ख़त्म हो जाने का वक़्त है।

وَتَقَطَّعَتْ بِهِمُ الْأَسْبَابُ (پ) مَوَدَّةَ بَيْنِكُمْ فِي الْحَيَاةِ الدُّنْيَا ثُمَّ يَوْمَ الْقِيَامَةِ

يَكْفُرُ بَعْضُكُمْ بِبَعْضٍ وَيَلْعَنُ بَعْضُكُمْ بَعْضًا

तर्जमा : क़ियामत में तुम्हारा यह हाल होगा कि तुम एक-दूसरे के मुख़ालिफ़ होगे और एक-दूसरे पर लानत करोगे।

लेकिन यह दीनी ताल्लुक़ उस वक़्त भी ख़त्म न होगा। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

الْأَخِلَّاءُ يَوْمَئِذٍ بَعْضُهُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ إِلَّا الْمُتَّقِينَ

तर्जमा : तमाम दुनयवी दोस्त उस रोज़ एक-दूसरे के दुश्मन हो जाएँगे सिवाए दीनदार मुत्तक़ी लोगों के।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

वजह इसकी यह है कि (दीन) से ख़ुदा तआला का ख़ौफ़ पैदा होता है और जिसके क़ल्ब में ख़ुदा का ख़ौफ़ होगा वह इस क़द्र छोटी-छोटी बातों का ख़्याल रखेगा कि उससे एहतिमाल ही नहीं होगा कि वह ज़रा भी किसी का हक़ ज़ाया कर दे या किसी को उससे तकलीफ़ पहुंचे या वह अपनी ग़रज़ को दूसरे के हक़ पर मुक़द्दम करे। या किसी की बद ख़्वाही करे या किसी को धोखा दे और इससे बढ़कर कौन-सी तहज़ीब होगी? (इस्लाहे-इंक़िलाब)

दीनदार आदमी का बद्दीन औरत से निकाह मुनासिब नहीं

बाज़ आदमी बाज़ारी औरतों से निकाह कर लेते हैं, निकाह सहीह हो जाता है। बिला वजह उन पर बदगुमानी नहीं करनी चाहिए कि यह अब भी आवारा ही है। लेकिन इसमें भी शक नहीं कि दीनदार आदमी के लिए ख़िलाफ़ एहतियात ज़रूरी है। इसी वास्ते शरीअत मुतह्हिरा का शर्त लगाकर क़ानून मुक़र्रर फ़रमाया है।

اَلزَّانِیْ لَا یَنْکِحُ اِلَّا زَانِیَۃً اَوْمُشْرِکَۃً وَّالزَّانِیَۃُ لَا یَنْکِحُھَا اِلَّا زَانٍ اَوْمُشْرِکٌ

(نور)

"यानी ज़ानी शख़्स निकाह न करे किसी के साथ बजुज़ ज़ानिया और मुश्रिका के और ज़ानिया के साथ निकाह न करे कोई शख़्स सिवाए ज़ानी या मुश्रिक के।" (सूरह् नूर)

अगरचे नसूस के अमूम और दलाइल के इत्तलाक़ से यह तहरीम नफ़ी के दर्जे में नहीं कि निकाह ही मुनअक़द न हो, बल्कि रोकने के दर्जे में है। (यानी निकाह मुनअक़द हो जाता है) लेकिन जब उसकी नापसंदीदगी का मदार उसका ज़ानिया होना है सो जहाँ यह यक़ीनी होगा वहाँ पसंदीदगी बड़े दर्जे में यानी हुरमत की

होगी और जहाँ मुहतमिल होगा वहाँ नापसंदीदगी कम दर्जे की होगी।

और हदीस 'तख़ीरु वन्नुतफ़कुम' में इसकी सरीह ताईद है (यानी यह कि अपने नुत्फ़े के लिए पसंदीदा औरतों का इंतिख़ाब करो) किसी नबी के वास्ते अल्लाह तआला ने ऐसी औरत पसंद नहीं फ़रमाई जो इसमें कभी भी मुलव्विस हुई हो, चाहे वह तौबा ही कर ली हो और यही माना है इस आयते शरीफ़ा के اَلطَّيِّبٰتُ لِلطَّيِّبِيْنَ पाकीज़ा औरतें पाकीज़ा मर्दों के लिए हैं।

अलबत्ता अगर ख़ास तौबा करे जिसमें वह एहतिमाल न रहे और उसको कोई क़बूल न करे तो उसकी इफ़्फ़त की हिफ़ाज़त के लिए या जब उस शख़्स को उससे इश्क़ हो तो यह मौक़ा उससे मुस्तस्ना है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

फ़स्ल (5)

उम्र के लिहाज़ से किफ़ायत (बराबरी)

आजकल औरतों के हुक़ूक़ में लोगों ने बहुत कोताही कर रखी है। मसलन निकाह बूढ़े से कर देते हैं जिसका अंजाम यह होता है कि अगर शौहर मर जाता है तो लड़की की मिट्टी ख़राब हो जाती है और कहीं दूसरी तरह का ज़ुल्म होता है कि बच्चे से जवान औरत का निकाह कर देते हैं। यहाँ एक निकाह हुआ है जिसमें लड़का छोटा बहू बड़ी। दोनों की उम्र में इतना तफ़ावुत (फ़र्क़) कि अगर उस औरत के पहलू में उसका वह शौहर लेटता तो वह उसका लड़का, और मुझे ऐसा निकाह निहायत ही नागवार हुआ।

मगर यह नागवारी इस वजह से न थी कि वजूब या हुरमत तक पहुँची हो बल्कि सिर्फ़ कराहते-तबई और अक़्ली थी, क्योंकि अगर उम्र में मुनासिबत हो तो उससे उन्सियत होती है।

(दावाते अब्दियत, अज़्लुल जाहिलिया)

शौहर-बीवी में उम्र का तनासुब एक शरई चीज़ है

मेरा मक़सूद यह है कि हम उम्री की रिआयत ज़रूरी है ख़ासकर ज़ौजैन (मियाँ-बीवी) में यह अम्र तबई तो है ही मगर किसी क़द्र शरई भी है और शरीअत में भी क़ाबिले-इल्तिफ़ात है। क़ुरआन पाक में है–

قَاصِرَاتُ الطَّرْفِ أَتْرَابًا

"यानी हूरों की हैयत ऐसी होगी जैसे हमउम्र होते हैं"

दूसरी आयत में हैं–

إِنَّا أَنْشَأْنَاهُنَّ إِنْشَاءً..........عُرُبًا أَتْرَابًا

"हमने उठाया उन औरतों को अच्छी उठान पर कि उनको कुँवारियाँ, प्यार दिलाने वालियाँ, हमउम्र।"

ग़रज़ तफ़ावुत उम्र के असर से अजनबियत होती है। आप देखिए बच्चे को बच्चे से जैसी मुहब्बत और दोस्ती होती है वैसी बच्चे को बड़े से नहीं होती।

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा से निकाह का पैग़ाम सबसे पहले हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने दिया, फिर हज़रत उमर (रज़ि०) ने पैग़ाम दिया क्योंकि यह शर्फ़ उनको हासिल था कि इन हज़रात की साहबज़ादियाँ हुज़ूर (सल्ल०) की अज़्वाजे मुतह्हिरात में दाख़िल थीं। यह शर्फ़ भी उन्हीं को हासिल हो जाए कि हुज़ूर (सल्ल०) के दामाद बनें। मगर हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि वह बहुत कमसिन है। उन हज़रात की उम्र ज़्यादा थी, हुज़ूर (सल्ल०) ने उम्र की रिआयत फ़रमा कर दोनों साहिबों की दरख़्वास्त रद्द फ़रमा दी।

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा की शादी के क़िस्से से मक़सूद यह था कि हज़राते शेख़ैन से शादी करने में हुज़ूर (सल्ल०) ने यह उज़्र फ़रमाया था कि वह बच्ची है। एक जुज़ तो इससे यह साबित हुआ कि अगर लड़की छोटी हो तो शौहर की उम्र ज़्यादा न होना चाहिए और बे जोड़ शादी मुनासिब नहीं।

(दावाते-अब्दियत, अज़्लुल-जाहिलिया)

लड़का-लड़की की उम्र में कितना फ़र्क़ होना चाहिए

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा की उम्र शादी के वक़्त साढ़े पंद्रह साल की और हज़रत अली (रज़ि०) की उम्र इक्कीस बरस की थी। इससे मालूम हुआ कि दूल्हा-दुल्हन की उम्र में तनासुब भी मल्हूज़ रखना मुनासिब है और बेहतर यह है कि दूल्हा किसी क़दर दुल्हन से बड़ा हो। (इस्लाहुर्रुसूम)

हुक्मा ने कहा है कि अगर औरत कुछ छोटी हो तो मुज़ाइक़ा नहीं और इसमें राज़ यह है कि औरत महकूम होती है और मर्द हाकिम। नीज़ औरत के क़ुवा ज़ईफ़ होते हैं और इसी लिए जल्दी बूढ़ी हो जाती हैं। अगर दो-चार साल का तफ़ावुत हो तो खप सकता है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

बेजोड़ शादी में लड़की को इंकार कर देना चाहिए

इमाम साहब रहमतुल्लाहि अलैहि की रूह पर हज़ारों रहमतें हों। वे फ़रमाते हैं कि जब लड़की बालिग़ हो जाए तो उस पर किसी का इख़्तियार नहीं रहा। यह मसअला मुख़्तलिफ़ फ़ीहि है, मगर इत्तिफ़ाक़ से इमाम साहब का फ़त्वा बिल्कुल मसलिहत के मुवाफ़िक़ है।

आजकल इसको बेशर्मी समझते हैं कि माँ-बाप निकाह करना चाहें और लड़की इंकार कर दे। हालाँकि इस्तदआ (शादी की फ़रमाइश करना) बेशर्मी है इंकार करना बेशर्मी नहीं, बल्कि यह तो ऐन हया है कि ब्याह के नाम को पसंद नहीं करती। देख लो यह अक़्ल की बात है या नहीं, तो अगर शादी बेजोड़ हो तो ऐसे मौक़े में लड़कियों को ज़रूर ही इंकार कर देना चाहिए।

कम उम्र लड़की का ज़्यादा उम्र वाले से रिश्ता करने के मफ़ासिद

अगर लड़की कमसिन और मर्द ज़्यादा उम्र वाला हो तो

ग़ालिब यह है कि वह बेचारी बहुत जल्द बेवा हो जाएगी। लोग हमउर्मी का क़तई ख़्याल नहीं करते। बेज़बान लड़की यानी कुँवारी या मिस्ल तेरह-तेरह बरस की लड़कियों को साठ-साठ बरस के बूढ़ों के साथ ब्याह कर देते हैं। यहाँ भी वही मफ़ासिद होते हैं कि—

1. अगर औरत अफ़ीफ़ा पाकदामन और ख़ुद को पारसा रखने वाली हुई तब तो वह तमाम उम्र के लिए क़ैद में मुब्तला होगी।

और अगर इस सिफ़त से ख़ाली हुई तो बदकारी में मुब्तला हुई और दोनों हालतों में मियाँ-बीवी में नागवार, रंजिश और नाइत्तिफ़ाक़ी (ज़रूरी होगी) दूसरी सूरत में दोनों की बेआबरूई बल्कि दोनों के ख़ानदान की भी और साथ-साथ रुस्वाई है।

और सबसे बड़ा मुफ़्सदा यह कि अकसर बूढ़ा पहले मर जाता है और वह मज़्लूमा अकसर रसम व रिवाज में आर होने की वजह से बेवा बैठी रहती है। बाज़ औक़ात यह ग़रीब खाने-पीने की मुहताज हो जाती है। अगर उर्फ़ी शराफ़त है तो किसी की मज़दूरी नहीं कर सकती और अगर मज़दूरी गवारा की तो दूसरे के घर बाज़-औक़ात रहना पड़ता है और चूंकि उसका कोई सरपरस्त नहीं होता इसलिए बुरे ख़्यालात के लोग उस बेचारी के दर्पे होते हैं और कभी तर्ग़ीब (लालच) और कभी तर्हीब से (डरा-धमका कर) और कभी किसी हीले-बहाने से उसकी आबरू और दीन ख़राब कर देते हैं। ख़ासकर कि जब उस (औरत) में भी नफ़्सानी तक़ाज़ा हो। (इस्लाहे-इंक़लाब)

कमसिन लड़के से उम्र रसीदा लड़की की शादी करने की ख़राबी

बाज़ क़ौमों में इसके अक्स का बड़ा रिवाज है यानी लड़का

छोटा होता है और लड़की बड़ी। बाज़ बेवक़ूफ़ ऐसा कर देते हैं कि लड़का छोटा और लड़की बहुत बड़ी। अब लड़की तो पहले जवान हो गई और लड़का अभी चूँचूँ का बच्चा है बल्कि कहीं इतना तफ़ावुत होता है कि लड़का उसकी गोद में खिलाने के लायक़ होता है। उन बेअक़्लों ने यह न देखा कि सब ताल्लुक़ात की बुनियाद ज़ौजैन का तवाफ़ुक़ (बाहमी मुआफ़क़त) है और इस सूरत में ख़ुद उसी की उम्मीद नहीं।

चुनाँचे ऐसे मौक़े पर देखा गया है कि लड़की में जवानी का तक़ाज़ा पैदा हो गया और लड़का किसी क़ाबिल ही नहीं। पस या तो वह किसी और से ख़स्ता व ख़राब हो गई या घुट-घुटकर तपेदिक़ में मुब्तला हो गई। और अगर वह जवान भी हो तो उसका जोड़ का नहीं। इब्तिदाई नफ़रत का असर मौजूद और इससे बढ़कर यह कि शौहर की इज़्ज़त ख़त्म। (इस्लाहे-इंक़लाब)

अगर लड़की छोटी हुई तो वह जब ज़ईफ़ होना शुरू होगी तो चूंकि मर्द की उम्र उससे ज़्यादा है वह भी ज़ईफ़ होगा तो दोनों साथ-साथ बूढ़े होंगे (क्योंकि औरत जल्दी बूढ़ी हो जाती है) तो बावजूद कि अक़्ल इसको जायज़ रखती है मगर फिर भी हुज़ूर (सल्ल०) को किस तरह पसन्द होगा जो बिल्कुल अक़्ल के भी ख़िलाफ़ है।

और वजह इसकी यह है कि शौहर हाकिम होता है और औरत मर्द से पहले बूढ़ी हो जाती है। तो जब औरत की उम्र ज़्यादा है तो शौहर से बहुत पहले बूढ़ी हो जाएगी तो अम्मा जान पर हुकूमत करते हुए क्या अच्छा लगेगा। लामुहाला वह दूसरी लाएगा और ऐश तल्ख़ होगा। बाज़ क़ौमों में तौबा आफ़त है कि लड़का नाबालिग़ और लड़की पूरी जवान और दोनों का निकाह हो जाता है फिर आख़िर में रुस्वाई होती है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

फ़स्ल (6)

माल के एतिबार से भी मुसावात होना बेहतर है

अगर मुफ़्लिस, ग़रीब औरत से शादी एक मसलिहत के हासिल करने और एक नुक़सान से बचने की वजह से न की जाए तो वह नाज़ेबा नहीं बल्कि मुनासिब है। अकसर देखा गया है कि मुफ़्लिस (ग़रीब औरत) में दो बातों की कमी होती है। एक सलीक़े की, दूसरी सैर-चश्मी की। पस सलीक़े की कमी से उसमें ख़िदमत की लियाक़त नहीं होती है। और उससे तकलीफ़ होती है और सैरचश्मी की वजह से बाज़-औक़ात ज़रूरी ख़र्चों में तंगी करती है (यानी अपने फ़ितरी मिज़ाज के एतिबार से बुख़्ल से काम लेती है) जिससे अहले हुक़ूक़ के हुक़ूक़ भी ज़ाया होते हैं और बाज़ मुक़ामात पर शर्मिन्दगी भी होती है। किसी मेहमान को रोटी कम दे दी। किसी साइल, हाजतमंद को महरूम कर दिया और अगर वह बचपन से खाना-पीना देने खिलाने-पकाने में रही होगी तो राहत व इंतिज़ाम की ज़्यादा उम्मीद है।

और वह मज़र्रत (नुक़सान) यह है बाज़ को देखा गया है कि अचानक माल व दौलत (की कसरत) को देखकर आँखें फट जाती हैं और उछलने लगती हैं और सलीक़ा होता नहीं। पस बेतमीज़ी से उसको उड़ाना शुरू कर देती हैं। चुनाँचे नये मालदारों को या बुख़्ल की बला में मुब्तला पाया या इसराफ़ में, उनमें एतिदाल कम होता है। क्योंकि अमवाल से मुंतफ़ा होने की आदत नहीं थी जो एतिदाल सीखती और अकसर देखा गया है कि ख़ाविंद के घर से उसको मुहब्बत नहीं होती, नक़द अलग, जिन्स अलग, कभी ज़ाहिर में कभी ख़ुफ़या, जिस तरह बन पड़ता है अपने मायकेवालों को

भरना शुरू कर देती हैं और उम्रभर यही नज़ला बहता रहता है और इससे घर में बेबरकती होती है। मर्द कमाता-कमाता थक जाए मगर वह उड़ाने से नहीं थकती। इसलिए मुनासिब यह है कि जहाँ तक हो सके अपने बराबरवालों में निकाह का एहतिमाम करना चाहिए ताकि सब मसलिहतें महफ़ूज़ रहें और किसी की तबीयत ही ख़ास रंग की हो उसका ज़िक्र नहीं। (इस्लाहे-इंक़लाब)

ग़रीब घर की लड़की से शादी करे या मालदार घर की लड़की से

पहले तो उक़्ला की यह राय थी कि ग़रीब की लड़की से शादी करना चाहिए मगर इन वाक़िआत की वजह से (जिसका इशारा किया गया और आगे आ रहा है) अब बहुत लोगों की राय यह है कि ग़रीब की लड़की हरगिज़ न लेनी चाहिए, क्योंकि अपने माँ-बाप को ग़रीब देखकर शौहर का सारा माल लगा देती हैं।

ख़ैर, मैं तो यह राय नहीं देता। मेरी राय तो यह है कि आदमी अपने बराबर की लड़की से शादी करे क्योंकि अगर अपने से ज़्यादा अमीर की लड़की से शादी करेगा तो वह हरीस न होगी और न अपने घरवालों को भरेगी मगर बद्दिमाग़ होगी और शौहर की उसकी निगाह में कुछ क़द्र न होगी और अगर ग़रीब लड़की से किया तो वह हरीस भी होगी और हर एक चीज़ को देख-देखकर उसकी राल टपकेगी और अपने अज़ीज़ों को भी भरेगी।

ख़ैर, यह बात तो तजुर्बे के मुताल्लिक़ है। मेरा मतलब यह है कि औरतें माल के सर्फ़ करने में ऐसी बेएहतियातियाँ करती हैं जिनकी वजह से उक़्ला को यह सोच पैदा हो गई कि अमीर की लड़की लेना चाहिए या ग़रीब की और इस बेएहतियाती की वजह से नौबत यह पहुँच गई कि अब बहुत-से उक़्ला ग़रीब की लड़की लेने को बुरा समझते हैं। (दीन व दुनिया, अस्बाबुल फ़ुज़ला)

बाब 5

फस्ल (1)

लड़के और लड़की का इंतिखाब

शादी के लिए लड़का कैसा होना चाहिए

फ़रमाया कि लड़की के निकाह के बाब में इसका लिहाज़ ज़रूरी है कि लड़के को दीनदार देख लिया जाए। बग़ैर दीनदारी के हुक़ूक़ की अदायगी नहीं होती। जैसा कि मुशाहिदा है कि जो लोग दीनदार नहीं हैं उनको हुक़ूक़ की अदायगी की परवाह भी नहीं। अगरचे लड़का कैसा ही साहिबे कमाल हो, लेकिन दीनदार न हो तो उसके साथ लड़की की शादी हरगिज़ न करे।

(मल्फ़ूज़ाते-इबरते)

जब तक आदमी दीन का पाबन्द न हो उसकी किसी बात का भी एतिबार नहीं, क्योंकि उसका कोई काम हुदूद के अंदर तो होगा नहीं। अगर दोस्ती व मुहब्बत होगी तो हुदूद से बाहर, अगर दुश्मनी और (नफ़रत) होगी तो वह भी हुदूद से बाहर। जब हुदूद ही नहीं तो ज़ाहिर है कि ऐसा शख़्स सख़्त ख़तरनाक होगा, हर चीज़ को अपने दर्जे पर रखना यही बड़ा कमाल है।

(अल इफ़ाज़ात)

दीनदारी की तारीफ़

लोगों को यही ख़बर नहीं कि दीन के क्या-क्या अजज़ा हैं, इसलिए दीन को सिर्फ़ नमाज़-रोज़ा में मुंहसिर कर रखा है। यही पहली ग़लती है। ख़ूब समझ लेना चाहिए कि दीन के उसूली अजज़ा पाँच हैं। अक़ाइद, इबादात, मामलात, मआशिरत, तहज़ीब अख़्लाक़ या तर्तीबे-नफ़्स। (हुक़ूक़े-मुस्लिम)

हसीन (ख़ूबसूरत) वह है जिसकी नाक, कान, आँख सब ही हसीन हों, सब चीज़ें मौज़ूं या मुतनासिब हों। अगर सब चीज़ें अच्छी हों मगर आँखों से अंधा हो या नाक कटी हो तो वह हसीन नहीं। इसी तरह दीनदार वह है जो दीन के तमाम शोबों का जामेअ् हो। (अत तजदीदे-तालीम)

आख़िर मआशिरत की दुरुस्तगी भी तो दीन का शोबा है, मगर अकसर लोग इसको मामूली बात समझते हैं और वज़ीफ़ों को (दीनदारी) और ज़रूरी समझते हैं। आदाबे मआशिरत का ख़ुलासा यह है कि उसकी ज़ात से किसी को तकलीफ़ न पहुँचे। अगर मआशिरत ठीक हो और पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़े तो (ऐसा शख़्स दीनदार है और) विलायत उसके लिए रखी हुई है।

(हुस्नुल अज़ीज़)

एक बुज़ुर्ग का यहूदी से मशवरा

एक बुज़ुर्ग का क़िस्सा है कि उनके एक लड़की थी जिसकी शादी के पैग़ाम बकसरत आ रहे थे। उन्होंने अपने एक पड़ोसी से जो एक यहूदी था मशवरा किया कि मेरी लड़की के फ़लाँ-फ़लाँ जगह से पैग़ाम आ रहे हैं तुम्हारे नज़दीक़ कौन-सी जगह अच्छी है। उसने पहले तो उज़्र किया कि आपको मुझसे मशवरा न करना चाहिए क्योंकि मैं दीन में आपका मुख़ालिफ़ हूँ और मुख़ालिफ़ के मशिवरे का क्या एतिबार। तो बुज़ुर्ग ने फ़रमाया कि तुम शरीफ़ आदमी हो, भले ही तुम मुस्लिम नहीं हो इसलिए ग़लत मशवरा नहीं दोगे इसलिए तुम बिला तकल्लुफ़ मशवरा दो।

तो वह यहूदी कहने लगा कि मैंने सुना है कि आपके नबी करीम (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि—

تنكح المرأة لاربع لمالها ولجمالها ولحسبها ولدينها فاظفر بذات الدين

"औरत से निकाह करने में चार बातों को देखा जाता है— माल को जमाल को और हसब को और दीन को। फिर

आपने फ़रमाया कि तुम दीनदार से निकाह करने की कोशिश करो।"

इससे मालूम हुआ कि आपके मज़हब इस्लाम में सबसे ज़्यादा देखने की चीज़ दीन है। तो मेरे ख़्याल में जितने लोगों ने भी पयाम भेजा है दीन पूरा-पूरा तो किसी में भी नहीं है। मेरे नज़दीक़ तो एक तालिबे इल्म, जो आपकी मस्जिद में रहता है, वह बड़ा दीनदार है। हर वक़्त ख़ुदा के काम में लगा रहता है। पस आप अपनी बेटी को उससे ब्याह दें। इन्शाअल्लाह तआ़ला बरकत होगी। चुनांचे उन बुज़ुर्ग ने ऐसा ही किया और उम्र भर उनकी लड़की राहत से रही। (अत तबलीग़)

दामाद, बहनोई बनाने के लिए लड़के में क्या-क्या देखना चाहिए?

एक साहब ने लिखा कि लड़कियों की शादी की बहुत फ़िक्र है, कोई निस्बत हसबे-मंशा नहीं आई जिससे अक़्द किया जाए, अगर कहीं से दाढ़ीवाले लड़के की बात आती है तो निहायत ग़रीब मफ़्लूकुल हाल ज़ाहिर होते हैं। और जिसको दाल-रोटी से ख़ुश देखा जाता है तो वहाँ दाढ़ी सफ़ाचट, कई जगह महज़ इसी वजह से इंकार कर दिया गया। दुआ कीजिए हक़ तआ़ला आबरू रखे और इस मामले में शर्मिन्दगी की नौबत न आए। हर शख़्स कहता है कि मियाँ इस ख़्याल को छोड़ दो, आजकल दाढ़ी बड़ी मुश्किल से मिलेगी।

जवाब में तहरीर फ़रमाया कि वाक़ई बड़ी मुश्किल है। मैं पुख़्ता राय तो नहीं देता लेकिन मेरा ख़्याल यह है कि इस ज़माने में पूरी दीनदारी दाढ़ीवालों में भी नहीं। पस एक दाढ़ी मुंडाने का गुनाह कर रहा है तो दूसरा शहवत-परस्ती का गुनाह कर रहा है तो महज़ दाढ़ी लेकर क्या करेंगे। अगर हो तो हक़ीक़ी दीनदारी हो

जो बहुत उनक़ा है पस इस सूरत में अगर इसमें वुसअत की जाए (तो बहतर है)।

1. यानी सिर्फ़ (चन्द) चीज़ों को देख लिया जाए। एक यह कि इस्लामी अक़ाइद में शक व शुब्हा न हो या तमस्ख़र व इस्तहज़ा से पेश न आए।
2. दूसरे तबीअत में सलाहियत हो कि अहले इल्म और बुज़ुर्गों का अदब करता हो।
3. नरम ख़ू हो (यानी नरम मिज़ाज हो)।
4. अपने मुताल्लिक़ीन के हुक़ूक़ अदा करने की उससे उम्मीद हो।
5. और बक़दरे-ज़रूरत माली गुंजाइश होना तो ज़रूरी ही है। (जिस लड़के में ऐसे औसाफ़ पाए जाएँ) तो ऐसे शख़्स को गवारा कर लिया जाए फिर जब आमदो-रफ़्त और मेल-जोल और मुनास्बत होगी तो ऐसे शख़्स से बईद नहीं कि दाढ़ी के मामले में भी उसकी इस्लाह हो जाए।

(मल्फ़ूज़ाते-अशर्फ़िया)

तीन अम्र (और) हैं जिनका लिहाज़ करना और देखना बहुत ज़रूरी है—

1. एक क़ुव्वते-इक्तिसाब (यानी कमाने की क़ुव्वत)
2. दूसरे किफ़ायत (बराबरी) में ज़्यादा तफ़ावुत न हो।
3. तीसरे दीनदारी। इन दोनों सूरतों में ज़्यादा काविश (खोज) छोड़ दे वरना वही बात पेश आएगी जिसका ज़िक्र हदीस में है कि जब ख़ुल्क़ (अख़्लाक) और दीन में किफ़ायत (मुनासिबत) हो तो निकाह कर दिया करो वरना ज़मीन में फ़सादे कबीरा होगा।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

परदेसी लड़के से शादी नहीं करना चाहिए

फ़रमाया कि परदेसी मर्दों से लड़कियों की शादी करना अकसर मुज़िर-रसाँ होता है। (मल्फ़ूज़ात)

ज़्यादा क़रीबी रिश्तेदारों में शादी करने की ख़राबी

फ़रमाया तजुर्बाकारों ने मना किया है कि ज़्यादा क़ुर्ब के रिश्ते के इलाक़ों में शादी नहीं करना चाहिए क्योंकि औलाद ज़ईफ़ होती है। (हुस्नुल अज़ीज़)

(वजह इसकी यह है) तवालिद (औलाद) के लिए जहाँ बदन की सेहत और मिज़ाज की सलामती वग़ैरह अहवाले तिब्बिया शर्त है वहाँ तवाद (यानी मुहब्बत, क़ल्बी मैलान और इश्तियाक़) जुज़्व आख़िर और इल्लते-ताम्मा के हैं क्योंकि वह मौक़ूफ़ है। एहबाल (हमल होने) पर और एहबाल (क़रारे हमल) अज़रुए तिब मौक़ूफ है। तवाफ़ुक़े इंज़ालीन (दोनों के एक साथ इंज़ाल होने पर) और ज़ाहिर है कि वह मुहब्बत व मुअद्दत (और क़ल्बी मीलान) पर मौक़ूफ़ है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

लड़की के रिश्ते में जल्दबाज़ी न करें, बल्कि ख़ूब देखभाल कर इत्मीनान हासिल कर लें

फ़रमाया : औरतों को ब्याह-शादी का चोंचला सूझा करता है। कुछ नहीं देखतीं, मौक़े-बेमौक़े शादी कर देती हैं। चुनांचे एक बीबी ने अपनी लड़की का निकाह बावजूद मना करने के महज़ इसलिए कर दिया कि शायद मैं मर जाऊँ।

बाद में तहक़ीक़ हुई कि वह बड़ा ज़ालिम था। एक अंग्रेज़ से लड़ा फिर सज़ा के ख़ौफ़ से जंग में नाम लिखा दिया। वह सबसे लड़ता है। अब जो लोगों की मुमानिअत उसको याद दिलाई जाती है तो कहती है कि क्या करूं इसकी क़िस्मत! इस पर फ़रमाया कि ऐसा दिल में आता है कि ऐसे कहने वाले का गला घोंट दूँ।

इसका तो यह मतलब है कि हमारी तो कोई ख़ता नहीं, अल्लाह मियाँ की ख़ता है। नऊज़ु बिल्लाह मिन ज़ालिक।

(हुस्नुल-अज़ीज़)

फ़स्ल (2)

निकाह के क़ाबिल सबसे अच्छी औरतें

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) से अर्ज़ किया गया कि कौन-सी औरत सबसे अच्छी है?

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो ऐसी हो कि जब उसको शौहर देखे तो उसका दिल ख़ुश हो जाए। और जब उसको कोई हुक्म दे उसको बजा लाए। और अपनी ज़ात और माल के बारे में कोई नागवार बात करके उसके ख़िलाफ़ न करे। (नसई)

हज़रत माक़ल बिन यसार (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ऐसी औरतों से निकाह करो जो मुहब्बत करनेवाली और बच्चे जननेवाली हों। क्योंकि मैं तुम्हारी कसरत (ज़्यादती) से दूसरी उम्मतों पर फ़ख़्र करूँगा (कि मेरी उम्मत इतनी ज़्यादा है)। (अबू-दाऊद)

अगर वह बेवा औरत है तो पहले निकाह से इसका अंदाज़ा हो सकता है कि वह अपने शौहर से मुहब्बत करनेवाली और बच्चे जनने वाली है और अगर कुँवारी है तो उसकी तंदुरुस्ती से और उसके ख़ानदान की निकाह की हुई औरतों से इसका अंदाज़ा हो सकता है। (हयातुल-मुस्लिमीन)

बीवी और बहू बनने के लिए लड़की में क्या देखना चाहिए

इस ज़माने में मंकूहा (वह लड़की जिसका निकाह किया जाए उस) में ज़्यादातर जमाल को और नाकिह (निकाह करनेवाले मर्द) में ज़्यादातर माल को देखते हैं और सबसे कम दीन को देखते हैं।

और बाक़ी औसाफ़ में आराअ मुख़्तलिफ़ हैं। हालांकि सबसे कम क़ाबिले-इल्तफ़ात यही माल और जमाल है और सबसे ज़्यादा तवज्जोह के क़ाबिल दीन ही है। इसी वास्ते हदीस में औरत के बारे में आया—

تنکح المراۃ لاربع لحسبہا ولمالہا ولجمالہا ولدینہا فاظفر بذات الدین تربت یداک (مشکوۃ)

तर्जमा : यानी औरत से चार वजह से निकाह किया जाता है। शराफ़त की वजह से, माल की वजह से, ख़ूबसूरती की वजह से और दीनदारी की वजह से। ऐ मुख़ातब! तुझको दीनदार औरत से निकाह करना चाहिए। (मिश्कात)

इस (हदीस पाक) में माल व जमाल पर नज़र न करने और दीन पर नज़र करने का अम्र (हुक्म) फ़रमाया है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

लड़की में जदीद तालीम देखना और नौ तालीम-याफ़्ता से शादी करना

जिस तरह बाज़ लोग लड़के के एफ़. ए, एम. ए होने को देखते हैं, अफ़सोस है कि बाज़ नए मज़ाक़ (ज़ौक़) के लोग ऐसी मंकूहा (लड़की) तलाश करते हैं जिसने नई तालीम हासिल की हो या तालीम के साथ डॉक्टरी या प्रोफ़ेसरी डिग्री पास कर चुकी हो। कोई इन उक़्ला से पूछे कि इससे मक़सूद क्या है? अगर यह मक़सूद है कि इनका बार हम पर कम हो, ये ख़ुद भी कमाने में इमदाद करें तब तो बेहद बेहमिय्यती है कि मर्द होकर औरत के साथ तक़ाज़ाए औरत का मम्नून होना बग़ैर ख़ुलूसे कामिल के ख़ुद ख़िलाफ़े-ग़ैरत है।

और अगर यह मक़सूद है कि ऐसी औरत सलीक़ेदार होगी, हमको राहत ज़्यादा पहुँचाएगी तो ख़ूब समझ लो कि राहतरसानी

के लिए सिर्फ़ सलीक़ा काफ़ी नहीं बल्कि ख़ुलूस व इताअत व ख़िदमत गुज़ारी के जज़्बे की इससे ज़्यादा ज़रूरत है और सलीक़े में कुछ कमी भी हो तो उसको बर्दाश्त कर लिया जाता है और अगरचे किसी क़द्र वक़्ती तकलीफ़ होती है, लेकिन जल्दी ख़त्म हो जाती है और उसका असर बाक़ी नहीं रहता। और बड़ा सलीक़ा हो और वे औसाफ़ न हों तो अव्वल तो वह ख़िदमत ही क्यों करेगी क्योंकि तजुर्बे से इस तालीम का असर यह साबित हुआ है कि इससे तकब्बुर, ख़ुदग़र्ज़ी, ख़ुदराई, बेबाकी, आज़ादी, बेहयाई, चालाकी निफ़ाक़ वग़ैरह बुरे अख़्लाक पैदा हो जाते हैं। पस जब उनका दिमाग़ तकब्बुर, नख़ुव्वत से ऊपर है तो वह तुम्हारी ख़िदमत ही क्यों करेगी जिससे तुमको राहत पहुँची। बल्कि ख़ुदग़र्ज़ी की वजह से उल्टा वह ख़ुद तुम ही से अपने हुक़ूक़ का आला पैमाने पर मुतालबा करेगी जिससे तुम्हारी आफ़ियत, सलामती तंग हो जाएगी। ग़र्ज़ वह ख़ुद तुम ही से अपनी ख़िदमत चाहेगी और अगर तुम उनसे वह ख़िदमत चाहोगे जो एक शरीफ़-सादा औरत उसको अपना फ़ख़्र समझती है तो वह तुमको ज़ाबते का जवाब देगी कि यह काम हमारे ज़िम्मे नहीं, बल्कि जो उनके ज़िम्मे होगा उसमें भी ख़िलाफ़े तहज़ीब या सेहत ख़राब होने का उज़्र करके टका-सा जवाब देंगी और अपने हुक़ूक़ तुमसे पूरे वुसूल करेंगी। तंख़्वाह तुमसे कुल रखवा लेंगी और टाल-मटोल करोगे तो अदालत पहुंचेंगी।

और अगर यह कहो कि यह बहुत कम होता है तो जवाब में अर्ज़ करूँगा कि फिर वह तालीमयाफ़्ता नहीं हैं। असल बात यह है कि नए उलूम (जदीद तालीम) के आलिम होने से जाहिल होना ज़्यादा बेहतर और बे-ख़तर है। क्योंकि जाहिल होने में अगर अख़्लाक़े-हमीदा न होंगे तो अख़्लाक़े-रज़ीला (बुरे अख़्लाक़) भी तो न होंगे।

आजकल तहज़ीब जिसका नाम रखा गया है, जिसका हासिल बनावटीपन, अपना ऐब छुपाना, धोखा देना और मुनाफ़िक़त है, वह सरासर अज़ाब है। जिसका पाया जाना औरत में दोज़ख़ के मिस्ल है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

हुस्न व जमाल की बुनियाद पर निकाह करने का अंजाम

माल व जमाल (ख़ूबसूरती) की उम्र तो बहुत ही कम है, माल तो एक शब में बेवफ़ाई कर जाता है, और जमाल एक बीमारी में ख़त्म हो जाता है और बाज़ अमराज़ में फिर दोबारा आता ही नहीं। जैसे आँख फूट जाए, या चेचक निकल आए और दाग़ न जाए या सर के बाल गिर जाएँ और इन जैसी और दीगर बीमारियाँ।

फिर जब (निकाह से मक़सूद) माल व जमाल था और वह रुख़्सत हो गया तो तमामतर मुहब्बत व उलफ़त भी जो उस पर मब्नी (क़ायम) थी वह भी ख़त्म हो गई। और फिर ज़ौजैन (मियाँ-बीवी) में से हर एक दूसरे की नज़र में मबग़ूज़ (नापसंदीदा और क़ाबिले नफ़रत) हो गया और हमेशा के लिए निबाह मुश्किल हो गया और अगर माल व जमाल बाक़ी भी रहा तब भी जहाँ दीन नहीं तो बद्दीन आदमी के न अख़्लाक़ दुरुस्त होते हैं, न आमाल व मामलात। उसकी किसी बात का भी एतिबार नहीं, क्योंकि उसका कोई काम हुदूद के अंदर तो होगा नहीं, दोस्ती (व मुहब्बत) होगी तो हद से बाहर, दुश्मनी (व नफ़रत) होगी तो हद से बाहर।

बद अख़्लाक़ी, बद मामलगी, बद आमाली, ख़ुदपरस्ती, ख़ुदग़र्ज़ी और हुक़ूक़ ज़ाया करना (ये सब असबाब हैं बाज़ नफ़रत पैदा करने के) जब रात-दिन ऐसे असबाब बराबर वाक़ेअ होते रहेंगे तो कहाँ तक उनमें मुहब्बत रह सकती है। आपस में कुदूरत-नाइत्तिफ़ाक़ी, ग़ैज़ व तैश पैदा होना शुरू होगा यहाँ तक कि तमाम मसालिह ज़ौजियत ज़ाया हो जाएंगे। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

नाक़ाबिले-इंकार हक़ीक़त

हमने ख़ुद देखा है कि बीवी हसीन व जमील और शौहर माल व मनाल में क़ारून, मगर कहीं मियाँ की बद्दीनी से तो कहीं बीवी की बदख़ुल्क़ी व बदमिज़ाजी व बदचलनी के सबब मियाँ-बीवी में बोलचाल तक नहीं। वे एक-दूसरे को देखकर मुँह फेर लेते या एक-दूसरे को देखकर नाक-भों चढ़ाते हैं। मियाँ कहीं दूसरी जगह रोटी पकवाते फिरते हैं। वे बावजूद माल होने के एक-एक पैसे को तरसते, बाज़ जगह तो हमने देखा है कि बीवी ग़ायत नफ़रत के सबब मियाँ से पर्दा करती है। ये समरात हैं माल व जमाल (की बुनियाद पर निकाह करने) के) (इस्लाहे-इंक़िलाब)

इत्तफ़ाकन अगर लड़का-लड़की में इश्क़ हो जाए तो आपस में निकाह कर देना चाहिए

अगर इत्तिफ़ाकन किसी ग़ैर मंकूहा (अजनबी) लड़की से किसी ग़ैर मर्द का इश्क़ हो जाए तो बेहतर है कि उनका निकाह कर दिया जाए। (तालीमुद्दीन)

बहुत ज़्यादा हसीन बीवी होने में भी कभी फ़ित्ना होता है

आजकल लोग मंकूहा औरतों में हुस्न व जमाल को देखते हैं, हालांकि राहत और फ़ित्नों से हिफ़ाज़त आजकल इसी में है कि बीवी ज़्यादा हसीन व जमील न हो। हुस्न व जमाल की कमी क़ुदरती वक़ाया है। अर्ज़ करने पर फ़रमाया, गो हुस्न व जमाल ख़ुदा तआला की नेमत है; लेकिन आजकल इसमें फ़ित्ने का एहतिमाल ग़ालिब है। कभी फ़ित्ना इस तरह होता है कि हसीन बीवी पर फ़रेफ़्ता होकर माँ-बाप को नाराज़ करके और दीन से दूरी इख़्तियार करके फ़ित्ने में मुब्तला हो जाता है, जिसका सबब यही बीवी का इश्क़ होता है। (हुस्नुल अज़ीज़)

एक मज़लूम औरत की दास्तान,

ख़ूबसूरती की वजह से निकाह होने का अंजाम

फ़रमाया आजकल एक बीबी का ख़त आया है तक़रीबन चालीस बरस का अरसा हुआ, ये मुझसे बैअत हुई थीं। ये बीबी निहायत दीनदार हैं। ख़ाविंद के सताने और बेमुरव्वती और बेवफ़ाई की शिकायतें लिखी हैं जिसको पढ़कर दिल को बेहद क़लक़ और सदमा हुआ। लोगों ने बेहद ज़ुल्म पर कमर बांध रखी है। उस ग़रीब ने यहाँ तक लिखा है कि रोते-रोते मेरी बीनाई कमज़ोर हो गई है। कभी-कभी जी में आता है कि कपड़े फाड़कर बाहर निकल जाऊँ या कुएँ में डूबकर मर जाऊँ। मगर दीन के ख़िलाफ़ होने की वजह से कुछ नहीं कर सकती, दिल को समझाकर रुक जाती हूँ। दिन-रात रोने के सिवा कुछ काम नहीं।

फ़रमाया, बड़े ज़ुल्म की बात है, आख़िर रोने के सिवा बेचारी करे भी क्या? उन बीबी के अक़देसानी को तक़रीबन सतरह बरस का अरसा हुआ। उन साहब ने बड़ी आरज़ुओं और तमन्नाओं से उन बीबी से निकाह किया था, उस वक़्त रंग व रोगन अच्छा होगा। उस वक़्त तो सिफ़ारिशें कराते फिरते थे। लट्टू हो रहे थे (महज़ हुस्न व जमाल की बिना पर) अब ज़ईफ़ी का वक़्त है। बेचारी को मुँह भी नहीं लगाते। हालांकि नान-नफ़्क़ा से भी मुहताज है, मियां उम्र में छोटे और बीवी बड़ी हैं, क्या ठिकाना है उस संगदिली और बेरहमी का कि किसी बात का भी असर नहीं। अगर वह बेचारी कहती भी है कि मेरी देरीना ख़िदमात का यही समरा है? तो कहते हैं कि तूने ख़िदमात ही कौन-सी की हैं? न मालूम ख़िदमात की फ़ेहरिस्त उनके ज़ेहन में क्या है जिसको ये पूरा न कर सकीं। यह अंजाम होता है ख़ूबसूरती की बुनियाद पर रिश्ता करने का या बद्दीन से रिश्ता करने का।

माल की बुनियाद पर निकाह करने की मज़म्मत

बाज़ निकाह करनेवाले मंकूहा (लड़की) के घर में माल को देखते है और दर हक़ीक़त यह इससे भी बदतर है कि मंकूहा या उसके औलिया (यानी लड़कीवाले) मर्द के माल को देखें। क्योंकि यह तो किसी दर्जे में अगर उसमें गुलू न हो अम्रे माक़ूल (समझ में आनेवाली बात) है, क्योंकि मर्द पर औरत का महर और नफ़्क़ा वाजिब होता है तो इस्तिताअत रखने और इस बिना पर माल को देखने में मुज़ायक़ा नहीं बल्कि एक क़िस्म की ज़रूरी मसलिहत है।

अलबत्ता इसमें एक क़िस्म का गुलू हो जाना कि उसको और ज़रूरी औसाफ़ पर तर्जीह दी जाए यह मज़मूम है।

लेकिन औरत के मालदार होने पर नज़र रखना, महज़ इस ग़रज़ से कि हम उससे फ़ायदा उठानेवाले होंगे या हम पर नफ़्क़ा वग़ैरह का बार कम पड़ेगा, बड़ी बेग़ैरती और बेहमिय्यती है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

जहेज़ की लालच में मालदार लड़की से रिश्ता करने का अंजाम

इसके अलावा तजुर्बे से मालूम हुआ है कि मालदार औरत नादार मर्द को कभी ख़ातिर में नहीं लाती, उसको हक़ीर और ख़ादिम समझती है।

और नाकिह (लड़के) के वालिदैन का उसपर नज़र करना कि ऐसी बहू को ब्याह कर लाएँ कि जहेज़ बहुत-सा लाए, और भी अहमक़ाना हरकत हैं। अव्वल तो वह जहेज़ बहू की मिल्कियत है और किसी को उससे क्या ताल्लुक़। लेकिन अगर यह भी समझा जाए कि घर में रहेगा तो हमारे भी काम आएगा। इससे अव्वलन तो वही बेग़ैरती (और लालच) है दूसरे अगर इसको गवारा भी कर लिया जाए इस ख़्याल पर कि नाकिह (यानी शौहर) को तो किसी

दर्जे में गुंजाइश है। मगर सास-ससुर को क्या वास्ता। आज साहबज़ादा साहब अपनी राए से या बीवी के कहने से जुदा हो जाएँ, फिर तो बस सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

तलब व ख़्वाहिश के बग़ैर ख़ुलूस के साथ अगर जहेज़ दिया जाए

अलबत्ता ख़ुलूसे कामिल से शौहर की ख़िदमत की जाए बग़ैर इसके कि शौहर को उसकी ख़्वाहिश (या तलब) या उस पर नज़र या उसकी निगरानी या इंतिज़ार हो तो मुज़ायक़ा नहीं (जिसकी दलील यह है)

وَوَجَدَكَ عَائِلًا فَأَغْنَى واشترط عدم الطَّمَعِ والتشرف بقوله عليه السلام ما اتاك من غير اشراف فخذه ومالا فلا تتبعه نفسك او كما قال

"और अल्लाह तआला ने आपको नादार पाया सो मालदार बनाया। और माल मिलने का इंतिज़ार और उसपर नज़र न होना शर्त है क्योंकि हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया जो कुछ तुम्हारे पास नहीं आता उसके पीछे न पड़ो।"

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

निकाह से पहले दुआ व इस्तिख़ारा की ज़रूरत

दुआ एक ऐसी चीज़ है कि दीन व दुनिया दोनों के लिए पूरी तौर से मशरूअ व मौज़ूअ है। इसी लिए क़ुरआन मजीद व हदीस शरीफ़ में निहायत दर्जा इसकी तर्ग़ीब व फ़ज़ीलत और जा-बजा ताकीद वारिद है। चुनांचे इर्शाद फ़रमाया अल्लाह तआला ने कि "दुआ करो मुझसे, मैं क़बूल करूंगा" और इर्शाद फ़रमाया रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने कि बड़ी इबादत तो दुआ है, और फ़रमाया कि जिस शख़्स को दुआ की तौफ़ीक़ हो गई उसके लिए क़बूलियत के दरवाज़े खुल गए। और एक रिवायत में है कि जन्नत के दरवाज़े खुल गए और एक रिवायत में है कि रहमत के दरवाज़े खुल गए। और इर्शाद फ़रमाया कि क़ज़ा को सिर्फ़ दुआ हटा सकती है। दुआ तमामतर तदबीरों और एहतियातों से बढ़कर मुफ़ीद है दुनयवी हवाइज (ज़रूरियात) में भी दुआ माँगने का हुक्म है।

दुआ क़बूल तो ज़रूर होती है, मगर (क़बूलियत की) सूरतें मुख़्तलिफ़ होती हैं। कभी तो वही चीज़ मिल जाती है और कभी उसके लिए (आख़िरत में ज़ख़ीरा सवाब) जमा हो जाता है और कभी उसकी बरकत से कोई बला टल जाती है। ग़रज़ उस दरबार में हाथ फैलाने से कुछ न कुछ मिलकर रहता है।

(मुक़द्दमा मुनाजाते-मक़बूल)

दुआ के साथ तदबीर व तवक्कुल की ज़रूरत

दुआ के मुताल्लिक़ भी लोगों को ग़लती हो रही है (कि महज़

दुआ को काफ़ी समझकर कोशिश व तदबीर नहीं करते हालांकि दुआ में ये तदाबीर भी दाख़िल हैं। क्योंकि (दुआ की दो क़िस्में हैं) एक दुआ क़ौली है और दूसरी दुआ फ़ेली है। (दुआ फ़ेली का मतलब कोशिश व तदबीर इख़्तियार करना है।)

और अगर दुआ के सिर्फ़ वही मानी हैं जो तुम समझते हो तो फिर निकाह भी न करो और कह दो कि हमको पीर साहब की दुआ पर एतिमाद है। औलाद की तो हमें बड़ी तमन्ना है, मगर निकाह नहीं करेंगे। पस यूँ ही किसी तरह दुआ से औलाद हो जाएगी। (क्या ऐसा भी आदतन मुमकिन है?) दुआ के मानी ये हैं कि जितनी तदबीरें (और ज़ाहिरी असबाब व कोशिश) हो सकें सब करो। और फिर दुआ भी करो और महज़ तदबीर (व कोशिश) पर भरोसा न करो। भरोसा दुआ (यानी अल्लाह ही) पर करो। यह मज़मून एक हदीस शरीफ़ का है कि– 'यानी ऊँट को बाँध, फिर ख़ुदा पर भरोसा कर'। यह है तवक्कुल। (ज़रूरत तबलीग़ मुलहिक़ा दावत व तबलीग़)

(1) सारी तदबीरें एक तरफ़ और ख़ुदा से ताल्लुक़ और दुआ करना एक तरफ़, जिसको लोगों ने बिल्कुल छोड़ दिया है। मगर दुआ ख़ुशूअ के साथ होना चाहिए। फ़ुक़्हा ने लिखा है कि दुआ में किसी ख़ास दुआ की तईन न करे, उससे ख़ुशूअ जाता रहता है।

(अल इफ़ाज़ातुल यौमिया)

चन्द ज़रूरी हिदायात व आदाब

1. दुआ के मानी ये होते हैं कि हम आपकी इजाज़त से वह चीज़ माँगते हैं जो हमारे इल्म में मसलिहत और ख़ैर है। अगर आपके इल्म में वह ख़ैर है तो अता कर दीजिए वरना न दीजिए। हम दोनों हाल में राज़ी हैं। मगर इस रिज़ा की अलामत यह है कि क़बूल न होने से शाकी (शिकायत करनेवाला) और तंग दिल न हों। (अनफ़ासे-ईसा)

2. हमको तक़दीर का इल्म नहीं, इसलिए अपने ख़्याल में जो मसलिहत हो, उसके मांगने की इजाज़त है और अगर उसके ख़िलाफ़ मसलिहत हो, उस पर राज़ी रहने का हुक्म है।
(अनफ़ासे-ईसा)

3. दुआ में अपनी तरफ़ से तरीक़ा तजवीज़ करना कि यह सूरत हो जाए और फिर वह सूरत हो जाए यह ऐतदा फ़िदुआ (दुआ में ज़्यादती और आदाब व दुआ के ख़िलाफ़ है) गोया अल्लाह तआला को राय देना है। यह तो ऐसा हुआ कि लड़का कहे कि अम्मा मुझे चौथी रोटी जो पके वह देना। भला इससे उसको क्या ग़रज़ कौन-सी रोटी हो। उसे तो रोटी से मतलब। (अनफ़ासे-ईसा)

4. जिस अम्र में तरद्दुद हो क़राइन से किसी एक शक़ का राजिह होना मालूम न हुआ उसमें तर्दीद के साथ दुआ माँगनी चाहिए और जिस अम्र की जानिब अपने नज़दीक़ मुतय्यन हो और क़राइन से किसी एक शक़ का ख़ैर होना राजिह हो या शर होना राजिह हो तो बिला तर्दीद के दुआ करना चाहिए। तर्दीद का मतलब यह है कि इस तरह दुआ करे कि या अल्लाह अगर मेरे लिए यह सूरत बेहतर हो तो कर दीजिए वरना न कीजिए। (अनफ़ासे-ईसा)

अच्छा रिश्ता मिलने के लिए अहम दुआएँ

رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّاجْعَلْنَا لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا

तर्जमा : ऐ हमारे रब अता कर हमारी बीवियों और औलाद की तरफ़ से आँखों की ठंडक और हमको मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) का मुक़्तदा कर दीजिए।

اَللّٰهُمَّ اِنِّىْ اَسْئَلُكَ من صالح ماتوتى الناس من المال والا هل والولد غير ضال ولا مضل

तर्जमा : ऐ अल्लाह मैं सवाल करता हूँ तुझसे अच्छी नेक

चीज़ का जो तू लोगों को दे, माल हो या बीवी या औलाद कि न गुमराह हों और न गुमराह करनेवाले।

(अनफ़ासे-ईसा अयज़न)

اَللّٰھُمَّ اِنِّی اَسْئَلُكَ العفو والعافیته فی دینی ودنیای واھلی ومالی

तर्जमा : ऐ अल्लाह मैं तुझसे माफ़ी और अमन व सलामती माँगता हूँ अपने दीन व दुनिया के मामले में अपने अहल व माल में।

اللهم بارك لنا فی اسماعنا وابصارنا وقلوبنا وازواجنا وذریاتنا وتب علینا انك انت التواب الرحیم.

तर्जमा : ऐ अल्लाह हमारे लिए बरकत दे हमारी क़ुव्वत समाअत व बसारत में और हमारे दिलों में और हमारी बीवियों और हमारी औलाद में और हमारी तौबा क़बूल फ़रमा ले। बेशक तू ही तौबा क़बूल करनेवाला और बड़ा मेहरबान है। (मुनाजात मक़बूल)

बुरे रिश्ते से बचने के लिए दुआएँ

اللهم انی اعوذبك من امراة تشیبنی قبل المشیب واعوذبك من ولد یکون علی وبالا واعوذبك من مال یکون علی عذابا.

तर्जमा : ऐ अल्लाह मैं तेरी पनाह चाहता हूँ ऐसी औरत से कि मुझे बूढ़ा कर दे बुढ़ापे से पहले और पनाह चाहता हूँ औलाद से कि मेरे लिए वबाल हो और पनाह चाहता हूँ ऐसे माल से कि मुझ पर अज़ाबे-जान हो।

اللهم انی اعوذبك من فتنة النساء اللهم انی اعوذبك من كل عمل يخزيني واعوذبك من كل صاحب یوذینی واعوذبك من كل امل یلهینی

तर्जमा : ऐ अल्लाह मैं तेरी पनाह चाहता हूँ औरतों के फ़ित्ने से, या अल्लाह मैं तेरी पनाह चाहता हूँ हर उस अमल से कि मुझको रुस्वा कर दे। और तेरी पनाह चाहता हूँ हर

उस साथी से जो मुझे तकलीफ़ दे और पनाह चाहता हूँ ऐसे मंसूबे से कि मुझे ग़ाफ़िल कर दे।

ये सब दुआएँ हदीसों से साबित हैं जो मुनाजाते-मक़बूल मुरत्तबा हकीमुल उम्मत हज़रत थानवी से माख़ूज़ व मुक़तबिस हैं। दुआओं से अव्वल आख़िर 3-3 मर्तबा दुरूद शरीफ़ पढ़ लेना चाहिए।

इस्तिख़ारा की दुआ

जब किसी अहम काम का इरादा करे तो चाहिए कि दो रकअत नफ़िल पढ़े और नीचे लिखी दुआ पढ़े और यह दुआ अगर याद न हो तो देखकर पढ़ ले, देखकर न पढ़ सकता हो तो दूसरी किसी ज़बान में और अपने अल्फ़ाज़ में भी यह दुआ पढ़ी जा सकती है। लेकिन अरबी के मंक़ूल अल्फ़ाज़ से दुआ पढ़ना ज़्यादा बेहतर और मसनून है, और वह यह है—

اللهم انی استخیرك بعلمك واستقدرك بقدرتك واسألك من فضلك العظیم فانك تقدر ولا اقدر وتعلم ولا اعلم وانت علام الغیوب اللهم ان كنت تعلم ان هذا الامر خیرلی فی دینی ومعاشی وعاقبة امری فاقدره لی ویسره لی ثم بارك لی فیه وان كنت تعلم ان هذا الامر شرلی فی دینی ومعاشی وعاقبة امری فاصرفه عنی واصرفنی عنه واقدرلی الخیر حیث كان ثم ارضنی به.

तर्जमा : या अल्लाह मैं ख़ैर चाहता हूँ आपसे आपके इल्म की वजह से और क़ुदरत तलब करता हूँ आपसे आपकी क़ुदरत की वजह से और मैं आपसे आपके बड़े फ़ज़्ल से सवाल करता हूँ, क्योंकि आप क़ादिर हैं और मैं नहीं, और आप आलिम हैं और मैं आलिम नहीं और आप तो अल्लामुल-ग़ुयूब हैं। या अल्लाह अगर आपके इल्म में यह काम मेरे लिए बेहतर हो मेरे दीन में और मेरे मआश और अंजामकार में तो इसको तजवीज़ कर दीजिए और इसको मेरे लिए आसान कर दीजिए। फिर मेरे लिए इसमें बरकत दीजिए और अगर आपके इल्म में यह काम मेरे लिए बुरा

हो मेरे दीन और मआश और मेरे अंजामकार में तो इसको मुझसे हटा दीजिए और मुझको उससे हटा दीजिए और मुझे भलाई नसीब कर दीजिए जहाँ भी कहीं हो फिर मुझको उस पर राज़ी रखिए। (मुनाजाते-मक़बूल)

(ख़त कशीदा अल्फ़ाज़ में असल मक़सूद जिस काम के लिए इस्तिख़ारा कर रहा हो उसका तसव्वुर करे)।

निकाह के लिए इस्तिख़ारा की ज़रूरत

हक़ तआला के साथ यह ख़फ़ी (पोशीदा) बेअदबी है कि इस्तिख़ारा करने से घबराते हैं। और उसकी हक़ीक़त (वजह) यह है कि हक़ तआला पर इत्मिनान नहीं है कि हक़ तआला जो करेंगे वह ख़ैर ही हो। बस अपने ज़ेहन में जिस जानिब को ख़ैर क़रार दे लिया उसी को ख़ैर समझते हैं तब ही तो तर्दीद के लफ़्ज़ को (यानी यह कि अल्लाह अगर यह बेहतर हो तो कर दीजिए) नहीं इख़्तियार करते।

ख़्वाजा साहब ने अर्ज़ किया कि "दरकार ख़ैर हाजत इस्तिख़ारा नीस्त" (अच्छे काम में इस्तिख़ारा की कोई ज़रूरत नहीं)। फ़रमाया, हर काम ख़ैर व शर को मुस्तलज़िम हो सकता है। देखिए हज़रत ज़ैनब रज़ियल्लाहु अन्हा को हुज़ूर अकरम (सल्ल०) ने निकाह का पैग़ाम दिया तो उन्होंने बावजूद इस काम में हुज़ूर (सल्ल०) की रज़ामंदी होने के जिसके कारे ख़ैर में शुब्हा ही नहीं हो सकता, अर्ज़ किया– "यानी मैं अभी (निकाह के बारे में) कुछ नहीं कहती जब तक कि अपने रब से मश्वरा न कर लूँ।" और फिर इस्तिख़ारा किया।

फ़रमाइए इस्तिख़ारा का यह क्या मौक़ा था? बात यह है कि हर काम में ख़ैर व शर का एहतिमाल हो सकता है हत्ताकि ऐसा सरीह नेक काम भी शर को मुस्तलज़िम हो सकता है। इस तरह कि मसलन निकाह के हुक़ूक़ अदा न हो सकें। ख़िदमत व

इताअत में कमी हो तो यह निकाह और वबाल का बाइस बन जाए, इस वास्ते हज़रत ज़ैनब रज़िल्लाहु अन्हा ने इस्तिख़ारा की ज़रूरत समझी। (हुस्नुल-अज़ीज़)

इरादे से पहले इस्तिखारा

इस्तिख़ारे का यह तरीक़ा नहीं है कि इरादा भी कर लो फिर बराए नाम इस्तिख़ारा भी कर लो। इस्तिख़ारा तो इरादे से पहले करना चाहिए, ताकि एक तरफ़ क़ल्ब को सुकून पैदा हो जाए। इसमें लोग बड़ी ग़लती करते हैं। सही तरीक़ा यह है कि इरादे से पहले इस्तिख़ारा करना चाहिए फिर इस्तिख़ारा से जिस तरफ़ क़ल्ब में तर्जीह पैदा हो जाए वह काम करना चाहिए। (हुस्नुल-अज़ीज़)

इस्तिखारे का महल व मौक़ा

इस्तिख़ारा उन उमूर में मशरूअ है जिसकी दोनों जानिब इबाहत में मुसावी (बराबर) हों और जिस फ़ैल का हुस्न व क़ब्ह (अच्छाई या बुराई) दलाइले शरीआ से मुतय्यन हो उनमें इस्तिख़ारा मशरूअ नहीं। (अनफ़ासे-ईसा)

इस्तिख़ारा होता है तरद्दुद (शक) के मौक़े पर और तरद्दुद का मतलब यह है कि तरफ़ैन (दोनों जानिब) के मसालिह बराबर हों। जब एक जानिब की ज़रूरत मुतायन हो तो इस्तिख़ारा के क्या मायना। (हुस्नुल-अज़ीज़)

इस्तिख़ारे का महल ऐसा अम्र है जिसमें ज़ाहिरा नफ़ा व ज़रर दोनों का एहतमाल हो। (अनफ़ासे ईसा) इस्तिख़ारा ऐसे मामले में होता है जिसमें नफ़ा व ज़रर दोनों का एहतिमाल हो और जिसमें आदतन या शरअन या यक़ीनन ज़रर हो। उसमें इस्तिख़ारा नहीं जैसे कोई नमाज़ पढ़ने के लिए इस्तिख़ारा करने लगे या दोनों वक़्त खाने-पीने या चोरी करने के लिए इस्तिख़ारा करने लगे या अपाहिज औरत से निकाह करने के लिए इस्तिख़ारा करने लगे। (मल्फ़ूज़ाते अशर्फ़िया)

इस्तिख़ारे की हक़ीक़त

इस्तिख़ारे की हक़ीक़त यह है कि इस्तिख़ारा एक दुआ है, जिससे मक़सूद सिर्फ़ तलबे इआनत अललख़ैर है। यानी इस्तिख़ारे के ज़रिए से बन्दा ख़ुदा तआला से दुआ करता है कि मैं जो कुछ करूँ उसी के अंदर ख़ैर हो और जो काम मेरे लिए ख़ैर न हो वह करने न दीजिए। पस जब इस्तिख़ारा कर चुके तो इसकी ज़रूरत नहीं कि यह सोचे कि मेरे क़ल्ब का ज़्यादा रुजहान किस बात की तरफ़ है और उसी पर अमल करे, बल्कि उसको इख़्तियार है कि दूसरे मसालिह की बिना पर जिस बात में तर्जीह देखे उसी पर अमल करे और उसी के अंदर ख़ैर समझे। हासिल यह है कि इस्तिख़ारे से मक़सूद महज़ तलबे-ख़ैर है न कि इस्तख़बार (ख़ैर मालूम करना)।

इस्तिख़ारा एक दुआ है कि ऐ अल्लाह! अगर यह मामला मेरे लिए ख़ैर हो तो मेरे क़ल्ब को मुतवज्जह कर दे। वरना मेरे दिल को हटा दे और जो मेरे लिए ख़ैर हो उसको तजवीज़ कर दे। अगर इसके बाद उस तरफ़ क़ल्ब मुतवज्जह हो तो उसको इख़्तियार करने को ज़न्नाख़ैर समझना चाहिए ख़्वाह कामयाबी की सूरत में ख़्वाह नाकामी की सूरत में और नाकामी की सूरत में उसके आसार के एतिबार से ख़ैर है ख़्वाह दुनिया में कि उसका नेमुल बदल मिले ख़्वाह आख़िरत में कि सब्र का अज्र मिले। और इस्तिख़ारा न करने में मजमूई तौर पर इस ख़ैर का वायदा नहीं।

(मल्फ़ूज़ाते अशर्फ़िया)

इस्तिख़ारे की दुआ का हासिल यही है कि जो बेहतर हो उसकी तौफ़ीक़ दीजिए और उसमें यह लफ़्ज़ है "सुम्मा अर्ज़नी बिह" यानी क़ल्ब को इस अम्रे ख़ैर के साथ सुकून भी दे दीजिए।

(हुस्नुल-अज़ीज़)

इस्तिख़ारा कब मुफ़ीद हो सकता है?

इस्तिख़ारा उस शख़्स के लिए मुफ़ीद होता है जो ख़ाली ज़ेह्न हो वरना जो ख़्यालात ज़ेह्न में भरे होते हैं उधर ही क़ल्ब माईल होता है और वह शख़्स यह समझता है कि यह बात मुझको इस्तिख़ारे से मालूम हुई है ख़्वाब में और कुव्वते मुतख़य्यिला में उसके ख़यालात ही नज़र आते हैं। (इफ़ाज़ातुल यौमिया)

इस्तिख़ारे का मक़सद

इस्तिख़ारे का मक़सद यह नहीं कि जिस काम में तरद्दुद हो रहा है कि यह काम हमारे लिए ख़ैर है या नहीं। इस्तिख़ारा करने से यह तरद्दुद रफ़अ हो जाएगा और हमको मालूम हो जाएगा कि यह काम हमारे लिए ख़ैर है या शर। फिर जो ख़ैर होगा उसको इख़्तियार करेंगे। चुनांचे हम मुशाहिदा करते हैं कि बाज़ औक़ात इस्तिख़ारे के बाद वह तरद्दुद ख़त्म नहीं होता। और यह मालूम नहीं होता कि दोनों बातों में से कौन-सी बात मुफ़ीद है। तो इस सूरत में लाज़िम आता है कि इस्तिख़ारा मौज़ूअ हुआ था रफ़अ तरद्दुद के वास्ते, और तरद्दुद रफ़अ नहीं हुआ तो नऊज़ुबिल्लाह शारेअ् का यह हुक्म गोया अबस ही हुआ और शारेअ की तरफ़ से कभी ऐसी बात का हुक्म नहीं हो सकता जो अबूस (बेकार) हो तो मालूम हुआ कि इस्तिख़ारा का यह मक़सूद नहीं कि कोई बात उसके ज़रिए से मालूम कर ली जाए जिससे तरद्दुद (शक) ख़त्म हो जाए और उस काम की दोनों शक़ों में से एक शक़ की तर्जीह ज़रूर क़ल्ब में आ जाए। (इफ़ाज़ातुल यौमिया)

इस्तिख़ारा का फ़ायदा

बस इस्तिख़ारा का फ़ायदा तसल्ली है कि हमको ज़रूरी ख़ैर अता होगी और इस्तिख़ारा करने और न करने के आसार में फ़र्क़ यह है कि इस्तिख़ारा के बाद अगर वह मुअस्सर हुआ तो क़ल्ब में ऐसी चीज़ आएगी जिसमें बेएहतियाती (और नुक़सान) हो। और बग़ैर इस्तिख़ारा के ऐसी चीज़ न आने का भी एहतिमाल है कि ज़रा ग़ौर करने से उसका मुज़िर होना मालूम हो सकता था, मगर

उसने ग़ौर नहीं किया और बेएहतियाती से उसको इख़्तियार कर लिया तो अपने हाथों जब मज़र्रत को इख़्तियार किया जाए तो उसमें ख़ैर का वादा नहीं, पस समझना चाहिए कि इस्तिख़ारा में कामयाबी का वादा नहीं, बल्कि हुसूले ख़ैर (भलाई हासिल हो जाने) का वादा है, ख़्वाह ख़ैर ज़ाहिरी हो या बातिनी।

(मल्फ़ूज़ाते-अशर्फ़िया)

इस्तिख़ारा का वक़्त

अहक़र ने सवाल किया कि इस्तिख़ारा के लिए क्या रात का वक़्त ज़रूरी है? फ़रमाया कि नहीं, यह सिर्फ़ एक रस्म डाल ली है। इस्तिख़ारा की नमाज़ के बाद न सोना ज़रूरी है, न रात की क़ैद है। किसी वक़्त भी मस्लन ज़ुहर के वक़्त दो रकअत नफ़िल पढ़कर दुआए मसनूना पढ़े। और थोड़ी देर क़ल्ब की तरफ़ मुतवज्जह होकर बैठे। एक दिन में जितनी बार चाहे कोई इस्तिख़ारा कर सकता। (हुस्नुल अज़ीज़)

इस्तिख़ारा करने का तरीक़ा

एक शख़्स ने इस्तिख़ारा करने का तरीक़ा दर्याफ़्त किया तो फ़रमाया, सलातुल इस्तिख़ारा यानी दो रकअत इस्तिख़ारा नफ़िल पढ़कर सलाम फेर कर इस्तिख़ारा की दुआ पढ़े, फिर क़ल्ब की तरफ़ रुजूअ करे। क़ल्ब की तरफ़ मुतवज्जह होकर बैठे, सोने की ज़रूरत नहीं और इस्तिख़ारा की दुआ एक मर्तबा पढ़ना भी काफ़ी है। हदीस शरीफ़ में तो एक ही दफ़ा आया है। पहले से अगर किसी जानिब अपनी राय का रुजहान हो तो उसको फ़ना (ख़त्म) कर दे। जब तबीअत यकसू हो जाए तब इस्तिख़ारा करे और इस तरह दुआ करे, "ऐ अल्लाह जो मेरे लिए बेहतर हो वह हो जाए" और यह दुआ माँगना उर्दू में (या अपनी किसी ज़बान में) भी जायज़ है लेकिन हुज़ूर (सल्ल०) के अल्फ़ाज़ बेहतर हैं।

(हुस्नुल-अज़ीज़)

इस्तिख़ारा के मुफ़ीद होने की ज़रूरी शर्त

इस्तिख़ारा उस शख़्स का मुफ़ीद होता है जो ख़ाली ज़ेहन हो वरना जो ख़यालात ज़ेहन में भरे होते हैं उधर ही क़ल्ब माइल हो जाता है और वह शख़्स यह समझता है कि यह बात मुझको इस्तिख़ारा से मालूम हुई है। हालांकि ख़्वाब या हालाते मुतख़य्यिला में उसके ख़यालात ही नज़र आते हैं। (इफ़ाज़ातुल यौमिया)

मुतय्यन लड़की या लड़के से शादी करने का अमल या तावीज़ करना

फ़ुकहा ने ऐसे तावीज़ लिखने को नाजायज़ लिखा है जिससे औरत ख़ाविंद को अपने ताबेअ् कर ले तो जब निकाह होते हुए ऐसा तावीज़ देना हराम है तो इस सूरत में तो निकाह भी हराम हुआ। ऐसा तावीज़ देना कब जायज़ हो सकता है जिससे एक नामहरम को अपना ताबेअ् किया जाए। मगर बहुत से बुज़ुर्ग ऐसे तावीज़ देते हैं, हस्बे-तसरीह फ़ुक़्हा ऐसा तावीज़ देना भी अगरचे किसी बुज़ुर्ग के हाथ से हो गुनाह है। (अज़्लुल जाहिलिया)

निकाह के सिलसिले में तावीज़ व अमल करने का शरई ज़ाबता

सवाल: बेवा औरत को कोई अमल पढ़कर निकाह की ख़्वाहिश करना जायज़ है या नहीं?

जवाब : अमल बाएतिबार असर के दो क़िस्म के हैं। एक क़िस्म यह कि जिस पर अमल किया जाए वह मुसख़्ख़र (ताबेअ) और मग़लूबुल अक़्ल (बेक़ाबू व मजबूर) हो जाए। ऐसा अमल इस मक़सूद के लिए जायज़ नहीं जो शरअन वाजिब न हो, जैसे निकाह करना किसी मुअय्यन मर्द (या औरत) से शरअन वाजिब नहीं। उसके लिए ऐसा अमल जायज़ नहीं।

दूसरी क़िस्म यह कि सिर्फ़ मामूल को (जिस पर अमल किया

जा रहा है) उसको इस मक़सूद की तरफ़ तवज्जह बिला मग़्लूबियत के हो जाए फिर बसीरत के साथ अपने लिए मसलिहत तजवीज़ करे। ऐसा अमल ऐसे मक़सूद के लिए जायज़ है।

आसानी से निकाह हो जाने के अमलियात

ईशा की नमाज़ के बाद "या लतीफ़ या वदूद" ग्यारह सौ ग्यारह बार अव्वल व आख़िर तीन मर्तबा दुरूद शरीफ़ के साथ चालीस रोज़ तक पढ़े और उसका तसव्वुर करे (और अल्लाह से दुआ भी करे) इन्शाअल्लाह मक़सूद हासिल होगा, अगर (मक़सद) पहले पूरा हो तो (अमल) छोड़े नहीं। (बयाज़े अशर्फ़ी)

लड़कियों के पैग़ाम आने के लिए

وَلَا تَمُدَّنَّ عَيْنَيْكَ إِلَىٰ مَا مَتَّعْنَا بِهِ أَزْوَاجًا مِّنْهُمْ زَهْرَةَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا لِنَفْتِنَهُمْ فِيهِ
وَرِزْقُ رَبِّكَ خَيْرٌ وَّ أَبْقَىٰ وَأْمُرْ أَهْلَكَ بِالصَّلٰوةِ وَاصْطَبِرْ عَلَيْهَا لَا نَسْئَلُكَ رِزْقًا نَّحْنُ نَرْزُقُكَ
وَالْعَاقِبَةُ لِلتَّقْوٰى.

लड़कियों के पैग़ाम बकसरत आने के लिए. इसको हिरन की झिल्ली या काग़ज़ पर लिखकर एक डिब्बे में बन्द करके घर में रख दे। (पारा नम्बर 4, रुकूअ 87, आमाले क़ुरआनी)

निकाह से मुताल्लिक़ चन्द ज़रूरी हिदायात व तंबीहात

1. अगर हाजत व इस्तताअत (क़ुदरत) हो तो निकाह करना अफ़ज़ल है। और अगर हाजत है मगर इस्तताअत न हो तो रोज़े की कसरत से शह्वत टूट जाती है।
2. निकाह में ज़्यादातर मंकूहा (लड़की) की दीनदारी का लिहाज़ रखो, माल व जमाल और हसब व नसब के पीछे ज़्यादा मत पड़ो।
3. अगर कोई शख़्स तुम्हारी अज़ीज़ा (बहन या लड़की) के लिए निकाह का पैग़ाम भेजे तो ज़्यादातर क़ाबिले लिहाज़ उस शख़्स को नेक वज़ा और दीनदार है, दौलत व हश्मत, आली

ख़ानदान के एहतिमाम में रह जाने से ख़राबी ही ख़राबी है।

4. अगर किसी जगह एक शख़्स निकाह का पैग़ाम भेज चुका है तो जब तक उसको जवाब न मिल जाए या वह ख़ुद छोड़ न बेठे तुम पैग़ाम मत दो।
5. अगर कोई शख़्स अपना दूसरा निकाह करना चाहे तो उस औरत को या उसके वुरसा (औलिया) को मुनासिब नहीं कि शौहर से शर्त ठहरा ले कि पहली मंकूहा (बीवी) को तलाक़ दे दे जब निकाह किया जाएगा (हदीस पाक में इसकी सरीह मुमानिअत आई है) अपनी तक़दीर पर क़नाअत करना चाहिए।
6. हलाला की शर्त ठहराना निहायत बेग़ैरती की बात है। (हदीस में ऐसे शख़्स पर लानत आई है)।
7. निकाह मस्जिद में होना बेहतर है ताकि एलान भी ख़ूब हो और जगह भी बरकत की है।
8. मियाँ-बीवी के बाह्मी मामलात ख़िल्वत (ख़ुसूसी ताल्लुक़ात) को दोस्त व अहबाब से या साथियों या सहेलियों से ज़िक्र करना ख़ुदा तआला को निहायत नापसंद है। अकसर लोग इसकी परवाह नहीं करते।
9. वलीमा मुस्तहब है मगर इसमें तकल्लुफ़ व तफ़ाख़ुर न करे।
10. अगर निकाह के बारे में तुमसे कोई मशवरा करे तो ख़ैरख़्वाही की बात यह है कि अगर कोई ख़राबी तुमको मालूम हो तो ज़ाहिर कर दो, यह ग़ीबत हराम नहीं है। ख़ैरख़्वाही की ज़रूरत से उसका ऐब बयान करना पड़े तो शरअन इसकी इजाज़त है, बल्कि बाज़ जगह वाजिब है ।

(तालीमुद्दीन बाबुंनिकाह)

बाब 7

फ़स्ल (1)

मुख़्तलिफ़ ज़रूरी हिदायात व इस्तिलाहात

निकाह से पहले लड़के का किसी बहाने से एक मर्तबा लड़की को देख लेना मुनासिब है

फ़रमाया, लड़का और लड़की के मुताल्लिक़ मुआफ़िक़त व मुनासिबत का देखना तो बहुत ज़रूरी है। इसी वास्ते हालात की तहक़ीक़ के अलावा लड़के का लड़की को एक नज़र देख लेना जबकि निकाह का इरादा हो कोई हर्ज नहीं (बल्कि मुनासिब है)।

इसी लिए कि उम्र भर का ताल्लुक़ पैदा करना है। इसमें बड़ी हिकमत है। हदीस में इसकी इजाज़त है, मगर यह देखना तहक़ीक़ की नज़र से होगा तलज़्ज़ुज़ की नीयत से नहीं। जैसे तबीब (और डॉक्टर) को महूज़ इस नीयत से देखना कि नब्ज़ से मिज़ाज की हरारत व बरूदत वग़ैरह मालूम हो जाए न कि तलज़्ज़ुज़ की ग़रज़ से (वरना नाजायज़ होगा)। (अल इफ़ाज़ातुल यौमिया)

अगर किसी औरत से निकाह करने का इरादा हो तो अगर बन पड़े तो उसको एक निगाह देखें लो कि कहीं निकाह के बाद उसकी सूरत से नफ़रत न हो। (तालीमुद्दीन)

ज़रूरी तंबीह

हदीस पाक से रिवायत (लड़के का देखना) साबित है न कि अराइत (लड़की का दिखलाना)। यानी हदीस का यह मतलब नहीं कि लड़कीवाले उस ख़ातिब (यानी लड़के) को ख़ुद लड़की दिखला

दें। बल्कि (हदीस का मतलब यह है कि) ख़ातिब (लड़के) को इजाज़त है कि अगर तुम्हारा मौक़ा लग जाए तो तुम देख लो। हदीस का यह मतलब हरगिज़ नहीं कि लड़की वाले अहले ख़ातिब (लड़केवालों) को दिखलाया करें। हदीस इससे महज़ साकित है।

(इम्दादुल फ़तावा)

निकाह से पहले लड़की को एक बार देखने की इजाज़त

निकाह से पहले लड़के और लड़की में ताल्लुक़ात

बाज़ लोगों को इसमें मुब्तला पाया कि मंगनी की हुई औरत के साथ, जो कि निकाह के क़ब्ल हराम है, मंकूहा की तरह मामला करते हैं। यूँ समझते हैं कि यह जब अंक़रीब हलाल होने को है तो अभी से हिल्लत शुरू हो गई। इसका बातिल होना अक़्लन व शरअन ज़ाहिर है।

और शायद किसी को शुब्हा हो कि मख़्तूबा को (जिससे निकाह करना है) पैग़ाम देने से पहले देख लेना जायज़ है तो यह भी एक क़िस्म का इस्तमतअ (हुसूले लज़्ज़त) है और इस्तमतअ सब बराबर हैं।

इसका जवाब ख़ुद ही सवाल में मौजूद है, यानी पैग़ाम के क़ब्ल ही देख लेना तो जायज़ है, जिससे मक़सूद इस्तमतअ नहीं बल्कि इसका अंदाज़ा करना है कि इस औरत में जो वस्फ़-हुस्न वग़ैरह मैंने सुनकर या समझकर इससे इस्तमतअ के हलाल होने यानी निकाह की तजवीज़ सोची है, आया वह वस्फ़ इसमें है या नहीं है। चूंकि न होने की सूरत में मआशिरत ख़राब होने का अंदेशा था। शरीअत ने महज़ इस ग़रज़ के लिए एक बार चेहरा देख लेने की इजाज़त दे दी। सो इस ज़रूरी नज़र पर जो कि बग़र्ज़ इस्तमतअ नहीं है दूसरी नज़र, जो कि ग़ैर ज़रूरी है, इसी तरह मस (छूना) वग़ैरह को कैसे क़यास किया जा सकता है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

ग़ैर मंकूहा औरत और जिस लड़की से निकाह का इरादा हो उसके तसव्वुर से लज़्ज़त हासिल करना हराम है

एक औरत से निकाह नहीं हुआ, मगर यह फ़र्ज़ करके कि अगर इससे निकाह हो जाए तो इस तरह से तमत्तोअ हासिल करूँगा। ख़्वाह उससे निकाह का इरादा हो या इरादा भी न हो इसका हुक्म यह है कि तलज़्ज़ुज़ (लज़्ज़त हासिल करना) हराम है, इसलिए कि इस तलज़्ज़ुज़ का महल कभी हलाल नहीं हुआ। जिसमें तमत्तोअ बिल-लाल का शुब्हा हो सके। हदीस पाक की तसरीह से क़ब्ल के ज़रिए इश्तहा व तमन्ना करना ज़िना (में दाख़िल) है गो दरजात में कुछ तफ़ावुत हो मगर नफ़्स मासियत में इश्तराक है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

और अगर किसी औरत से निकाह हो चुका था मगर तलाक़ वग़ैरह की वजह से उसका निकाह ज़ाइल हो गया और वह ज़िंदा है, ख़्वाह किसी से निकाह कर लिया हो या निकाह न किया हो, उसके तसव्वुर से लज़्ज़त हासिल की कि जब वह निकाह में थी तो उससे इस तरह तमत्तोअ किया करता था, यह तलज़्ज़ुज़ भी हराम है।

और इसी सूरत में अगर यह औरत किसी और से निकाह करके मर गई तो उसके तसव्वुर से भी तलज़्ज़ुज़ हराम है, क्योंकि दूसरे से निकाह करने की वजह से वह उससे बिल्कुल ऐसी बेताल्लुक़ हो गई जैसे इस तसव्वुर करनेवाले के साथ निकाह से पहले थी।

और अगर वह औरत उस शख़्स के निकाह में मर गई तो मेरे ज़ौक़ में जवाज़ की तर्जीह मालूम होती है। (इम्दादुल-फ़तावा)

निकाह के क़ब्ल लड़का-लड़की की राय और रज़ामंदी मालूम करना भी ज़रूरी है

एक कोताही यह कि अकसर मौक़े में मुतनाकिहीन (निकाह करने वाले लड़का व लड़की) की मर्ज़ी हासिल नहीं की जाती। ताज्जुब है कि निकाह जोकि उम्र भर के लिए दो शख़्सों का ताल्लुक़ है, जिसके साथ हज़ारों मामलात वाबस्ता हैं, वह (ताल्लुक़ तो हो) किसी और का और राय हो दूसरे की। गो उन दोनों के मसालिह के ख़िलाफ़ हो और गो वह अपनी नाख़ुशी भी ज़ाहिर करते हैं, मगर उनसे ज़रा भी न पूछा जाए और ज़बर्दस्ती निकाह कर दिया जाए। बाज़ मर्तबा ऐन वक़्त तक मुतनाकिहीन या उनमें से एक बराबर इंकार करता है। मगर उनको जब्र करके ख़ामोश कर दिया जाता है और उम्र भर की मुसीबत में उसको जोत दिया जाता है। यह अक़्ल व नक़्ल के ख़िलाफ़ है और क्या इसमें हज़ारों ख़राबियों का मुशाहिदा नहीं किया जाता?

कैसा ज़ुल्म व सितम है कि बाज़ मुह्मिल मसलिहतों को पेशे-नज़र रखकर उनके ख़याल की परवाह नहीं की जाती और उनको घोंट दाबकर उस बला में फँसा दिया जाता है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

लड़का-लड़की की मर्ज़ी के बग़ैर शादी कर देने का अंजाम

बहुत से मुक़ामात ऐसे हैं कि नापसंदीदगी की हालत में निकाह कर दिया गया, फिर नाकिह (शौहर) साहब ने उम्र भर उस मंकूहा (बीवी) की ख़बर नहीं ली, और समझाने पर साफ़ जवाब दे दिया कि मैंने तो अपनी राय ज़ाहिर कर दी थी, जिन्होंने यह अक़्द किया है वही इसके ज़िम्मेदार हैं।

अब बतलाइए इसका क्या इलाज है? उन बुज़ुर्गों की तो मसलिहत हुई और ग़रीब मज़लूम (औरत) क़ैद में गिरफ़्तार हुई। कहाँ हैं वे फ़र्सूदा अक़्लवाले, अब आएँ और इस मज़लूमा की

मदद करें। मगर मदद क्या करते, उस वक़्त तक मर-खप गए और ज़िंदा भी रह गए तो यह बात कह कर अलग हो जाते हैं कि साहब कोई किसी की क़िस्मत में तो घुस नहीं, गया हम क्या करें? इसकी क़िस्मत! हाए ग़ज़ब किया, ग़ज़ब जवाब है! जिससे बदन में आग लग जाती है।

ऐसा ज़ेहन में आता है कि ऐसा कहनेवाले का गला घौंट दिया जाए। इसका तो यह मतलब है कि हमारी तो कोई ख़ता नहीं, अल्लाह मियाँ की ख़ता है। नऊज़ुबिल्लाह!

लड़का और लड़की की राय मालूम करने का तरीक़ा

अच्छा तरीक़ा यह है कि जिनसे वे बेतकल्लुफ़ हों, जैसे हमउम्र दोस्त और सहेलियाँ उनके ज़रिए से उनके माफ़िज़्ज़मीर (दिल की बात) को मालूम कर लिया जाए। तजुर्बे की बात है कि इस तरीक़े से ज़रूर उनके ख़यालात मालूम हो जाते हैं। और बाज़ मर्तबा तो बेदर्याफ़्त किए हुए वे ख़ुद ही ऐसे बेतकल्लुफ़ दोस्तों से अपनी पसंदीदगी या नापसंदीदगी ज़ाहिर कर देते हैं और औलिया तक वे ख़बरें पहुँच जाती हैं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

सारा दारोमदार लड़के और लड़की पर रख देना भी सख़्त ग़लती है

इसका यह मतलब नहीं कि हर जगह लड़के और लड़की से कहलवाना ज़रूरी है। क्योंकि यक़ीनन बाज़ जगह लड़का और लड़की ज़ीराय (अच्छी रायवाले) नहीं होते, तो उन नादानों की राय ही क्या और उस पर एतिमाद ही क्या! अकसर जगह औलिया अपने तजुर्बे और शफ़क़त से जो तजवीज़ करेंगे वही मस्लिहत होगी। इसलिए मेरा यह मतलब नहीं और न कोई आक़िल यह बात तजवीज़ कर सकता है कि बिल्कुल मुतनाकिहीन (लड़का-लड़की) की राय पर ही रख दिया।

बल्कि मतलब यह है कि (लड़के और लड़की के) औलिया अपने तजुर्बे और शफ़क़त से मसालिह पर पूरी नज़र करके (तजवीज़ करके) उसके बाद भी एहतियात, अंजाम पर नज़र करते हुए अगर लड़का-लड़की बालिग़ हैं तो इस सूरत में क़ब्ल इसके कि बाज़ाबता उनकी रज़ामंदी व इजाज़त हासिल की जाए। इसके क़ब्ल भी ख़ासतौर से उनकी राय दर्याफ़्त की जाए।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

बड़ों की राय के बग़ैर अपनी तरफ़ से निकाह का पैग़ाम देने और निकाह करने की ख़राबी

हमने जो बरकत के आसार (घर के) बुज़ुर्गों के तजवीज़ किए हुए निकाह में देखे हैं वे उस निकाह में नहीं देखे जो बराहे-रास्त ख़ुद ज़ौजैन कर लेते हैं। बिला ज़रूरते-शदीदा ख़ुद निकाह की बातचीत या ख़त व किताबत करना बेहयाई की दलील ज़रूर है। यानी जब तुममें हया न हो तो फिर तो जो चाहे करो। बेहया आदमी से जो भी बुराई सादिर हो जाए कोई बईद नहीं। आक़िल आदमी को ऐसी औरत से बचने के लिए यही अलामत काफ़ी है कि वह बेहया है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

मेरी राय में औरत का सबसे बढ़कर जौहर हया और इंक़िबाज़े तबई है और यही तमाम भलाइयों की कुंजी है। जब यही न रहा तो फिर न किसी ख़ैर की उम्मीद है और न कोई शर मुस्तबअद (दूरी)। (ऐज़न)

लड़कों-लड़कियों में हया शर्म की ज़रूरत

शर्म व हया कमोबेश लड़को में भी होनी ज़रूरी है। ख़ुसूसन हिन्दुस्तान के लिए तो बहुत ही ज़रूरी है। क्योंकि यहाँ बहुत फ़ित्ने फैल रहे हैं। इन सबका इंसिदाद हया से किया जा सकता है और उसकी दिन ब दिन कमी होती जा रही है। जिस क़द्र हमने

हया अपनी इब्तदाई उम्र में लड़कों में देखी है, अब लड़कियों में भी नहीं देखी जाती। और अब जिस क़द्र बूढ़ों में है नौजवानों में नहीं। इस कमी की वजह से ख़राबियां बढ़ती चली जाती हैं। इसलिए कमोबेश हया का होना बहुत ज़रूरी है। और इसका माख़ज़ (दलील) हज़रत अली (रज़ि०) का वह फ़ेल है कि चुप आकर बैठ गए और शर्म की वजह से ज़बान न हिला सके। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुझे ख़बर हो गई है कि तुम फ़ातिमा का पैग़ामे-निकाह लेकर आए हो। (अज़्लुल-जाहिलिया)

अख़बार व इश्तहार बाज़ी के ज़रिए निकाह

आजकल यह तूफ़ान हो गया कि इश्तहारी दवाओं की तरह नाकिह-मंकूह (निकाह करनेवाला लड़का-लड़की) के इश्तहार भी अख़बारों में छपने लगे। कभी नाकिह साहब एलान करते हैं कि हमारे पास ये जायदाद, ये नौकरी, ये कमालात हैं और हमको इन औसाफ़ की मंकूहा चाहिए, जिसको मंजूर हो हमसे ख़त व किताबत करे। फिर इसके जवाब में कोई बीबी साहिबा अख़बार में या ख़ासतौर पर जवाब लिखती हैं और अपने तमाम औसाफ़ और अपना हसीन होना अपने बेशर्म क़लम से लिखती हैं और कुछ शर्तें करती हैं। बस इसी तरह ख़त व किताबत होकर कभी सौदा बन जाता है और कभी नहीं बनता। कभी निकाह से पहले ही दो-चार मुलाक़ातें हो जाती हैं ताकि तजुर्बा और बसीरत के बाद निकाह हो "इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" कैसी आफ़तें नाज़िल हो रही हैं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

फ़स्ल (2)

जवान लड़का और लड़की का इख़्तियार

हज़रत अबू सईद (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि औरतों का निकाह (जबकि वह शरअन

बाइख़्तियार यानी बालिग़ हों) उनकी इजाज़त के बग़ैर मत करो।
(बज़्ज़ार, हयातुल मुस्लिमीन)

बालिग़ यानी जवान औरत ख़ुदमुख़्तार है, चाहे निकाह करे, चाहे न करे और जिसके साथ चाहे करे। कोई शख़्स उस पर ज़बर्दस्ती नहीं कर सकता। अगर वह ख़ुद अपना निकाह किसी से करे तो निकाह हो जाएगा चाहे वली को ख़बर हो या न हो और वली चाहे ख़ुश हो या न हो। हर तरह निकाह दुरुस्त है।

और अगर निकाह तो अपने (कुफ़ू यानी) मेल ही में किया लेकिन जितना मह्र उसके ददिहाली ख़ानदान में बाँधा जाता है जिसको शरअ में मह्र मिस्ल कहते हैं, उससे बहुत कम पर निकाह कर लिया तो निकाह तो हो गया लेकिन उसका वली उस निकाह को तुड़वा सकता है। मुसलमान हाकिम से फ़रियाद कर सकता है कि वह निकाह तोड़ दे। (बहिश्ती ज़ेवर) ऐसी सूरत में औलिया को हक़्के फ़िस्ख़ हासिल है। यानी हाकिमे इस्लाम के पास जाकर नालिश करें। वह तहक़ीक़ करके कह दें कि मैंने निकाह फ़िस्ख़ किया तो निकाह टूट जाएगा। हाकिमे-मुस्लिम के फ़िस्ख़ करने से निकाह फ़िस्ख़ होगा। महज़ बाप के कह देने से कि मैं राज़ी नहीं, कुछ नहीं होगा। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

यही हुक्म लड़के का है कि अगर जवान हो तो उस पर ज़बर्दस्ती नहीं कर सकते और वली उसकी इजाज़त के बग़ैर निकाह नहीं कर सकता। अगर बिना पूछे निकाह कर देगा (लड़के की) इजाज़त पर मौक़ूफ़ करेगा, अगर इजाज़त दे दी तो हो गया, नहीं तो नहीं हुआ। (बहिश्ती ज़ेवर)

लड़का-लड़की की इजाज़त के बग़ैर निकाह कर देने का हुक्म

अगर लड़की या लड़का नाबालिग़ हो तो वह ख़ुदमुख़्तार नहीं है, बग़ैर वली के उसका निकाह दुरुस्त नहीं होता। अगर उसने

बग़ैर वली के निकाह कर लिया या किसी और ने कर दिया तो वली की इजाज़त पर मौक़ूफ़ है। अगर वली इजाज़त देगा तो निकाह होगा नहीं तो नहीं होगा और वली को उसके निकाह करने न करने का पूरा इख़्तियार है। वह जिससे चाहे निकाह कर दे। नाबालिग़ लड़के और लड़कियाँ उस निकाह को उस वक़्त रद्द नहीं कर सकते। (बहिश्ती ज़ेवर)

और अगर वह लड़की बालिग़ है और जिस वक़्त उसके बाप ने उससे इज़्न तलब किया। (यानी निकाह की इजाज़त चाही) या निकाह हो जाने की ख़बर उसको पहुँची और उसने इंकार कर दिया तो यह निकाह जायज़ नहीं हुआ, क्योंकि वली की विलायते इज्बार (बिल्जबर निकाह कर देने का इख़्तियार) ज़माना बलूग़ तक है।

और अगर बालिग़ है, बावजूद बालिग़ होने के इजाज़त तलब करते वक़्त या निकाह की ख़बर पहुंचने के वक़्त ख़ामोश हो गई तो निकाह हो गया और निकाह से पहले या निकाह के बाद के इंकार का एतिबार नहीं।

अलबत्ता अगर बाप के होते हुए किसी और ने इजाज़त चाही तो महज़ सुकूत (ख़ामोशी) रज़ामंदी की दलील नहीं, जब तक कि ज़बान से भी इजाज़त न दे।

और लड़की का बालिग़ा होना, एहतिलाम और हैज़ और हामिला होने से साबित होता है, और अगर इन अलामात में से कोई अलामत न पाई जाए तो पंद्रह साल की उम्र में बालिग़ होने का फ़त्वा दिया जाएग। अलबत्ता अगर वह लड़की ख़ुद कहे कि मैं बालिग़ हूँ और ज़ाहिरी हाल से उसकी तकज़ीब न होती हो तो उसकी तसदीक़ की जाएगी, बशर्ते कि नौ साल से कम न हो।

(इम्दादुल-फ़तावा)

इजाज़त लेने का तरीक़ा और चन्द ज़रूरी मसाइल

1. अगर औरत ख़ुद वहाँ (मज्लिसे-निकाह में) मौजूद हो और इशारा करके यूँ कह दे कि मैंने इसका निकाह तुम्हारे साथ किया। वह कहे कि मैंने क़बूल किया तब भी निकाह हो गया, नाम लेने की ज़रूरत नहीं।
2. और अगर वह ख़ुद मौजूद न हो तो उसका भी नाम ले और उसके बाप का भी नाम ले इतने ज़ोर से कि गवाह सुन लें। और अगर बाप को भी लोग जानते न हों तो दादा का नाम लेना भी ज़रूरी है ग़रज़ यह कि ऐसा पता होना चाहिए कि सुननेवाले समझ लें कि फ़ुलाँ (लड़की) का निकाह हो रहा है।
3. जवान कुँवारी लड़की से वली ने आकर कहा कि मैं तुम्हारा निकाह फ़ुलाँ (लड़के) के साथ किए देता हूँ। इसपर वह चुप रही या मुस्कुरा दी या रोने लगी तो बस यही इजाज़त है। अब वह वली निकाह कर दे तो सहीह होगा। यह नहीं कि जब ज़बान से कहे तभी इजाज़त समझी जाए। जो लोग ज़बर्दस्ती करके ज़बान से क़बूल कराते हैं, बुरा करते हैं।
4. (अलबत्ता अगर) वली ने इजाज़त लेते वक़्त शौहर का नाम नहीं लिया और न उसको पहले से मालूम हुआ, तो ऐसे वक़्त चुप रहने से रज़ामंदी साबित न होगी और इजाज़त न समझेंगे बल्कि नाम व निशान बतलाना ज़रूरी है जिससे लड़की इतना समझ जाए कि यह फ़ुलाँ शख़्स है।

   इसी तरह अगर महर नहीं बतलाया और महर मिस्ल से बहुत कम पर निकाह पढ़ दिया तो औरत की इजाज़त के बग़ैर निकाह न होगा। इसलिए क़ायदे के मुआफ़िक़ फिर इजाज़त लेनी चाहिए।
5. निकाह (सहीह) होने के लिए यह भी शर्त है कि कम-से-कम दो मर्दों के या एक मर्द और दो औरतों के सामने किया जाए

और वे लोग अपने कानों से निकाह होते हुए और वे दोनों लफ़्ज़ कहते हुए सुनें, तब निकाह हो गया।

(बहिश्ती ज़ेवर)

वली किसे कहते हैं?

लड़के और लड़की के निकाह करने का जिसको इख़्तियार होता है उसको वली कहते हैं। लड़की और लड़के का वली सबसे पहले उसका बाप होता है। अगर बाप न हो तो दादा, वह न हो तो परदादा, अगर ये लोग कोई न हों तो सगा भाई; अगर सगा भाई भी न हो तो सौतेला यानी बाप शरीक भाई, फिर भतीजा, फिर भतीजे का लड़का, फिर उसका पोता फिर सौतेला चचा और उसके लड़के, पोते परपोते, ये कोई न हों तो बाप का चचा फिर उसकी औलाद, अगर बाप का चचा और उसके लड़के पोते-परपोते कोई न हों तो दादा का चचा, फिर उसके लड़के, फिर पोते, फिर परपोते वग़ैरा।

ये कोई न हों तो माँ वली है, फिर दादी, फिर नानी, फिर नाना, फिर हक़ीक़ी बहन फिर सौतेली बहन जो बाप शरीक हो फिर जो भाई बहन माँ शरीक हों। फिर फूफी, फिर मामूँ, फिर ख़ाला वग़ैरह।

मालूम रहे कि नाबालिग़ शख़्स किसी का वली नहीं हो सकता। इसी तरह काफ़िर किसी मुसलमान का वली नहीं हो सकता और मजनूँ, पागल भी किसी का वली नहीं हो सकता।

(बहिश्ती ज़ेवर)

लड़की के ख़ुद निकाह कर लेने की ख़राबी

इसमें कलाम नहीं कि आक़िला बालिग़ा (समझदार जवान लड़की) ख़ुद अपने निकाह की बातचीत ठहरा ले और ईजाब व क़बूल कर ले, तो निकाह मुंअक़िद हो जाएगा, लेकिन देखना यह

है कि आया बिला ज़रूरत व मसलिहत (शरई) के ऐसा करना कैसा है। सो, यह अम्र न शरअन पसंदीदा है न अक़्लन। शरअन तो इसलिए कि हुज़ूर (सल्ल०) का इर्शाद है—

لا تنكحوا النساء الا من الا كفاء ولا يزوجهن الا اولياء (دار قطنی بیہقی)

तर्जुमा : यानी औरतों का निकाह न करो, मगर उनके कुफ़ू में और उनकी शादी न करें मगर उनके औलिया।

यह (हदीस) भी अमल ही के वास्ते है और कोई तो बातिनी राज़ है जिसकी वजह से हुज़ूर (सल्ल०) ने (लड़की के निकाह के लिए) औलिया का वास्ता तजवीज़ फ़रमाया। अगरचे हमको इसकी इल्लत और वजह भी मालूम न हो। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

फ़स्ल (3)

निकाह के मामले में सफ़ाई और दियानतदारी से काम लेना चाहिए

चूंकि निकाह भी एक मामला है जिसका ताल्लुक़ दो नए आदमियों से है, इसलिए ज़ौजैन (होनेवाले मियाँ-बीवी) को इसमें निहायत दियानत व सफ़ाई से काम लेना वाजिब है कि किसी क़िस्म का ख़ल्जान मुह्मल (यानी उलझाऊ का एहतिमाल) न रहे। जहाँ तक अपना ज़ेहन रसाई करे हर बात साफ़ कर दे।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

धोखा देकर नापसंदीदा नाकारा लड़की का निकाह करना

एक कोताही यह है कि मंकूहा (लड़की) किसी वजह से ऐसी हो कि मर्द उसको पसंद न करेगा और लड़की के औलिया ने धोखा देकर किसी से निकाह कर दिया होगा, तो ऐसी लड़की की यह बात नहीं छिपानी चाहिए। उस लड़की का वह मर्ज़ बता देना चाहिए। मसलन ऐसा कोई मर्ज़ है जो हमबिस्तरी में मानेअ् है।

एक जगह पागल का निकाह अंधे से कर दिया गया। उसने शौहर को काट लिया। वह भागा और बेहद रुसवाई हुई। आख़िरकार लड़ाई हुई और महर का झगड़ा पड़ा।

एक जगह औरत बिल्कुल भूरी थी यानी जिल्द ऐसी सफ़ेद थी जैसे बर्स के मर्ज़ में हो जाती है। सो मर्द कहीं तो साबिर-शाकिर-बेनफ़्स होता है और बर्दाश्त करता है, मगर उसकी पूरी ज़िंदगी बेमज़ा होती है। गो छुटकारा मुमकिन है, मगर तबीअतें मुख़्तलिफ़ होती हैं। बाज़ लोग उसको बेमुरव्वती समझते हैं। बाज़ लोग वुस्अत कम रखते हैं। इसलिए वे उसका एहतिमाम नहीं करते। तो जिन लोगों ने उसको धोखा दिया है उन पर तो धोखा देने और ईज़ा-रसानी (तकलीफ़ पहुँचाने) का वबाल (और गुनाह) ज़रूर होगा।

बाज़ जगह देखा गया है कि आसेबज़दा ज़िंदगी को किसी के सर मढ़ दिया और जब वह मुतवज्जह हुआ तो जिन्न साहब उसकी तरफ़ मुतवज्जह हुए। ग़रज़ यूँ ही सब्र करके रह गया और ख़िदमत उसकी अलग उसके ज़िम्मे रही। ऐसे लोग लड़की के लिए शौहर तजवीज़ नहीं करते बल्कि उसके लिए एक मज़दूरी तलाश कर लेते हैं, ख़ासतौर से अगर बीबी साहिबा बदज़बान व बदमिज़ाज हों तब तो अच्छी-ख़ासी शौहर के लिए दोज़ख़ है। इसी तरह अगर वह अंधी हो कानी हो, बर्स के मर्ज़ में मुब्तला हो, जुज़ाम के मर्ज़ में मुब्तला हो इन सबका नतीजा बुरा होता है।

अगर मर्द बेनफ़्स हुआ तो उसकी ज़िंदगी बर्बाद हुई और अगर उससे सब्र न हो सका तो उसने औरत को तकलीफ़ पहुँचाना शुरू किया, जिससे उस पर एक मुसीबत मर्ज़ वग़ैरह की तो पहले ही से थी, दूसरी और बढ़ गई और यह नाचाक़ी (इख़्तिलाफ़) उन दोनों से आगे बढ़कर दोनों ख़ानदानों में मुअस्सर होती है। उनमें आपस में दुश्मनी हो जाती है, मुक़द्दमा बाज़ी होती

है, कभी अलाहिदगी की कोशिश की जाती है और मर्द इंकार करता है, कभी महर का दावा होता है, कभी झूठे गवाह महर की माफ़ी के बनाए जाते हैं। और कभी बावजूद माफ़ कर देने के झूठी क़सम माफ़ न करने का गवारा कर लिया जाता है। ग़रज़ हज़ारों ख़ल्जान (पेचीदा मसअ्ले) खड़े हो जाते हैं। उन सबकी जड़ मर्द औरत का नामुआफ़िक़ होना है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

नाकारा मर्द से निकाह कर देना

एक कोतांही यह कि बाज़ लोग बावजूद बिल्कुल ज़रूरत न होने के बल्कि बावजूद बेकार होने के महज़ ख़ानदानी रस्म समझकर जवान औरत या लड़की से निकाह कर देते हैं और अपने नाकारा होने को मंकूहा (लड़की) और मंकूहा के औलिया से छुपाते हैं। ये लोग दूसरे आदमी को मुफ़्सदा में मुब्तला करते हैं।

अगर औरत पारसा है, तब तो वह तमाम उम्र क़ैदे-शदीद में मुब्तला हुई और अगर इस सिफ़त से ख़ाली हुई तो बदकारी में मुब्तला हुई और दोनों हालतों में मियाँ-बीवी नागवारी में रहे और रंजिश व नाइत्तफ़ाक़ी अम्र मुश्तरक है।

दूसरी सूरत में दोनों की बेआबरूई बल्कि दोनों के ख़ानदान की भी साथ-साथ रुस्वाई है। बाज़ लोग यह अंधेर करते हैं कि बावजूद इस बात के मशहूर होने के फिर भी अपनी लड़की ऐसे शख़्स से ब्याह देते हैं जिसका सबब अकसर माल व ज़र की हिर्स होती है।

निकाह एलान के साथ करना चाहिए

बाज़ लोग नफ़्सानी मसलिहत से ख़ुफ़िया निकाह कर लेते हैं, जिससे एक ख़राबी तो यह कि यह सुन्नत के तो यक़ीनन ख़िलाफ़ है। हदीस में है— (यानी निकाह एलान के साथ किया करो) और जिन अइम्मा के नज़दीक एलान करना निकाह की शर्त है, उनके नज़दीक ऐसा निकाह मुंअक़द न होगा।

हमारे नज़दीक अगरचे मुंअक़द हो जाता है जबकि इसमें ज़रूरी गवाह यानी दो मर्द या एक मर्द और दो औरतें मौजूद हों। मगर ताहम उलमा के इख़्तिलाफ़ में बिला वजह पड़ना ख़ुद नापसंदीदा है।

ख़ुफ़िया निकाह करने के मफ़ासिद

1. इसमें एक बड़ी ख़राबी यह है कि अगर यह तरीक़ा राइज हो जाए तो बहुत से मर्द और औरत ज़िना में मुब्तला होने के बाद हमल या किसी को इत्तलाअ हो जाने से रुस्वाई होते देखेंगे तो बहुत आसानी से ख़ुफ़िंया निकाह से दावे की आड़ ले लिया करेंगे।
2. और एक ख़राबी यह कि बाज़ अवाम को ख़ुद भी मालूम नहीं कि निकाह सहीह होने के लिए शहादत का अदना (कम अज़ कम) दर्जा क्या है? जब वे किसी ख़ुफ़िया निकाह को सुनेंगे और ख़ुफ़िया होने के सबब उनको गवाहों का अदद मालूम न होगा तो ताज्जुब नहीं कि इसका मतलब निकाह बग़ैर शहूद (गवाहों के बग़ैर) शहादत की शर्त न होने का एतिक़ाद कर लें और किसी मौक़े पर अमल भी कर लें तो उसमें एतिक़ादी व अमली दोनों ख़राबियाँ जमा हों जाएँगी।
(इस्लाहे-इंक़िलाब)
3. एक ख़राबी यह कि (ख़ुफ़िया. निकाह के) दावे के ज़रिए किसी ऐसी औरत पर जुल्म हो सकता है, जिससे कोई निकाह की ख़्वाहिश रखता हो और वह और उसको क़बूल न करती हो। पस किसी वक़्त अगर उसको शैतान गुमराह करे तो वह मुर्दा शख़्सों का नाम लेकर दावा कर सकता है कि उनके सामने ख़ुफ़िया निकाह हो गया था और इस दावे के बाद दो-चार मददगारों की इआनत से उस पर ज़ियादती करे और आम लोग इस शुब्हा पर ख़ामोश रहें कि निकाह वाली औरत

पर क़ब्ज़ा करने का हक़ है, हम क्यों तारुज़ करें।

4. एक ख़राबी यह कि मंकूहा (जिसका निकाह हो चुका हो) औरत की निस्बत यही दावा इस तरह हो सकता है कि दूसरे शख़्स के एलानिया निकाह के क़ब्ल की तारीख़ में हमारे नज़दीक ख़ुफ़िया निकाह हो चुका था, चुनांचे उन्हीं अय्याम में ऐसा वाक़िआ हुआ है।

और ताज्जुब नहीं कि इन्हीं मफ़ासिद के इंसिदाद के लिए शरीअत ने एलाने-निकाह का हुक्म फ़रमाया है।

ज़रूरतन ख़ुफ़िया निकाह करना

बाज़ औक़ात शरई उज़्र से ख़ुफ़िया निकाह की ज़रूरत वाक़ेअ होती है। मसलन एक बेवा औरत किसी से निकाह सानी करना चाहती है मगर एलान करने में अपने जाहिल वुरसा से उसको हलाक हो जाने का अंदेशा है और दूसरी जगह सफ़र करने में कोई महरम नहीं। इसलिए उसने ख़ुफ़िया निकाह कर लिया, फिर उसी के साथ अमन में दूसरी जगह चली गई। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

लड़कीवाले पैग़ाम दें या लड़केवाले

सहाबा (रज़ि०) में तो बाज़ दफ़ा बाप ने ख़ुद अपनी बेटी के लिए पयाम दिया। चुनांचे जब हज़रत हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा पहले शौहर से बेवा हुईं तो हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) ने हज़रत उसमान रज़ि० से कहा कि हफ़्सा-बिन्ते-उमर बेवा हो गई है, उससे तुम निकाह कर लो।

वहाँ हिन्दुस्तान की-सी रसम न थी कि बाप का ख़ुद बेटी के लिए कहना हराम समझते हो। हज़रत उसमान (रज़ि०) ने कहा कि मैं सोचकर जवाब दूँगा। चुनांचे उन्होंने उज़्र कर दिया। इसके बाद हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) से कहा हफ़्सा-बिन्ते-उमर बेवा हो गई है उससे आप निकाह कर लीजिए। उन्होंने भी वही जवाब

दिया कि सोचूँगा। फिर कुछ जवाब ही न दिया। आख़िर हुज़ूर (सल्ल०) का पैग़ाम आया और निकाह कर दिया। फिर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) मिले, हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने फ़रमाया कि मेरे कुछ जवाब न देने पर तुम ख़फ़ा हो गए होगे। भाई हमने हुज़ूर (सल्ल०) को हफ़्सा रज़ियल्लाहु अन्हा का ज़िक्र फ़रमाते हुए सुना था, इसलिए हमने जवाब में तवक़्क़ुफ़ किया कि न ख़ुद क़बूल कर सकता था न हुज़ूर (सल्ल०) का रांज़ ज़ाहिर कर सकता था और साफ़ जवाब देने में शुब्हा था कि तुम और कहीं मंज़ूर न कर लो, ग़रज़ अरब में ऐसी बे-तकल्लुफ़ी थी कि बाप अपनी बेटी देते हुए नहीं शर्माता था।

बल्कि औरतें आकर अर्ज़ करतीं कि या रसूल अल्लाह (सल्ल०) हमसे निकाह कर लीजिए। एक मर्तबा हज़रत अनस् (रज़ि०) की लड़की ने कहा कि ये औरत कैसी बेहया थी। हज़रत अनस् (रज़ि०) ने कहा कि तुझसे बच्छी थी, उसने अपनी जान रसूल अल्लाह (सल्ल०) को हिबह कर दी। ग़र्ज़ अरब में यह कोई ऐब न था।

मेरा यह मतलब नहीं कि हम भी ऐसा ज़रूर करें लेकिन अगर कोई करे तो मुज़ाइक़ा नहीं। (अज़्लुल जाहिलिया)

बाब 8

शादी किस उम्र में करनी चाहिए

लड़कियों की जल्द शादी न करने के मफ़ासिद

बाज़ नाआक़िबत-अंदेश कुंवारी लड़कियों को बालिग़ हो जाने के बाद भी कई-कई साल बिठाए रखते हैं। और महज़ नामवरी के सामान के इंतिज़ार में उनकी शादी नहीं करते। हत्ताकि बाज़-लड़कियाँ तीस-तीस और कहीं चालीस-चालीस साल की उम्र को पहुँच जाती हैं। और अंधे सरपरस्तों को कुछ नज़र नहीं आता कि इसका क्या अंजाम होगा। हदीसों में जो इस पर वईद आई है कि अगर इस सूरत में औरत से कोई लग़्ज़िश हो गई तो वह गुनाह बाप पर लिखा जाता है या जो (भी बाप के क़ायम मक़ाम मस्लन) ज़ी इख़्तियार हो उसपर भी लिखा जाता है।

अगर किसी को इस वईद का ख़ौफ़ न हो तो दुनिया की आबरू को तो दुनियादार भी ज़रूरी समझते हैं और इसका नतीजा यह निकल रहा है कि कहीं हमल गिराए जाते हैं तो कहीं लड़कियाँ किसी के साथ भाग जा रही हैं।

अगर किसी शरीफ़ ख़ानदान में ऐसा न हो तब भी वे लड़कियाँ उन सरपरस्तों को तो दिल ही दिल में कोसती हैं और चूंकि वे मज़्लूम हैं इसलिए उनका कोसना ख़ाली नहीं जाता। उन लोगों को यह भी शर्म नहीं आती कि ख़ुद बावजूद बूढ़े हो जाने के एक बुढ़िया को जो इस लड़की की माँ है ख़िल्वत में ले जाकर ऐश व इशरत करते हैं। और जिस ग़रीब मज़्लूम की ऐश का मौसम है वह पहरेदारों की तरह मामा (नौकरानी) के साथ उनके घर की चौकसी करती हैं। कैसा बेरब्त ख़ब्त है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

सामान जहेज़ और ज़ेवर की वजह से ताख़ीर

अकसर यह देखा गया है कि जिस इंतिज़ाम में यह टाल-मटोल की जाती है वह भी नसीब नहीं होता। यानी सामान और ज़ेवर और फ़ख़्र के लिए वह सरमाया भी मयस्सर नहीं होता और मजबूरी में झक मारकर ख़ुश्क निकाह ही करना पड़ता है। फिर कोई उनसे पूछे कि देर करने में तो और भी ज़्यादा बदनामी है। मियाँ इतने दिन भी लगाए और फिर भी ख़ाक न हो सका। लड़की को ऐसा ही देने का शौक़ है तो निकाह के बाद देने को किसने मना किया है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

दावत वग़ैरह का इंतिज़ाम न होने की वजह से ताख़ीर

अगर आम दावत करने का शौक़ है तो दावत के हज़ार बहाने हर वक़्त निकल सकते हैं। यह क्या फ़र्ज़ है कि सारे अरमानों की इसी मज़्लूमा पर मश्क़ की जाए। यह बिल्कुल सरीह ज़ुल्म और बुरा अमल है।

हदीस में है कि अगर तुम्हारे पास ऐसा शख़्स आए जिसके अख़्लाक़ और दीनदारी तुमको पसंद हो तो तुम अपनी लड़की का निकाह उससे कर दो वरना ज़मीन में फ़ित्ना और फ़साद फैलेगा।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

मुनासिब रिश्ता न मिलने का फ़िज़ूल उज़्र

बाज़ लोग यह उज़्र करते हैं कि कहीं से मौक़े का रिश्ता ही नहीं आता तो क्या किसी के हाथ पकड़वा दें? यह उज़्र वाक़ई होता तो सहीह था। यानी सचमुच अगर मौक़े का रिश्ता न आता तो वाक़ई यह शख़्स माज़ूर था। लेकिन ख़ुद इसी में कलाम है कि जो रिश्ते आते हैं क्या वे सब ही बे-मौक़े हैं? बात यह है कि बे-मौक़े का मफ़्हूम ख़ुद उन्होंने अपने ज़ेहन में तस्नीफ़ कर रखा है जिसके अजज़ा ये हैं—

1. हसब-नसब हज़रात हस्नैन (रज़ि०) जैसा हो।
2. और अख़्लाक़ में जुनैद जैसा हो।
3. और इल्म में अगर वह दीनी इल्म है तो अबू हनीफ़ा के बराबर हो अगर दुनियवी इल्म है तो बूअली सीना का मिस्ल हो।
4. हुस्न में यूसुफ़ अलैहिस्सलाम का सानी हो।
5. और सरवत व रियासत में क़ारून व फ़िरऔन के हम-पल्ला हो।

गुलू हर अम्र में मज़्मूम है। एक ही शख़्स में तमाम सिफ़ात का मुज्तमा होना शाज़ व नादिर है। जिन सिफ़ात को जिस दर्जे में तुम दूसरों में ढूंढते हो तुमको जिस शख़्स ने लड़की दी थी जिसकी बदौलत आज अपनी लड़की के बाप बनकर ये जवानियाँ दिखा रहे हो, क्या उस शख़्स ने तुम्हारे लिए ऐसी ही तफ़्तीश व तहक़ीक़ की थी? अगर वह ऐसा ही करता तो तुमको औरत ही मयस्सर न होती। उसने ऐसा नहीं किया, तो जब उसने ऐसा न किया तो तुमने या तुम्हारे बाप ने दूसरे मुसलमान भाई की बदख़्वाही क्यों की? कि बावजूद तुम्हारे अंदर उन औसाफ़ के पूरे तौर पर मुज्तमा न होने के उसकी लड़की पर निकाह के ज़रिए क़ब्ज़ा कर लिया। (जो चीज़ तुम अपने लिए पसंद करते हो वह दूसरों के लिए क्यों नहीं पसंद करते) इस पर अमल क्यों नहीं किया। दूसरे यह कि जब तुम अपनी बेटी के लिए इन औसाफ़ का शौहर तलाश करते हो। इंसाफ़ करो तुमने जब अपने लड़के के लिए किसी की लड़की की दरख़्वास्त की थी या करने का ख़्याल है। क्या अपने साहबज़ादे में भी ये सिफ़ात उसी दर्जे की देख ली या देखने का इरादा है।

तीसरे यह कि जिस तरह लड़कों में बे-शुमार ख़ूबियाँ ढूँढी जाती हैं अगर दूसरे शख़्स तुम्हारी लड़कियों में इससे दसवाँ हिस्सा ख़ूबियाँ और हुनर देखने लगें तो मैं यक़ीन करता हूँ कि तमाम

उम्र एक लड़की भी न ब्याही जाएगी।

ग़रज़ यह उज़्र कि रिश्ता मौक़े का (मुनासिब) नहीं आता, अकसर हालतों में बे-मौक़े होता है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

लड़कियों के लिए अच्छे लड़के कम क्यों मिलते हैं

इसका ज़िक्र था लड़कियों के लिए अच्छे लड़के कम क्यों मिलते हैं। फ़रमाया कि मैंने तो अपने ख़ानदान की औरतों के सामने एक मर्तबा यह कहा कि इसकी वजह यह है कि लड़कियों में तो सिर्फ़ लड़की होना देखा जाता है। इसलिए यह मालूम होता है कि लड़कों के लिए लड़कियाँ बहुत हैं और लड़कों में सैकड़ों बातें देखी जाती हैं कि ख़ूबसूरत भी हो, वजाहत भी रखता हो, खाता-पीता भी हो, ग़ैरत भी हो, उहदा भी हो। मैंने कहा कि जितनी शर्ते तुम लड़कों में लगाते हो अगर यही शर्ते लड़कियों में भी देखी जाएँ तो इन्शा अल्लाह एक लड़की भी शादी के क़ाबिल न निकलेगी क्योंकि अकसर लड़कियाँ बे-सलीक़ा और नालायक़ होती हैं। ग़रज़ लड़कों में भी ग़ालिब नालायक़ हैं और लड़कियों में भी।

कम उम्री में शादी कर देने से क़ुवा ज़ईफ़ हो जाते हैं

आजकल क़ुवा बहुत ज़ईफ़ हैं। जिसकी ज़्यादा वजह यह मालूम होती है कि आजकल शादी कम उम्री में हो जाती है। आज़ा में पूरा नमू (कमाल व पुख़्तगी) नहीं होने पाता। इतनी जल्दी शादी करने की वजह या तो चोंचलापन है कि छोटे-छोटे दूल्हा-दुल्हन देखने का अरमान है और कहीं यह ख़्याल होता है कि कहीं ऐसा न हो कि मर जाएँ और बेटे की शादी न देख सकें। और कहीं माँ-बाप का क़ुसूर नहीं होता, बल्कि बच्चे माँ-बाप की पीठ से निकलते ही मस्तियाँ शुरू कर देते हैं, जिससे माँ-बाप को उनकी शादी करने पर मजबूर होना पड़ता है।

बहरहाल शादी कमउम्री में होती है इस वजह से माँ-बाप ही छोटे-छोटे होते हैं। उसके बाद उनके बच्चे भी छोटे होते हैं। अगर ऐसा होता रहा तो वह जो मशहूर है कि क़ियामत के क़रीब बालिश्तों (एक बालिश्त के बराबर) की आबादी होगी, थोड़े दिनों में बिल्कुल सच हो जाएगा।

अगले ज़माने के लोग बड़े क़वी होते थे, उसकी वजह यह थी कि उनकी शादी नमू ख़त्म होने के बाद होती थी (यानी जब उनके बदन में पूरी जवानी, कमाल और पुख़्तगी हो जाती थी)। इसी वजह से उनकी उम्रें ज़्यादा होती थीं। यह वजह है ज़ौफ़ की।

(रूहुस्सियाम तबर्रुकाते-रमज़ान)

बचपन में शादी कर देने की ख़राबियाँ

एक कोताही बाज़ क़ौमों या बाज़ लोगों में यह है कि बहुत थोड़ी उम्र में शादी कर देते हैं जिस वक़्त उन मुतनकिहीन (लड़का-लड़की) को कुछ तमीज़ भी नहीं होती कि निकाह क्या चीज़ है और उसके क्या हुक़ूक़ होते हैं। इसमें बहुत-सी ख़राबियाँ होती हैं। बाज़ औक़ात लड़का नालायक़ निकलता है जिसको मंकूहा सयानी होकर या लड़की के औलिया पसंद नहीं करते। अब फ़िक्र होती है तफ़रीक़ की। कोई मसअला पूछता है, कोई बे-मसअला पूछे ही दूसरी जगह निकाह कर देते हैं। और लड़का है कि बराहे सरकशी न उसके हुक़ूक़ अदा करता है और न उसको तलाक़ देता है। ग़रज़ एक बला और लाइलाज मुसीबत हो गई।

बाज़ जगह कमसिनी में निकाह करने से यह हुआ कि निकाह होने के बाद वह लड़की उस लड़के को पसंद नहीं। वह अपने लिए लड़की कहीं और तलाश कर लेता है और पहली बीवी की न ख़बरगीरी करता है न तलाक़ देता है और उज़्र कर देता है कि मुझे ख़बर ही नहीं कि मेरा निकाह कब हुआ? जिन्होंनें किया वे ज़िम्मेदार हैं और तलाक़ देने को उर्फ़न आर समझता है।

बाज़ औक़ात दोनों बचपन में एक जगह खेलते और लड़ते हैं जिसका असर बाज़ जगह यह होता है कि आपस में नफ़रत और बुग्ज़ पैदा हो जाता है और चूँकि शुरू ही से दोनों साथ रहे हैं इसलिए शौहर को कोई ख़ास मैलान कैफ़ियत शौक़िया के साथ नहीं होता जैसा कि बालिग़ होने के साथ नई बीवी के मिलने से होता है। इसका समरा भी हर तरह से बुरा ही बुरा है। क्या इन ख़राबियों से बचने की कोशिश करना ज़रूरी नहीं है?

तालिबे इल्मी के ज़माने में निकाह नहीं करना चाहिए

एक साहब ने अपने लड़के के निकाह के मुताल्लिक़ हज़रते वाला से मशवरा लिया। वह लड़का पढ़ने में मसरूफ़ था। उन साहब ने यह भी अर्ज़ किया कि अब मौक़ा अच्छा है। फ़रमाया कि हमारा मज़हब तो यह है कि अगर जुलाही मिल जाए तो वही सही। मर्द को तो एक औरत चाहिए (लेकिन) इस वक़्त इसका पढ़ना क्यों बर्बाद किया। (हुस्नुल-अज़ीज़)

नाबालिग़ी के ज़माने में निकाह नहीं करना चाहिए

हक़ तआला का इर्शाद है—

وَابْتَلُوا الْيَتٰمٰى حَتّٰىٓ اِذَا بَلَغُوا النِّكَاحَ

तर्जमा : और तुम यतीमों को आज़मा लिया करो यहाँ तक कि वे निकाह की उम्र को पहुँच जाएँ।

(यह आयत) साफ़ मुशीर है कि निकाह का पसंदीदा ज़माना बलूग़ के बाद का है और दुरुस्ती अक़्ल के बाद निकाह किया जाए ताकि जिसका मामला हो वह उसको समझ ले।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

किस उम्र में लड़का-लड़की बालिग़ (सिने बुलूग़) होते हैं

लड़की की बुलूग़ की कोई मुद्दत मुअय्यन नहीं। मगर नौ बरस से पहले बालिग़ नहीं हो सकती और पंद्रह बरस के बाद

नाबालिग़ नहीं रह सकती। यानी अदना मुद्दत बुलूग़ होने की नौ साल है जबकि अलामात बुलूग़ पाई जाएँ और बुलूग़ की अलामत हैज़ वग़ैरह है और ज़्यादा से ज़्यादा मुद्दत बुलूग़ पंद्रह साल है जबकि अलामात बुलूग़ न पाई जाएँ इसी पर फ़त्वा है।

(इम्दादुल-फ़तावा)

ज़रूरत की वजह से नाबालिग़ी में निकाह करना

अगर नाकेह और मंकूहा (लड़का-लड़की) नाबालिग़ हों और अच्छा मौक़ा फ़ौत होता हो (यानी फिर रिश्ता छूट जाने का ख़तरा हो) तो दूसरी बात है और अगर ऐसी कोई ज़रूरत मसलिहत नहीं है महज़ रस्म ही की इत्तबा है तो ख़ुद यह रस्म मिटाने के क़ाबिल है गो निकाह सहीह हो जाता हो। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

आजकल शादी जल्दी कर देनी चाहिए

आजकल राय यह है कि शादी जल्दी होनी चाहिए, क्योंकि अब वह इफ़्फ़त व दियानत तबीअतों में नहीं रही जो पहले थी। अब ज़्यादा ज़ब्त की हिम्मत नहीं होती मगर जल्दी शादी होने में जहाँ बहुत से फ़ायदे हैं वहीं चन्द ख़राबियाँ भी हैं।

(अज़्लुल-जाहिलिया)

जल्दी निकाह करने का हुक्म

हदीस मर्फ़ूअ है—

عن علی ان النّبی صَلَّی اللہ علیہ وآلہ وسلم قَال یا علی ثلث لا توخرھا الصلوۃ اذا

اتت والجنازۃ اذا حضرت والایم اذا وجدت لھا کفوا۔ (رواہ الترمذی مشکوۃ)

तर्जमा : हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया, ऐ अली (रज़ि०)! तीन चीज़ों में ताख़ीर न होना चाहिए— नमाज़ जब उसका वक़्त हो जाए, और जनाज़ा जबकि हाज़िर हो जाए और बे-निकाही लड़की का रिश्ता जब उसका कुफ़ू मिल जाए।

(तिर्मिज़ी, मिश्कात)

इस हदीस पाक में वजूबे-ताजील (जल्दी निकाह करने को) नमाज़ का क़रीन क़रार दिया है। (इम्दादुल फ़तावा)

लड़का लड़की का किस उम्र में निकाह कर देना चाहिए

हक़ तआला का इर्शाद है—

وَابْتَلُوا الْيَتَامٰى حَتّٰى إِذَا بَلَغُوا النِّكَاحَ.

यह आयत साफ़ मुशीर है कि निकाह का पसंदीदा ज़माना बुलूग़ के बाद का है और सीधा तरीक़ा यही है कि बुलूग़ और दुरुस्ति-ए-अक़्ल के बाद निकाह किया जाए, न कि उससे पहले।
(इस्लाहे-इंक़िलाब)

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा की उम्र (शादी के वक़्त) साढ़े पंद्रह साल की और हज़रत अली (रज़ि०) की इक्कीस बरस की थी। (इस्लाहुर्रुसूम)

बहुत थोड़ी उम्र में शादी कर देने में बहुत से नुकसान हैं। बेहतर तो यही है कि लड़का जब कमाने का और लड़की जब घर चलाने का बोझ उठा सके, उस वक़्त शादी की जाए।
(बेहश्ती-ज़ेवर)

वालिदैन की ज़िम्मेदारी

हज़रत अबू सईद (रज़ि०) और हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि दोनों ने कहा कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जिसकी औलाद पैदा हो उसको चाहिए कि उसका अच्छा नाम रखे और अच्छी तालीम दे। फिर जब वह बालिग़ हो जाए, उसका निकाह कर दे। अगर वह बालिग़ हो जाए और उसका निकाह न करे, फिर वह किसी गुनाह में मुब्तला हो जाए तो उसका गुनाह (सबब के दर्जे) में सिर्फ़ बाप पर ही होगा (गो मुबाशरत के दर्जे में ख़ुद उस पर होगा)।

और हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत अनस बिन मालिक

(रज़ि०) से रिवायत है कि वे रसूलुल्लाह (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि तौरात में लिखा है कि जिसकी लड़की बारह साल को पहुँच जाए (और क़राइन से निकाह की हाजत मालूम हो) और यह शख़्स उसका निकाह न करे फिर वह किसी गुनाह में मुब्तला हो जाए तो उसका गुनाह उसके बाप पर होगा।

दो लड़कों या लड़कियों की एक साथ शादी न करना चाहिए

अपने दो लड़कों या लड़कियों की शादी जहाँ तक हो सके एकदम (यानी एक साथ) मत करो, क्योंकि बहुओं में ज़रूर फ़र्क़ होगा, दामादों में ज़रूर फ़र्क़ होगा। ख़ुद लड़कों और लड़कियों की सूरत में बहुत बातों में फ़र्क़ हो जाता है और लोगों की आदत है तज़्किरा करने की और एक को घटाने और दूसरे को बढ़ाने की। इससे ख़्वाह-म-ख़्वाह दूसरे का जी बुरा होता है। (बहिश्ती ज़ेवर)

फ़स्ल (1)

मंगनी और तारीख़ का तअय्युन

मंगनी की हक़ीक़त

मंगनी है क्या चीज़? दरहक़ीक़त मंगनी सिर्फ़ वादा है जो ज़बान से हुआ करता है। उसके साथ मिठाई, खटाई वग़ैरह की क्या ज़रूरत है? अगर ख़त में लिखकर वादा भेज दिया जाए तब भी वह काम हो सकता है (इसके अलावा) उसके साथ जिस क़द्र भी, ज़वाइद (ज़ाइद बातें) हैं सब ज़ाइद अज़्कार (और बेकार हैं)।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

मंगनी में ये तमाम बखेड़े जो आजकल राइज हैं सब बेकार और ख़िलाफ़े-सुन्नत हैं। ज़बानी पैग़ाम व जवाब काफ़ी है।

(इस्लाहुर्रुसूम)

मंगनी की रस्म में बिरादरी के लोगों का जमा होना शरीअत की निगाह में

(मंगनी की रस्म में) बिरादरी के मर्दों का इज्तमाअ ज़रूरी होना ऐसी ज़रूरी रस्म है कि चाहे बरसात हो कुछ भी हो, मगर यह मुमकिन नहीं कि डाक के ख़त पर इक्तफ़ा करें। बतलाइए शरीअत ने जिस चीज़ को ज़रूरी नहीं ठहराया, उसको इस क़द्र ज़रूरी समझना कि शरीअत के ज़रूरी बतलाए हुए उमूर से ज़्यादा एहतिमाम करना, शरीअत का मुक़ाबला है या नहीं और जब मुक़ाबला है तो वाजिबुत्तर्क (इसका छोड़ना ज़रूरी) है या नहीं?

अगर यह कहा जाए कि मशवरे के लिए जमा किया जाता है तो बिल्कुल ठीक है। वे तो बेचारे ख़ुद पूछते हैं कि कौन-सी

तारीख़ लिखें जो पहले से घर में ख़ास मशवरा करके मुअय्यन कर चुके हैं वे बतला देते हैं और वे लोग लिख देते हैं। फिर अकसर लोग जो आ नहीं सके अपने छोटे-छोटे बच्चों को अपने बजाए भेज देते हैं। यह मशवरे में क्या तीर चलाएँ, कुछ भी नहीं यह नफ़्स की तावीलें हैं। सीधी बात क्यों नहीं कहते कि साहब यूँ ही रिवाज चला आता है, इसी रिवाज का अक़्लन व नक़्लन मज़्मूम और वाजिबुत्तर्क होना बयान हो रहा है। ग़रज़ इस रस्म के सब अजज़ा ख़िलाफ़े-शरिअत हैं। (इस्लाहुर्रुसूम)

और अगर मशवरा ही करना है तो जिस तरह और उमूर में मशवरा होता है, एक दो आक़िल मसलिहत अंदेशों से राय ले लें। बस किफ़ायत हो गई। घर-घर के आदमियों को बटोरना क्या ज़रूरी है। (इस्लाहुर्रुसूम)

मंगनी की रस्मों से बात पक्की हो जाती है, यह ख़्याल ग़लत है

लोग कहते हैं कि मंगनी में ये बातें (मुरव्विजा रुसूम) होने से पुख़्तगी हो जाती है। भाइयो! मैंने ग़ैर पुख़्ता जुड़ते हुए और पुख़्ता टूटते हुए अपनी आँखों से देखे हैं। इसलिए ये सब औहाम (शैतानी ख़यालात) हैं कि पुख़्तगी होती है। यह पुरानी तावील है कि इससे वादे का इस्तहकाम हो जाता है।

मैं कहता हूँ कि जो शख़्स अपनी ज़बान का पक्का है उसका एक मर्तबा कहना ही काफ़ी है और जो ज़बान का पक्का नहीं वह मंगनी करके भी ख़िलाफ़ करे तो क्या कोई तोप लगा देगा? चुनांचे बहुत जगह ऐसा होता है कि किसी मसलिहत से या किसी लालच से मंगनी छुड़ा लेते हैं, उस वक़्त वह इस्तहकाम किस काम आता है और जो कुछ ख़र्च हुआ वह किस काम आया। ग़रज़ यह तावील सहीह नहीं सिर्फ़ धोखा है।

और अगर (इस्तहकाम और पुख़्तगी हो) तब भी हमको तो

वह करना चाहिए जिस तरह हुज़ूर (सल्ल०) से साबित है।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

मंगनी रस्म, हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा और हुज़ूर सल्लाहु अलैहि व सल्लम का नमूना

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का निकाह हुज़ूर (सल्ल०) ने इस तरह किया कि कोई रस्म नहीं की और ये रस्में उस वक़्त मौजूद ही न थीं। ये तो बाद में लोगों ने निकाली हैं।

हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का निकाह किया न उसमें मंगनी की रस्म थी; न मेंहदी थी, न निशानी थी। मंगनी आपकी यह थी कि हज़रत अली (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) की मज्लिस में आए और चुप होकर बैठ गए और शर्म की वजह से ज़बान न हिला सके। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुझे ख़बर हो गई है कि तुम फ़ातिमा का पैग़ामे निकाह लेकर आए हो। सो मुझसे हज़रत जिब्राईल अलैहिस्सलाम कह गए हैं कि ख़ुदा का हुक्म है कि अली से फ़ातिमा का निकाह कर दिया जाए।

हुज़ूर (सल्ल०) ने मंज़ूर फ़रमा लिया, बस मंगनी हो गई। न उसमें मिठाई खिलाई गई। न कोई मज्मा हुआ। यह नहीं हुआ कि लाल डोरी हो, कोई जोड़ा हो, मिठाई तक़सीम हो।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

मंगनी में आए हुए मेहमानों की दावत का हुक्म

सवाल : जो लोग दूर-दराज़ मक़ाम से लड़की की मंगनी के लिए आएँ शरई तौर से गुफ़्तगू तै हो जाने के बाद और मंगनी शुरू होने के बाद इस ख़्याल से कि ये लोग दूर से आए हैं। मेहमान के तौर पर उनको एक-आध बार दावत दी जाए तो इंसानी हमदर्दी और मुरव्वत से बईद नहीं इसमें कोई क़बाहत तो नहीं होगी?

जवाब : यह नीयत मज़्कूरा (यानी मेहमानी की नीयत से) दोनों हालतों में दुरुस्त है। यानी क़ब्ल मंगनी भी और बाद मंगनी भी। (इम्दादुल-फ़तावा)

मंगनी और रिश्ता करने की उजरत लेने का हुक्म

सवाल : रिश्ता कराने की उजरत लेना जैसे हज्जाम लड़की व लड़के का पयाम व सलाम कराके कुछ लिया करते हैं या पहले मुक़र्रर कर लेते हैं कि इस क़द्र नक़द और एक जोड़ा लूंगा। तो शरअन इस लेन-देन में कुछ हर्ज तो नहीं है? जायज़ है या नहीं?

जवाब: अगर इस मसाई (कोशिश करनेवाले) को कोई वज़ाहत हासिल न हो जहाँ उसने सई (कोशिश) की है वहाँ कोई धोखा न दे तो इस उजरत को जाने-आने की उजरत समझकर जायज़ कहा जाएगा (वरना महज़ शफ़ाअत पर और धोखा दही पर कुछ लेना जायज़ नहीं)। (इम्दादुल फ़तावा)

फ़स्ल (2)

शादियों की तारीख़ का तअय्युन

हम इन तक़रीबात को ख़ुशी के मौक़े समझते हैं। उनके वास्ते अच्छे दिन तलाश किए जाते हैं। साअते-सईद (जंतरी में) देखी जाती है। इस ख़ब्त में यह भी ख़्याल नहीं रहता कि यह जायज़ है या नाजायज़।

नजूमियों और पंडितों से साअत पूछकर ब्याह की तारीख़ रखी जाती है कि ऐसा न हो कि साअत नहूस की पड़े और यह ख़बर नहीं कि नहूस हक़ीक़ी साअत कौन-सी है। नहूस हक़ीक़ी वह साअत है जिसमें हक़ तआला की ग़फ़लत हो, जिस वक़्त आपने नमाज़ छोड़ दी, उससे ज़्यादा नहूस कौन वक़्त हो सकता है और जो इश्ग़ाल नमाज़ छोड़ने का बाइस हों उनसे ज़्यादा मंहूस शग़ल कौन-सा हो सकता है।

बाज़ लोग बाज़ तारीख़ों और महीनों को मसलन ख़ाली या मुहर्रम के चाँद को और सालों को मसलन अठारह साल को मनहूस समझते हैं और उसमें शादी नहीं करते। यह एतिक़ाद भी अक़्ल और शरअ के ख़िलाफ़ है।

(दर असल यह इल्म नजूम का शोबा है) और इल्म नजूम शरअन मज़्मूम और बासिला (बिल्कुल्लिया) बातिल है और कवाकिब में सआदत व नहूसत मंफ़ी (नाक़ाबिले-एतिबार) है और बाज़ वाक़िआत का अहले- नजूम के मुवाफ़िक़ हो जाना अगर उसके सिद्क़ (और हक़्क़) का तजुर्बा समझा जाए तो इनसे ज़्यादा वाक़िआत का ख़िलाफ़ होना उसके किज़्ब का दर्जा ऊला तजुर्बा होगा।

फिर मफ़ासिदे-कसीरा इसपर मुरत्तब होते हैं एतिक़ादे-क़बीह और शिर्के-सारीह और ज़ौफ़ "तवक्कलु इलल्लाह व गै़-र ज़ालिक।" (बयानुल-क़ुरआन)

माह ज़ी क़अदा को मनहूस समझना सख़्त ग़लती है

इस जगह एक बात क़ाबिले-तंबीह यह है कि आम लोग माहे ज़ी क़अदा को मनहूस समझते हैं। यह बड़ी सख़्त बात है और बातिल अक़ीदा है। देखिए आँहज़रत (सल्ल०) ने चार उमरे किए हैं वे सब ज़ी क़अदा में थे सिवाए उस एक हिज्जतुल-विदाअ के कि वह ज़िल-हिज्जा में वाक़ेअ हुआ था (मुत्तफ़क़ अलैहि)। देखिए इसमें कितनी बरकत साबित हुई है कि आँहज़रत (सल्ल०) ने इस माह में तीन उमरे किए हैं, नीज़ माह ज़ी क़अदा हज के महीनों में से है (जो बड़ी रहमतों और बरकतों का महीना है)।

(अहकामे-हज मुल्हिक़ा सुन्नते-इब्राहीम)

ज़ी क़अदा मुहर्रम और सफ़र के महीने में शादी

जाहिल औरतें ज़ी क़अदा को ख़ाली चाँद कहती हैं और उसमें

शादी करने को मंहूस समझती हैं। यह एतिक़ाद भी गुनाह है। इससे तौबा करना चाहिए, इस तरह बाज़ जगह तेरह तारीख़ सफ़र के महीने को नामुबारक समझती हैं यह सारे एतिक़ाद शरअ के ख़िलाफ़ और गुनाह हैं, इनसे तौबा करना चाहिए। (बहिश्ती ज़ेवर)

मुहर्रम के महीने में शादी-ब्याह

मुहर्रम का महीना मुसीबत का ज़माना मशहूर है, जिसका सबब हज़रत सय्यदना इमाम हुसैन (रज़ि०) की शहादत का वाक़िया है जो दर हक़ीक़त एक हादस-ए-जानकाह है। मगर जिहालत के सबब हम लोगों ने इसमें हुदूद से तजावुज़ कर लिया है, जिसका असर यह हुआ कि लोगों ने इस ज़माने में निकाह व शादी को नागवार और मकरूह समझ लिया।

चुनांचे हमारे एक अज़ीज़ की शादी ज़िलहिज्जा की तीस तारीख़ को क़रार पाई थी। जिसमें मुहर्रम की चाँद रात का होना तो यक़ीनी था और यह भी एहतिमाल था कि शायद किसी जगह आज ही मुहर्रम की पहली रात हो तो लड़की के वली को यह बात बहुत नागवार हुई कि शादी की तारीख़ के लिए भला यही दिन रह गया था। मगर उन्होंने इतना करम किया कि शादी में अगरचे ख़ुद शरीक नहीं हुए, लेकिन निकाह की इजाज़त दे दी और अपनी तरफ़ से अपने मामूँ को भेज दिया। हमने कहा कि इस ख़्याल को तोड़ना चाहिए उसी दिन निकाह किया, मगर कई साल तक औरतों को ख़्याल रहा कि देखिए कोई नागवार बात न पेश आ जाए। अगर लड़की का ज़रा कान गरम हुआ तो उसकी वजह यही कहेंगे कि इस तारीख़ में निकाह होने की नहूसत है, मगर 'अलहम्दुलिल्लाह' कोई नागवार बात पेश नहीं आई और दोनों मियाँ-बीवी ख़ुश व ख़ुर्रम हैं साहिबे औलाद भी हैं। हक़ तआला ने खुली आँखों दिखला दिया कि उनका ज़मानों के मुताल्लिक़ यह ख़्याल बिल्कुल ग़लत है। नस में जा-ब-जा इसकी

तसरीह है कि नहूसत व सअद का सबब ज़माना वग़ैरह नहीं, न कोई दिन मनहूस है, न कोई महीना, न किसी मकान में नहूसत है, न किसी इंसान में बल्कि असल नहूसत मअ़सियत और गुनाह के आमाल में है।

(हक़ीक़तुस्सब्र, मुल्हिक़ा फ़ज़ाइले-सब्र व शुक्र, अत-तबलीग़)

कोई दिन मंहूस नहीं बल्कि नहूसत का मदार मअसियत और गुनाह है

बाज़ पढ़े लोगों ने दिनों को मंहूस होने पर क़ुरआन पाक की इस आयत से इस्तिदलाल किया है

وَأَرْسَلْنَا عَلَيْهِمْ رِيحًا صَرْصَرًا فِي أَيَّامٍ نَّحِسَاتٍ

"और हमने उन पर एक तुंद व तेज़ हवा ऐसे दिनों में भेजी जो उनके हक़ में मंहूस थे।"

इस आयत से मालूम होता है कि जिन दिनों में आद पर अज़ाब नाज़िल हुआ है वे मनहूस दिन हैं मगर मैं कहता हूँ कि यह देखना चाहिए कि वे दिन कौन-कौन से हैं, इसका पता दूसरी आयत के मिलाने से चलेगा। फ़रमाते हैं–

وَأَمَّا عَادٌ فَأُهْلِكُوا بِرِيحٍ صَرْصَرٍ عَاتِيَةٍ سَخَّرَهَا عَلَيْهِمْ سَبْعَ لَيَالٍ وَثَمَانِيَةَ أَيَّامٍ حُسُومًا

कि आठ दिन तक उन पर अज़ाब रहा तो इस एतिबार से चाहिए कि कोई दिन मुबारक न हो बल्कि हर दिन मनहूस हो क्योंकि हफ़्ते के हर दिन में उनका अज़ाब पाया जाता है जिनको 'अय्यामे नहिसात' कहा गया है।

तो क्या इसका कोई क़ाइल हो सकता है? अब आयत के सहीह माना सुनिए। आयत का मतलब यह है कि जिन दिनों में उन पर अज़ाब हुआ वे दिन अज़ाब नाज़िल होने की वजह से ख़ास उनके लिए मंहूस थे न कि सबके लिए और वह अज़ाब था

मासियत की वजह से। पस नहूसत का मदार मासियत ही ठहरा अब 'अलहम्दुलिल्लाह' कोई शुब्हा नहीं रहा।

(तफ़्सीलुत्तौबा, दावते अब्दियत)

चाँद व सूरज ग्रहण के वक़्त निकाह व शादी

एक बात यह मशहूर है कि कसूफ़ व ख़सूफ़ (यानी जब चाँद व सूरज ग्रहण लगा हो) का वक़्त मंहूस होता है, ऐसे वक़्त निकाह या कोई शादी की तक़रीब न करना चाहिए। मैं हैदराबाद अपने भतीजे का निकाह करने गया था जो दिन और जो वक़्त निकाह के लिए क़रार पाया था, उस वक़्त ख़सूफ़े-माह (चाँद ग्रहण) हो गया। अब वहां के लोगों में खलबली पड़ी कि ऐसे वक़्त में क्या निकाह होगा और अगर ऐसे वक़्त निकाह किया तो तमाम उम्र नहूसत का असर रहेगा। बहुत-से जेंटल मैन भी उन में मुब्तला थे। चुनांचे जमा होकर मेरे पास आए और कहा कि कुछ अर्ज़ करना है। मैंने कहा, फ़रमाइए, कहने लगे कि क्या चाँद ग्रहण के वक़्त भी निकाह होगा? मैंने कहा, उस वक़्त तो निकाह करना बहुत ही ऊला और अफ़ज़ल है और मेरे पास इसकी दलील भी मौजूद है। वह यह कि आपको मालूम है कि हम इमाम अबू हनीफ़ा के मुक़ल्लिद हैं और यह भी मालूम है कि ख़सूफ़ के वक़्त ज़िकरुल्लाह और नवाफ़िल में मशग़ूल होना चाहिए। अब समझिए कि इमाम साहब फ़रमाते हैं कि निकाह में मशग़ूल होना नवाफ़िल में मशग़ूल होने से अफ़ज़ल है। पस ऐसे वक़्त में निकाह का शग़ल और भी अफ़ज़ल व ऊला है। उन सबने इसको तसलीम किया।

मैंने बयान तो कर दिया लेकिन मेरे दिल में उन लोगों के ख़्याल से एक इंक़िबाज़ रहा और दुआ की कि ऐ अल्लाह, जल्द चाँद साफ़ हो जाए। अगर इस हालत में निकाह हुआ और बाद में कोई हादसा तक़दीर से पेश आया तो इन लोगों को कहने की

गुंजाइश होगी कि ऐसे वक़्त निकाह किया था, इसलिए यह बात पेश आई। अल्लाह की क़ुदरत थोड़ी देर में चाँद साफ़ हो गया। सब ख़ुश हो गए और निकाह हो गया।

(अत-तह्ज़ीब, फ़ज़ाइले-सौम व सलात)

बाब 10

निकाह-ख़्वानी और उसके मुताल्लिक़ात

निकाह की मज्लिस और उसमें ख़ुसूसी इज्तिमाअ

हुज़ूर (सल्ल०) ने जब हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का अक़्द-निकाह फ़रमाया तो इर्शाद फ़रमाया कि ऐ अनस जाओ और अबू- बक्र व उमर व उसमान व तल्हा व ज़ुबैर और अंसार की एक जमाअत को बुला लाओ।

इससे मालूम हुआ की निकाह की मज्लिस में अपने ख़ास लोगों को बुलाने में कुछ मुज़ायक़ा नहीं और हिक्मत इसमें यह है कि निकाह में इश्तहार व एलान हो जाए जो कि मतलूब है। मगर इस इज्तिमाअ में ग़ुलू व मुबालग़ा न हो, वक़्त पर बिला तकल्लुफ़ जो दो-चार आदमी क़रीब व नज़दीक के जमा हो जाएं (वे काफ़ी हैं)। (इस्लाहुर्रुसूम)

एक वाक़िआ

मेरे एक दोस्त तहसीलदार हैं। उनको अपनी दुख़्तर की तक़रीब करनी थी। माशाअल्लाह उन्होंने निहायत तदीन व ख़ुलूस से काम लिया हिम्मत की और सब रस्मों को छोड़ा और किसी की कुछ परवाह न की और कमाल यह कि मेरे पास तशरीफ़ लाए और मुझको निकाह पढ़ाने के लिए वतन ले जाना चाहा। मैंने कुछ उज़्र किया तो उन्होंने सफ़र ही में इस काम को तजवीज़ कर दिया और यह तजवीज़ हो गई कि इसी जल्से में अक़्द कर दिया जाए। इसमें दो मसलिहतें हो गईं— एक तो इस सुन्नत से उस घर में बरकत होगी दूसरे यह भी मालूम हो जाएगा कि निकाह यूँ भी होता है और अहादीस से तो यही साबित होता है कि निकाह निहायत सादा चीज़ है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

निकाह कौन पढ़ाए

1. हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा की शादी में हुज़ूर (सल्ल०) ने एक बलीग़ ख़ुत्बा पढ़कर ईजाब व क़बूल कराया। इससे मालूम हुआ कि बाप का छुपे-छुपे फिरना भी ख़िलाफ़े सुन्नत है। बल्कि बेहतर यह है कि बाप ख़ुद अपनी दुख़्तर का निकाह पढ़ दे क्योंकि वह वली है। (दूसरा वकील) वली को बहरहाल वकील से तर्जीह होती है नीज़ हुज़ूर (सल्ल०) की सुन्नत भी यही है। (इस्लाहुर्रुसूम)
2. इसका बहुत एहतिमाम होना चाहिए कि निकाह पढ़नेवाला ख़ुद आलिम हो या किसी आलिम से ख़ूब तहक़ीक़ से निकाह पढ़वाए।

अकसर जगह क़ाज़ी साहबान निकाह के मसाइल और उनके मुताल्लिक़ात से महज़ नावाक़िफ़ होते हैं। हत्ताकि बाज़ मवाक़ेअ पर यक़ीनन निकाह भी दुरुस्त नहीं होता। तमाम उम्र बदकारी हुआ करती है। और बाज़ ऐसे तमाअ (लालची) होते हैं कि लालच में जिस तरह से फ़रमाइश की जाए, कह गुज़रते हैं, ख़्वाह निकाह हो या न हो। (इस्लाहुर्रुसूम)

निकाह-ख़्वानी की उजरत का मस्अला

अगर दूसरे इजारात (मसलन) बच्चों की तालीम सिनअतों, और हिरफ़तों की तरह इसकी भी हालत रखी जाए कि ज़िसका दिल चाहे जिसको चाहे बुलाए और किसी की ख़ुसूसियत न समझी जाए और जिस उजरत पर चाहें जानिबीन रज़ामंद हो जाएँ। न कोई क़ाज़ी अपने को मुस्तहिक़ असल क़रार दे; न दूसरों के ज़ेहन में इसको पैदा किया जाए (कि यह सिर्फ़ क़ाज़ी साहब ही का हक़ है) और अगर इत्तिफ़ाक़ से कोई दूसरा यह काम करने लगे तो उससे रंज व आज़रदगी न हो। शहर में जितने चाहें इस काम को करें उन सबको आज़ाद समझा जाए (हाँ, जो इस काम का अहल

न हो उसको ख़ुद ही जायज़ न होगा, उसको एक अराज़ की वजह से रोका जाएगा)।

इस तरह उस निकाह के साथ मामला किया जाए और नीज़ बुलाने वाले अपने पास से उजरत दें, दूल्हावालों की तख़्सीस न हो। इस तरह अलबत्ता जायज़ और दुरुस्त है, ग़रज़ दूसरे उजरत के कामों में और इसमें कोई फ़र्क़ न किया जाए (तो जायज़ है)।

(इम्दादुल-फ़तावा)

उजरते-निकाह की नाजायज़ सूरतें

1. (निकाह की उजरत) देनेवाला अगर दूल्हा हो और क़ाज़ी को बुलाकर ले गया हो दुल्हनवाला, जैसा कि दस्तूर अकसर यही है, तब तो यह लेना बिल्कुल जायज़ नहीं क्योंकि उजरत बुलानेवाले के ज़िम्मे वाजिब थी दूसरे पर बार डालना जायज़ नहीं। (अयज़न)
2. एक रिवाज यह है कि अकसर जगह क़ाज़ी लोग अपना नायब भेज देते हैं और उनको जो कुछ मिलता है उसमें ज़्यादा हिस्सा क़ाज़ी का और थोड़ा-सा उस नायब का होता है। यह क़ाज़ी साहब का इस्तहक़ाक़ महज़ बिला दलील है और पुरकद (कोशिश) व मुतालबा करना बिल्कुल नाजायज़ है। यह अम्र याद रखने के क़ाबिल है अलबत्ता ख़ुशी से अगर साहिबे तक़रीब (शादीवाला) कुछ पैसे दे तो लेना जायज़ है और जिसको दिया है उसकी मिल्क है मसलन अगर नायब को ख़ुशी से दिया तो तमामतर उसकी मिल्क है। मुनीब साहब (महज़) इस वजह से लेते हैं कि हमने तुमको मुक़र्रर किया है। सिवा इस वजह से लेना रिश्वत और हराम है और राशी व मुर्तशी यानी नायब और मुनीब दोनों आसी (गुनहगार) होते हैं। (इस्लाहुर्रुसूम)
3. और अगर निकाह किसी और ने पढ़ा हो तो क़ाज़ी साहब या

नायबे क़ाज़ी साहब को लेना बिल्कुल जायज़ नहीं और क़ाज़ी साहब से निकाह पढ़वाना वाजिब नहीं। (इम्दादुल-फ़तावा)

फ़रमाया, जब निकाहख़्वां को लड़कीवाले बुलाएँ तो इस हालत में लड़केवालों से निकाह-ख़्वानी (की उजरत) दिलवाना और लेना हराम है। (हुस्नुल अज़ीज़)

और अगर उस (निकाहख़्वाँ) को बुलानेवाला भी दूल्हावाला (लड़के वाला) है ख़्वाह अपने आदमी के हाथ बुलाया हो या दुल्हनवाले से कह कर बुलाया हो तो निकाहख़्वां को उसका दिया हुआ लेना जायज़ नहीं। (इम्दादुल-फ़तावा)

निकाह ख़्वानी की उजरत जो लड़केवालों से (हर हाल में) दिलवाते हैं (गो निकाहख़्वां को बुलानेवाले लड़कीवाले हों) यह भी रिश्वत में शामिल है। निकाह पढ़ाने की उजरत तो अपने आप में जायज़ है लेकिन कलाम इसमें है कि कौन दे? तो शरई एतिबार से इसकी उजरत उस शख़्स के ज़िम्मे है जिसने निकाहख़्वां से अक़्द इजारह करके उसको मुस्ताजिर बनाकर लाया है तो वह (उमूमन लड़कीवाला होता है)। (अत-तहज़ीब)

चन्द ज़रूरी मसाइल निकाह पढ़ानेवालों को जिनसे वाक़फ़ियत ज़रूरी है

अब मुनासिब मालूम होता है कि चन्द ज़रूरी मसाइल निकाह के मुताल्लिक़ जिनकी बहुत ज़रूरत रहती है लिख दिए जाएँ और सबको और ख़ुसूसन निकाह पढ़ानेवाले क़ाज़ियों को इनका याद कर लेना ज़रूरी है। इनके न जानने से अकसर औक़ात निकाह में ख़राबी हो जाती है—

1. "वली" सबसे पहले बाप है फिर दादा फिर हक़ीक़ी भाई फिर अल्लाती (बाप शरीक) भाई फिर उनकी औलाद, इसी तर्तीब से फिर हक़ीक़ी चचा, फिर अल्लाती (बाप शरीक) चचा फिर

चचाज़ाद भाई। इसी तर्तीब से और असाबते फ़राइज़ (मीरास) की तर्तीब से और जब कोई अस्बा न हो तो माँ फिर दादी, फिर नाना, फिर हक़ीक़ी बहन, फिर अख़्याफ़ी (माँ शरीकी) बहन भाई फिर फूफी, फिर मामूं, फिर ख़ाला, फिर चचाज़ाद बहन फिर ज़विल-अरहाम।

2. वली क़रीब के होते हुए वली बईद की विलायत नहीं पहुँचती।

3. नाबालिग़ा (लड़की) का निकाह वली की इजाज़त के बग़ैर सहीह नहीं और ख़ुद उस मंकूहा का ज़बान से कहना क़ाबिले एतिबार नहीं ख़्वाह उसका पहला निकाह हो या दूसरा निकाह हो।

4. अगर नाबालिग़ा (लड़की) का निकाह वली ने ग़ैर-कुफ़ू में कर दिया, अगर बाप-दादा ने किसी ज़रूरी मसलिहत से किया है तो बशर्ते कि ज़ाहिरन कोई अम्रे ख़िलाफ़ मसलिहत न हो वरना सहीह न होगा।

   और अगर बाप दादा के सिवा किसी दूसरे वली ने निकाह किया है तो फ़त्वा इस पर है कि बिल्कुल जायज़ न होगा।

5. बालिग़ा का निकाह उसकी इजाज़त के बग़ैर जायज़ नहीं, पस अगर यह उसका दूसरा निकाह होता है तब तो ज़बान से इजाज़त लेनी चाहिए और अगर पहला निकाह है तो इजाज़त लेनेवाला वली है, तब तो दर्याफ़्त करने के वक़्त उसका ख़ामोश हो जाना ही इजाज़त है और अगर कोई दूसरा शख़्स है तो उसका ज़बान से कहना ज़रूरी है इसके बग़ैर इजाज़त मोतबर न होगी।

6. बालिग़ा (लड़की) अगर वली की इजाज़त के बग़ैर ख़ुद अपना निकाह कुफ़ू में कर ले तो जायज़ है और ग़ैर कफ़ूफ़ में अगर निकाह किया तो फ़त्वा यही है कि बिल्कुल जायज़ नहीं, अलबत्ता अगर किसी औरत का कोई वली ही न हो या वली

अगर हो और उसकी कार्रवाई (यानी कुफ़ू में निकाह कर लेने) पर रज़ामंद हो तो ग़ैर कुफ़ू में जायज़ होगा।

7. अगर वली ने बालिग़ा का निकाह उसकी इजाज़त के बग़ैर कर दिया और बाद में वह सुनकर ख़ामोश हो गई तो वह निकाह सहीह हो जाएगा। और अगर ग़ैर वली ने इब्तिदा में इजाज़त ली थी मगर वह ख़ामोश हो गई तो उस वक़्त निकाह सहीह न होगा लेकिन अगर सुहबत के वक़्त उसकी नाराज़गी ज़ाहिर न हुई तो वह निकाह अब सहीह हो जाएगा।
8. ईजाब व क़बूल के अल्फ़ाज़ ऐसी बुलन्द आवाज़ से कहने चाहिए कि गवाह अच्छी तरह सुन लें।
9. निकाह के वक़्त यह भी तहक़ीक़ कर लेना ज़रूरी है कि नाकिह मंकूहा (यानी लड़की) में हुर्मत नस्बी या रज़ाई का ताल्लुक़ तो नहीं (यानी दूध का रिश्ता या नसब का ऐसा रिश्ता तो नहीं जिनसे निकाह हराम होता है)।

(इस्लाहुर्रुसूम)

दुल्हा को मज़ार पर ले जाने की रस्म

दूल्हा उस शहर के किसी मशहूर मुतबर्रिक मज़ार पर जाकर कुछ नक़द चढ़ाता है। सो इसमें जो अक़ीदा जाहिलों का है वह यक़ीनी शिर्क तक पहुंचा हुआ है और अगर कोई फ़हीम (समझदार सहीहुल अक़ीदा) इस बद अक़ीदे से पाक हो तब भी इस रस्म से चूंकि उन फ़ासिदुल एतिक़ाद लोगों के फ़ेल की ताईद व तर्जीह (इशाअत) होती है इसलिए सबको बचना चाहिए।

(इस्लाहुर्रुसूम)

सेहरा बांधने की रस्म और उसका हुक्म

एक साहब ने सवाल किया कि सेहरा बाँधना कैसा है? जवाब इर्शाद फ़रमाया जायज़ नहीं यह ग़ैर मुस्लिमों की मुशाबहत है और यह उन्हीं का तरीक़ा है। (मक़ालाते हिक्मत)

सेहरा बाँधना ख़िलाफ़े शरअ अम्र है क्योंकि यह कुफ़्फ़ार की रस्म है हदीस में है कि जो किसी क़ौम की मुशाबहत इख़्तियार करे वह उन्हीं में से है। (इस्लाहुर्रुसूम)

निकाह के वक़्त कलिमा पढ़ाना

एक शख़्स ने दर्याफ़्त किया कि बवक़्ते निकाह ज़ौजैन को कलिमा पढ़ाने का जो दस्तूर है वह कैसा है? फ़रमाया कि इसका कोई सुबूत मेरी नज़र से तो गुज़रा नहीं मगर एक मौलवी साहब मुझसे कहते थे कि मैंने "बहरुर्राइक़" में देखा है कि अगर है तो अम्र इस्तहबाली होगा वजूब का हुक्म न होगा।

फिर साइल ने अर्ज़ किया कि बाज़ लोग कहते हैं कि शुर्फ़ा से कलिमा न पढ़वाना चाहिए रज़ील लोगों से मसलन कुंजड़े, क़साई से पढ़वाना चाहिए। (जो जिहालत की वजह से कलिम-ए-कुफ्रिया बक जाते हैं और उन्हें एहसास भी नहीं होता।) फ़रमाया, (कि नहीं) बल्कि आजकल तो शुर्फ़ा रौशन ख़्याल लोगों ही से पढ़वाना चाहिए क्योंकि ये लोग बड़े बेबाक होते हैं जिसको जी चाहता है कह डालते हैं हत्ताकि रसूलुल्लाह (सल्ल०) को भी नहीं छोड़ते। इसलिए इनके ईमान के नुक़सान का ज़्यादा एहतिमाल है। (मुक़ालाते हिकमत)

ईजाबो क़ुबूल तीन बार करवाना या आमीन पढ़वाना

सवाल : निकाह में ईजाबो क़बूल जो तीन मर्तबा कहलाया जाता है, आया यह वाजिब है या सुन्नते मुअक्कदा या मुस्तहब?

जवाब : कुछ भी नहीं है। (इम्दादुल-फ़तावा)

और निकाह में आमीन पढ़वाना बिल्कुल लग्व है।

(हुस्नुल अज़ीज़)

निकाह में छुहारे तक़सीम करना

हुज़ूर (सल्ल०) ने (हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा के

निकाह में) एक तबंक़ ख़ुरमा का लेकर बिखेर दिया था।

इस रिवायत को ज़हबी वग़ैरह मुहद्दिसीन ने ज़ईफ़ कहा है और ग़ाफ़ियत मानियुल बाब ब (ज़ायद से ज़ायद) सुन्नत ज़ायद होगा मगर क़ायदा शरईया है कि जहाँ अम्र मुबाह या मुस्तहब में किसी मुफ़्सिदा का इक़तरान (शामिल) हो जाए उसको तर्क कर देना मसलिहत है। इस मामूल में आजकल अकसर रंज व तकरार की नौबत आ जाती है, इसलिए तक़सीम पर किफ़ायत करें।

(इस्लाहिर्रुसूम)

छुहारे ही मक़सूद बिज़्ज़ात नहीं

एक निकाह मे छुहारे तक़सीम हुए थे इस पर फ़रमाया कि ख़ुरमा (छुवारे की तख़्सीस सुन्नत मक़सूदा नहीं अगर किशमिश होती तो वह तक़सीम हो जाती इससे भी सुन्नत अदा हो जाती) यहाँ चूंकि यही थे इसलिए यही तक़सीम हो गए।

(हुस्नुल अज़ीज़)

बाब 11

फ़स्ल (1)

महर का बयान

महर और गवाहों की तअय्युन का राज़

निकाह में यह बात मुतअय्यन हुई कि मेहर मुक़र्रर किया जाए ताकि ख़ाविंद को इस नज़्म व ताल्लुक़ (निकाह) के तोड़ने में माल के नुक़सान का ख़तरा लगा रहे और बिला ऐसी ज़रूरत के जिसके बग़ैर उसको चारा न हो उस पर जुरअत न कर सके। पस महर के मुक़र्रर करने में एक क़िस्म की पाएदारी है। मेहर के सबब से निकाह व ज़िना में इम्तियाज़ हो जाता है। यही वजह है कि रुसूमे सलफ़ (पहले के लोगों के रिवाज) में से आंहज़रत (सल्ल०) ने वजूबे महर को बदस्तूर बाक़ी रखा।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

हज़रत गंगोही (रह०) का फ़त्वा

निकाह के वक़्त छुहारे लुटाना मुबाह है, मगर उस वक़्त में न (लुटाना) चाहिए क्योंकि हाज़िरीन को तकलीफ़ होती है। ऐसे जुज़ई अमल को करना कुछ ज़रूरी नहीं। अगरचे ऐसा लूटना दुरुस्त हो मगर (यह छुहारा लुटानेवाली) रिवायत चन्दाँ मोतमिद नहीं और इसके फ़ेल से अकसर चोट आ जाती है। अगर मस्जिद में निकाह हो तो मस्जिद की बे-तज़ीमी भी होती है। लिहाज़ा हदीस ज़ईफ़ पर अमल करके मुस्लिम की अज़िय्यत का मुजिब होना है और मस्जिद की शान के ख़िलाफ़ फ़ेल होना मुनासिब नहीं और इस रिवायत को लोगों ने ज़ईफ़ लिखा है।

(फ़तावा रशीदिया, मतबूआ रहीमिया)

गवाहों की ताईन का राज़

सब अंबिया व अइम्मा इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि निकाह को शोहरत दी जाए ताकि हाज़िरीन के सामने इसमें और ज़िना में तमीज़ हो जाए। लिहाज़ा गवाह भी मुक़र्रर हुए और मज़ीद शोहरत के लिए वलीमा भी किया गया और लोगों को इसमें दावत दी गई। इसके ज़रिए से दूसरे लोगों को भी ख़बर हो जाती है और बाद में कोई ख़राबी पैदा नहीं होती।

(फ़तावा रशीदिया, मतबूआ रहीमिया)

मह्र के सिलसिले में आम रुजहान और सख़्त ग़लती

एक कोताही जो बाज़ एतिबार से सबसे ज़्यादा सख़्त है, वह यह होती है कि अकसर लोग मह्र देने का इरादा ही दिल में नहीं रखते, फिर ख़्वाह बीवी भी वुसूल करने का इरादा न करे और ख़्वाह तलाक़ या मौत के बाद उसके वुरसा वुसूल करने की कोशिश करें, या न करें लेकिन शौहर की हर हाल में नीयत अदा करने की नहीं होती।

लोगों की निगाह में यह निहायत सरसरी मामला है। हत्ताकि मह्र की क़िल्लत व कसरत (कमी-ज़्यादती) में गुफ़्तुगू के वक़्त बे-धड़क कह देते हैं कि मियाँ कौन लेता है, कौन देता है? यह लोग सरीह इक़रार करते हैं कि मह्र महज़ नाम ही करने को होता है, देने-लेने का इससे कोई ताल्लुक़ नहीं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

जिसका मह्र की अदाएगी का इरादा न हो, वह ज़ानी है

ख़ूब समझ लेना चाहिए कि इस (मह्र) को सरसरी समझना और अदा की नीयत न रखना इतनी बड़ी सख़्त बात है कि हदीस शरीफ़ में इस पर बहुत ही वईद आई है। कंज़ुल आमाल और बैहक़ी में हदीस है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जो शख़्स किसी औरत से निकाह करे और उसका कुछ मह्र ठहराए, फिर यह नीयत रखे कि उसके मह्र में से कुछ उसको न देगा या

उसको पूरा न देगा तो वह ज़ानी होकर मरेगा और अल्लाह तआला से ज़ानी होकर मिलेगा। (अयज़न)

जो मह्र अदा न करे वह ख़ाइन और चोर है

इसी हदीस में एक जुज़ और भी है वह यह कि अगर किसी से कुछ माल ख़रीदे और उसकी क़ीमत अदा करने की नियत न रखे या किसी का कुछ दैन (क़र्ज़ वग़ैरह) हो और उसको अदा न करना चाहता हो तो वह शख़्स मौत के वक़्त और क़ियामत के रोज़ ख़ियानत करनेवाला और चोर होगा। इसी तरह ज़ाहिर है कि मह्र भी एक दैन (क़र्ज़) है, जब उसके अदा की नीयत न हुई तो हदीस के इस दूसरे जुज़ के एतिबार से यह शख़्स ख़ाइन और चोर भी हुआ। तो ऐसे शख़्स पर दो जुर्म क़ायम हुए, ज़ानी होने का और ख़ाइन व सारिक़ होने का। क्या अब भी यह कोताही क़ाबिले तदारुक (इस्लाह) नहीं।

सबसे आसान इलाज यह है कि मह्र कम मुक़र्रर किया जाए

इसका तदारुक (और इलाज) ज़ाहिर है कि (मह्र) अदा करने की पक्की नीयत रखी जाए, मगर तजुर्बा और वजदान शाहिद है कि अकसर आदत के मुताबिक़ यह नीयत उसी वक़्त हो सकती है जिस पर आदतन क़ुदरत हो, वरना नीयत का महज़ ख़्याल होता है, वक़ूअ नहीं होता। क्योंकि ज़ाहिर है कि जिस शख़्स को सौ रुपये देने की क़ुदरत न हो वह आदतन लाख-सवा लाख बल्कि दस हज़ार या पाँच हज़ार देने पर भी क़ादिर नहीं। जब क़ादिर नहीं तो उसके अदा की नीयत न रखने के सबब से ज़रूर इस वईद का महल बनेगा। पस इसके सिवा कुछ सूरत नहीं कि वुसअत से ज़्यादा मह्र मुक़र्रर न किया जाए और चूंकि अकसर ज़मानों में अकसर लोगों में वुस्अत कम है इसलिए अस्लम (बेहतर और सलामती) का तरीक़ा यही है कि मह्र कम हो। (अयज़न)

शरई दलील

क़वाइदे शरईया से तहम्मुल (यानी हैसियत से ज़ाइद किसी चीज़ का तहम्मुल करना) की मुमानिअत आई है। हदीस में है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया—

لا ينبغى للمومن ان يذل نفسه قيل يا رسول الله و كيف يذل نفسه؟ قال يتحمل من البلاء مالا يطيقه

तर्जुमा : यानी किसी मोमिन के लिए मुनासिब नहीं कि वह अपने आपको ज़लील करे। अर्ज़ किया गया कि या रसूलल्लाह (सल्ल०), वह अपने आपको किस तरह ज़लील करता है? इर्शाद फ़रमाया कि ऐसी मुसीबत का तहम्मुल करता है जिसकी ताक़त नहीं रखता।

(इस हदीस से) तहम्मुल से ज़्यादा मह्र मुक़र्रर न करने और उसके कम होने का मतलूब शरई होना साबित हो गया।

(इस्लाहुर्रुसूम)

बा-बरकत और आसान मह्र, मह्र की क़िल्लत व कसरत से मुतअल्लिक़ चन्द अहादीस

हदीसों में मह्र ज़्यादा ठहराने की कराहत और कम ठहराने की तर्ग़ीब आई है।

1. चुनांचे हज़रत उमर (रज़ि०) ने ख़ुत्बे में फ़रमाया कि मह्रों में ज़्यादती मत करो, क्योंकि अगर यह दुनिया में इज़्ज़त की बात या अल्लाह के नज़दीक़ तक़वा की बात होती तो सबसे ज़्यादा इसके मुस्तहिक़ जनाब रसूलुल्लाह (सल्ल०) थे। मगर रसूलुल्लाह (सल्ल०) की किसी बीवी का और इसी तरह किसी बेटी का मह्र बारह औक़िया से ज़्यादा नहीं हुआ। एक औक़िया चालीस दिरहम का होता है और एक दिरहम तक़रीबन चार आना चार पाई का होता है (यानी चाँदी के चार आना चार पाई)। (कंज़ुल आमाल)

2. और हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि औरत का मुबारक होना यह भी है कि उसका मह्र आसान हो। (कंज़ुल आमाल)

3. और हदीस में है कि मह्र में आसानी इख़्तियार करो। (कंज़ुल आमाल)

4. और एक हदीस में है कि अच्छा मह्र वह है जो आसान और कम हो। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

ज़्यादा मह्र मुक़र्रर करने के नुक़सानात

इसके अलावा (मह्र ज़्यादा मुक़र्रर करने में) जो दुनयवी ख़राबियाँ हैं वे आँखों से नज़र आती हैं। मस्लन बहुत जगह मुआफ़क़त नहीं होती और बीवी के हुक़ूक़ अदा नहीं किए जाते मगर तलाक़ इसलिए नहीं देते कि मह्र ज़्यादा है। ये लोग दावा करके परेशान करेंगे। पस मह्र की कसरत बजाए इसके कि औरत की मस्लिहत का सबब होता उल्टा उसकी तकलीफ़ का सबब हो गया।

कसरते मह्र की ये ख़राबियां उस वक़्त हैं जब अदा न किया जाए या अदा करने का इरादा न हो।

और अगर मर्द पर ख़ौफ़े ख़ुदा ग़ालिब है और हुक़ूक़ुल इबाद से उसने सुबुकदोश होना चाहा और अदाएगी का इरादा किया, उस वक़्त यह मुसीबत पेश आती है कि इतनी मिक़्दार का अदा करना उसके तहम्मुल से ज़्यादा होता है तो उस पर फ़िक्र और तरद्दुद (परेशानी) का बुरा बोझ पड़ता है और कमा-कमाकर अदा करता है, मगर ज़्यादा मिक़्दार होने से वह अदा नहीं होता और वह तरह-तरह की तंगी बर्दाश्त करता है। फिर उससे दिल में तंगी और परेशानी होती है और चूंकि इन तमाम तकलीफ़ का सबब वह औरत है, इसलिए इसके नतीजे में उस मर्द के दिल में उससे इंक़िबाज़ (खिंचाओ) और फिर इंक़िबाज़ से नफ़रत फिर दुश्मनी पैदा हो जाती है जिसका सबब मह्र की कसरत है।

इस हदीस का यही मतलब है—

تیاسروا فی الصداق فان الرجل لیعطی المرأۃ (الخ)

"यानी महर के अंदर आसानी इख़्तियार करो इसलिए कि मर्द औरत को ज़्यादा महर दे बैठता है, हत्ताकि इस देने से उसके नफ़्स के अंदर औरत की तरफ़ से दुश्मनी पैदा हो जाती है।"

(कंजुल आमाल)

हज़रत थानवी (रह०) का तजुर्बा

चुनांचे मुझे ख़ुद इसका अंदाज़ा हुआ कि मेरी एक अहलिया का महर पाँच हज़ार (उस ज़माना से) और दूसरी बीवी का पाँच सौ था। बिफ़ज़्लिहि तआला दोनों अदा किए गए। मगर पहली महर की अदाएगी में जो कुछ गिरानी हुई, अगर वालिद साहब मरहूम का ज़ख़ीरा उसमें इआनत न करता तो वह गिरानी ज़रूर कदूरत (और बख़्शी) की सूरत पैदा करती और दूसरा महर सिर्फ़ फ़तूहात यौमिया की आमदनी से बहुत आसानी से अदा हो गया और क़ल्ब पर कोई बार नहीं पड़ा।

फिर अगर इस कोशिश के बाद भी अदा न हो सका तो नफ़्स में एक दूसरी कम हिम्मती पैदा होती है जो ख़िलाफ़े ग़ैरत है। वह यह कि औरत से महर माफ़ कराया जाए। यह दरख़्वास्त ही ज़िल्लत से ख़ाली नहीं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

वुसअत से ज़्यादा महर मुक़र्रर करने का अंजाम

बहुत जगह तलाक़ या (बीवी की) मौत के बाद (महर का) दावा हुआ है। और चूंकि तादाद लाखों तक महर था (उसकी वजह से) तमाम जायदाद सबकी सब (महर की) नज़र हो जाती है और शौहर या उसके वुरसा उसकी बदौलत (मुफ़्लिस होकर) नान-शबीनह (यानी रात के खाने तक के मोहताज हो जाते हैं)

ख़सिरत दुनिया वल आख़िरह (यानी दुनिया भी गई आख़िरत भी खोई)। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

बीवी के न छोड़ने और तलाक़ के डर से महर ज़्यादा मुक़र्रर करना

बाज़ उक़्ला महर की ज़्यादती में यह मसलिहत समझते हैं कि छोड़ न सकेगा। अगर महर कम हो तो शौहर पर कोई बार नहीं पड़ता और उसको इस अम्र से कोई मानेअ नहीं होती कि इसको छोड़कर दूसरी कर ले और कसरते महर इसमें रुकावट रहती है। यह उज़्र बिल्कुल लग़्व है। जिनको छोड़ना होता है वे छोड़ ही देते हैं, ख़्वाह कुछ भी हो। दूसरे न छोड़ सकता हर जगह तो मसलिहत नहीं है (क्योंकि) जो लोग महर के मुतालबे के ख़ौफ़ से नहीं छोड़ते वे छोड़ने से बदतर कर देते हैं यानी ततलीक़ की जगह ताालीक़ अमल में लाते हैं कि निकाह से नहीं निकालते, मगर हुक़ूक़ भी अदा नहीं करते। उनका कोई क्या कर लेता है जिस शख़्स के दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ न हो तो उसको कोई चीज़ किसी अम्र से नहीं रोक सकती। क्या ऐसें वाक़िआत पेशे-नज़र नहीं हैं कि बड़े-बड़े महरों के मक़रूज़ हैं और इसके बावजूद मंकूहा का कोई हक़ अदा नहीं करते और न दूसरी तरफ़ मुतवज्जह होने से रुकते हैं, ख़्वाह वह हलाल हो या हराम? ऐसे ज़ालिमों का कोई कुछ नहीं कर सकता। ख़्वाह इस वजह से कि वह साहिबे-वजाहत (बारोब शख़्सियत) है, लोग उससे डरते हैं। ख़्वाह इस वजह से कि उसके पास कुछ है नहीं और निरा जेलख़ाना भेजने से क्या मिलता है। फिर दामाद के जेल जाने से अपनी बेटी को क्या आराम मिला? (इस्लाहे-इंक़िलाब)

महर कम मुक़र्रर करने में बे-इज़्ज़तही का शुब्हा

बाज़ लोग यह मसलिहत बयान करते हैं कि क़िल्लत (महर कम मुक़र्रर करने) में ज़िल्लत है और कसरत (ज़्यादा मुक़र्रर

करने) में इज़्ज़त है सो अव्वल तो हर क़िल्लत (कमी) जबकि दर्जा-ए-एतिदाल पर हो ज़िल्लत नहीं। दूसरे अगर यह मसलिहत भी हो मगर उसके मफ़ासिद बेशुमार हुए तो वह मसलिहत कब हासिल करने के क़ाबिल होगी? तीसरे अगर इज़्हारे-फ़ख़्र के साथ अदा करने की कुव्वत की रिआयत न हो तो मेरे उस्ताद के बक़ौल फिर उस मिक़दार पर बस क्यों की जाती है? उससे ज़्यादा मिक़दार में उससे ज़्यादा इज़्ज़त और फ़ख़्र है। तो बेहतर है कि हफ़्ते-अक़लीम की सल्तनत का ख़िराज (महसूल और ख़ज़ाना) बल्कि उसका भी कई गुना मुक़र्रर किया जाए। क्योंकि न लेना न देना, सिर्फ़ नाम ही नाम है। तो अच्छी तरह से क्यों न नाम किया जाए। हक़ीक़त यह है कि यह सब रस्म-परस्ती है वरना वाक़ेअ में कुछ मसलिहत नहीं। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

असल बात यह है कि इफ़्तिख़ार (तकब्बुर व फ़ख़्र) के लिए ऐसा करते हैं कि ख़ूब शान ज़ाहिर हो। सो फ़ख़्र के लिए कोई काम करना गो असल में मुबाह (और जायज़ भी) हो, हराम होता है अगर फ़ी नफ़्सिही वह ख़िलाफ़े सुन्नत और मकरूह हो तो और भी ममनूअ़ हो जाएगा।

महर के ज़्यादा ठहराने की रस्म ख़िलाफ़े-सुन्नत है।

(इस्लाहुर्रुसूम)

महर की क़िल्लत व कसरत का मेयार

अब यह कलाम बाक़ी रहा कि इस तक़लील (कमी) की कोई हद भी है या नहीं? सो उसके नज़दीक तो उसकी कोई हद मुक़र्रर नहीं। क़लील से क़लील (कम से कम) मिक़दार भी महर बन सकता है, बशर्ते कि माल मंक़ूम हो। ख़्वाह एक ही पैसा हो।

और इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाह अलैहि के नज़दीक इस क़लील (कम) की हद दस दिरहम है यानी इससे कम महर जायज़ नहीं, हत्ताकि अगर सराहतन भी इससे कम मुक़र्रर किया जाएगा

तो भी दस दिरहम वाजिब होंगे (और दस दिरहम की आज के तौल के एतिबार से तक़रीबन 34 ग्राम चाँदी होती है)।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

मेरा यह मतलब नहीं कि महूर बहुत ही क़लील (कम) हो, बल्कि मक़सूद यह है कि इतना ज़्यादा न हो जो उसकी दीनी और दुनयवी तबाही का सबब बन जाए। अदाएगी की नीयत न होने की सूरत में भी और अदाएगी की कोशिश में भी और बरी होने की तदबीर में भी, बल्कि इसमें एतिदाल हो जिसमें तमाम मसालिह महफ़ूज़ रहें। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

मसनून तो यही है कि (चाँदी के) डेड़ सौ रुपये के क़रीब ठहरा लें और ख़ैर अगर ऐसा ही ज़्यादा बाँधने का शौक़ है तो हर शख़्स की वुस्अत के मुताबिक़ कर लें इससे ज़्यादा न करें। यानी शरीअत की निगाह में जो माल हो मस्लन सोना, चाँदी, रुपये पैसे माल है और शराब और ख़िंज़ीर माल नहीं। (इस्लाहुर्रुसूम)

महूरे फ़ातिमी

महूरे फ़ातिमी काफ़ी और मूजिबे बरकत है और अगर किसी को वुसअत न हो तो इससे भी कम मुनासिब है। (इस्लाहुर्रुसूम)

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का महूर दीगर साहबज़ादियों के मिस्ल साढ़े बारह औक़िया था और एक औक़िया चालीस दिरहम का होता है तो पाँच सौ दिरहम हुए और दिरहम का हिसाब एक बार मैंने लगाया था, जो अंग्रेज़ी सिक्के से चार आना चार पाई का होता है। तो पाँच सौ दिरहम के मासिवा और कुछ पैसे हुए (और आजकल के वज़न के एतिबार से उसकी मिक़दार एक किलो पाँच सौ इक्कीस ग्राम चाँदी होती है)।

(इम्दादुल-फ़तावा)

महूर कम मुक़र्रर करने की बाबत ज़रूरी तंबीह

एक साहब के सवाल के जवाब में तहरीर फ़रमाया कि महूर

कम करने से मुराद यह है कि तमाम बिरादरी जमा होकर उसको कम कर दे, वरना मुतआरिफ़ (मुरव्वजह) मिक़दार लड़की का हक़ है। वली कम करके उसका नुक़सान करता है, जिसका उसको हक़ नहीं।

(अल इफ़ाज़ात क़दीम)

जिन सूरतों में वली को महर मिस्ल से कम मुक़र्रर करना जायज़ न हो जैसा कि फ़िक़ही मसाइल में मज़्कूर है वहाँ उस पर अमल की सूरत यह है कि सब लोग मुत्तफ़िक़ होकर अपने उर्फ़ को बदलें जिससे ख़ुद क़लील (कम) मिक़दार ही महर मिस्ल बन जाए।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

फ़स्ल (2)

महर की अदाएगी से मुताल्लिक़

ज़रूरी मस्अला

बजाए रुपये के मकान वग़ैरह देना

एक कोताही शौहर की तरफ़ से यह होती है कि अपनी राय से बीवी को कोई चीज़ ख़्वाह ज़ेवर की क़िस्म से हो या सामान और कपड़े की क़िस्म से हो या मकान और ज़मीन बीवी को दे देते हैं और उसके नाम करके ख़ुद नीयत करते हैं कि मैं महर दे चुका और महर अदा कर दिया।

सो समझ लेना चाहिए कि महर के बदले में ये चीज़ें बैअ़ (ख़रीद व फ़रोख़्त) है और बैअ़ में दोनों जानिब से रज़ामंदी शर्त है, अगर इन चीज़ों का महर में देना मंज़ूर है तो बीवी से सरीह अल्फ़ाज़ में पहले पूछना चाहिए कि हम तुम्हारे महर में ये चीज़ें देते हैं तुम रज़ामंद हो? फिर अगर वह रज़ामंद हो तो जायज़ है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

महर की अदाएगी में नीयत शर्त है, बाद में नीयत करने का एतिबार नहीं, अगरचे वह माल औरत के पास मौजूद हो

सवाल : ज़कात में तसरीह है कि ज़कात के वक़्त अगर नीयत न की हो तो जब तक माल फ़क़ीर के क़ब्ज़े में बाक़ी रहे ज़कात की नीयत कर लेना जायज़ है तो अगर किसी ने बीवी को महर दिया, लेकिन देते वक़्त नीयत न की तो क्या इसी पर क़यास करके 'क़याम माल फ़ी यदहा' (यानी जब तक माल उसके क़ब्ज़े में है) नीयत करना जायज़ है? और नीयते लाहिक़ा से महर अदा हो जाएगा या फिर देना पड़ेगा?

जवाब : जब देने के वक़्त कुछ नीयत नहीं की तो ज़ाहिर है कि यह तमलीक हिबा हुई, अदा दैन नहीं। दुर्रे-मुख़्तार की तसरीह से मालूम होता है कि हदिया होने के बाद महर नहीं बनता।

ولو بعث الی امراته شیئًا ولم یذکر جهته عند الدفع غیر جهته المهر (اخ)

तर्जुमा : बख़िलाफ़ ज़कात के कि ख़ुद ज़कात भी तबर्रुअ है और हदिया भी तबर्रुअ (लेकिन) यहाँ इंक़िलाब ग़ैर तबर्रुअ की तरफ़ लाज़िम नहीं आता, इसलिए ज़कात अदा हो जाएगी और महर अदा न होगा। (इम्दादुल फ़तावा)

निहायत अहम मस्अला, चाँदी सोने के महर की अदाएगी में किस वक़्त की क़ीमत का एतिबार होगा

एक और आम मस्अला क़ीमत लगाने के मुताल्लिक़ मालूम करना ज़रूरी है, वह यह है कि (मसलन) अगर वाजिब हो एक चीज़ और लेने के वक़्त दूसरी चीज़ उसकी क़ीमत लगाकर ली जाए तो याद रखना चाहिए कि जिस क़द्र उस वक़्त वुसूल किया जाता है (सिर्फ़) उसी का हिसाब करना चाहिए। बक़ाया का हिसाब अगर दूसरे वक़्त उस जीन्स से किया जाए तो उस दूसरे वक़्त के नर्ख़ (भाव) का एतिबार होगा, साबिक़ नर्ख़ (पहले भाव)

पर साहिबे-हक़ मजबूर नहीं कर सकता।

मसूलन एक काश्तकार के ज़िम्मे चालीस सेर गंदुम है। फिर उससे यह तय पाया कि अच्छा इसके नक़द दाम लगाकर हिसाब कर लिया जाए और हिसाब के वक़्त गंदुम का नर्ख़ (गेहूँ का भाव) एक रुपये का दस सेर है और इस हिसाब से चालीस सेर ग़ल्ला चार रुपये का हुआ। सो अगर इसी जल्से में चारों रुपये वुसूल हो जाएँ तब तो पूरे गल्ले का हिसाब कर लेना जायज़ है और अगर फ़र्ज़ कीजिए कि उसके सिर्फ़ दो रुपये वुसूल हों तो उस वक़्त सिर्फ़ बीस ही सैर का हिसाब करना चाहिए। अब काश्तकार के ज़िम्मे बीस सेर ग़ल्ला बाक़ी रहेगा (अब आइंदा जब इसकी अदाएगी नक़द दाम के ज़रिए करेगा तो उस वक़्त के भाव का एतिबार होगा पहले भाव का एतबार न होगा)।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

औरत से महर माफ़ करवाना ज़िल्लत और ग़ैब की बात है

नफ़्स में एक कम हिम्मती पैदा होती है जो ख़िलाफ़े ग़ैरत है, वह यह कि औरत से (महर) माफ़ कराया जाए। उससे दरख़्वास्त की जाए कि महर माफ़ कर दे। यह दरख़्वास्त ही ज़िल्लत से ख़ाली नहीं।

(अगरचे औरत का माफ़ कर देना मुबाह है लेकिन) बावजूद मुबाह होने के मर्जूअ़ (नापसंदीदा) है।

لكونه يعد من الغيرة

क्योंकि यह ग़ैरत के ख़िलाफ़ है وَلَا تَنسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ में इसी तरफ़ इशारा है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

ग़ैरत का मुक़्तज़ा यही है कि औरत की महर की माफ़ी को क़बूल न करो, बल्कि तुम उसके साथ ख़ुद एहसान करो। अगर औरत माफ़ भी कर दे, फिर भी अदा कर देना चाहिए क्योंकि यह

ग़ैरत की बात है। बिला ज़रूरत औरत का एहसान न ले।

(अनफ़ासे-ईसा)

हर माफ़ी मोतबर नहीं, दिली रज़ामंदी शर्त है

यह उस वक़्त तक है जब कि मर्द उससे माफ़ी तलब करने में तय्यबुन नफ़्स (यानी औरत की दिली रज़ामंदी) की रिआयत करे। वरना अगर ग़ैरत के साथ ख़ौफ़े ख़ुदा भी मफ़्क़ूद है तो वह सिर्फ़ लफ़्ज़ी माफ़ी की नाजायज़ तदबीरें निकालेगा। यानी या तो वह औरत को धोका देगा या उसको धमकाएगा या उस पर जब्र करेगा जिससे वह माफ़ कर देगी मगर याद रहे की ऐसी माफ़ी इंदल्लाह हरगिज़ मोतबर और मक़बूल नहीं। इस सूरत में यह इंदल्लाह बदस्तूर ज़िम्मेदारी के बोझ तले रहेगा। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

नाबालिग़ा बीवी का मह्र माफ़ नहीं हो सकता

बाज़ लोग ऐसे ही तलाक़ देने के वक़्त नाबालिग़ ज़ौजा से मह्र माफ़ करा लेते हैं सो यह माफ़ी मोतबर नहीं। क्योंकि

لان تبرع الصغیر باطل

नाबालिग़ का तबर्रअ करना बातिल है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

अगर (वली बाप) चचा भी मंज़ूर करे तब भी मह्र माफ़ नहीं हो सकता। (इम्दादुल फ़तावा)

मह्र औरत का हक़ है, उसका माँगना ऐब की बात नहीं

एक अमली ग़लती यह की जाती है कि औरतें मह्र माँगने को ऐब समझती हैं और अगर कोई ऐसा करे तो उसको बदनाम करती हैं। सो (ख़ूब समझ लेना चाहिए) कि अपने हक़ वाजिब का माँगना या वुसूल कर लेना जब शरअ़न कुछ ऐब नहीं तो महज़ इत्तबा-ए-रस्म की वजह से उसको ऐब समझना गुनाह से ख़ाली नहीं । (इस्लाहे-इंक़िलाब)

अरब और हिन्दुस्तान के दस्तूर का फ़र्क़

अरब में महर के मुतालिक़ यह रस्म है कि औरतें मर्दों की छाती पर चढ़कर महर वुसूल करती हैं और हिन्दुस्तान में इसको बड़ा ऐब समझा जाता है। हिन्दुस्तान की औरतें महर को ज़बान पर भी नहीं लातीं और ख़ाविंद के मरते वक़्त अकसर बख़्श ही देती हैं। (अत-तबलीग़)

महर वुसूल कर लेने से नफ़्क़ा साक़ित नहीं होता और हुक़ूक़ ख़त्म नहीं होते

औरतें यह समझती हैं कि अगर हमने महर ले लिया तो फिर हमारा कोई हक़ ख़ाविंद (शौहर) के ऊपर न रहेगा। यानी नान-नफ़्क़ा और दूसरे हुक़ूक़ मआशिरत सब साक़ित हो जाएंगे। यह एतिक़ाद सरासर ग़लत है। सब हुक़ूक़ अलग-अलग हैं। एक हक़ दूसरे पर मब्नी नहीं। महर लेने से दूसरा कोई हक़ साक़ित नहीं होता। बहुत-सी औरतों का यह गुमान है कि अगर हम महर ले लेंगे तो फिर नफ़्क़ा में हमारा कुछ हक़ न रहेगा इस वजह से ख़ुद मांगना तो दरकिनार बाज़ ख़ुदा की बंदियाँ तो मर्द के देने पर भी इस डर के मारे नहीं लेतीं। यह बिल्कुल ग़लत और बातिल अम्र है। इस एतिक़ादे-बातिल का असर यह होता है कि शौहर महर अदा करता है और औरत नहीं लेती और न माफ़ करती है। ऐसी सूरत में अगर शौहर पर हक़ की अदाएगी का ग़लबा हो तो परेशान होता है कि ज़िम्मेदारी से नजात की क्या सूरत हो सकती है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

अगर औरत महर न क़बूल करे और न माफ़ करे तो ख़लासी किस तरह हो

सवाल : एक औरत अपना महर न लेती है न माफ़ करती है, ऐसी हालत में मर्द किस तरह सुबुकदोश हो सकता है?

जवाब : इस सूरत में शौहर मह्र का माल बीवी के सामने इस तरह रख दे कि अगर वह उठाना चाहे तो उठा सके और रखकर यह कह दे कि यह तुम्हारा मह्र है। और यह कहकर उस मज्लिस से हट जाए तो मह्र अदा हो गया। मर्द सुबुकदोश हो जाएगा। फिर अगर वह औरत न उठाएगी, कोई और उठाएगा तो उस औरत का रुपया ज़ाया होगा। शौहर सुबुकदोश हो जाएगा और अगर ज़ाया होने के ख़्याल से फिर शौहर ने उठा लिया तो वह शौहर के पास अमानत रहेगा, शौहर की मिल्क न होगा। उसमें शौहर को तसर्रुफ़ करना जायज़ न होगा।

(इम्दादुल फ़तावा)

शौहर के इंतिक़ाल के वक्त औरत का मह्र माफ़ करना

एक कोताही यह है कि शौहर के मर्ज़ुल-मौत में औरत मह्र माफ़ कर देती है। इसकी तफ़्सील यह है कि अगर ख़ुशी से माफ़ कर दे तो माफ़ हो जाता है। और अगर औरतों को ज़बर्दस्ती घेरा-घेरी से माफ़ करे तो इंदल्लाह माफ़ नहीं होता। और ऊपर वालों को (यानी बड़े-बूढ़ों को) इस तरह मजबूर नहीं करना चाहिए।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

शौहर के इंतिक़ाल के बाद औरत को मह्र माफ़ करना बेहतर है या नहीं

ज़ाहिरन तो माफ़ कर देना बेहतर मालूम होता है। लेकिन नज़रे ग़ायर से (मालूम होता है कि) लेना अफ़ज़ल है। क्योंकि (शौहर के वुरसा का) इस माफ़ी चाहने की बुनियाद पर हर्ज है जो कि मज़्मूम है और माफ़ करना इस मज़्मूम की इआनत है।

(इम्दादुल फ़तावा)

बाज़ मौक़ों पर माफ़ करना मसलिहत भी नहीं होता। मस्लन बीवी की मीरास का हिस्सा उसकी बसर के लिए काफ़ी न हो और वुरसा से रिआयत व किफ़ायत (यानी इख़राजात बर्दाश्त करने

की उम्मीद) न हो। ऐसे मौके पर तो बजाए माफ़ी की तर्ग़ीब के माफ़ न करने की राय देना मुनासिब है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

बीवी का अपने इंतिक़ाल के वक़्त महर माफ़ करना दुरुस्त नहीं

अकसर औरतें अपने मर्ज़ुल-मौत में महर माफ़ कर देती हैं और इस माफ़ी से शौहर बिल्कुल बेफ़िक्र हो जाता है। सो समझ लेना चाहिए कि यह माफ़ वारिस के लिए वसीयत की एक सूरत है और यह बग़ैर दूसरे वुरसा की रज़ामंदी के नाजायज़ है, पस माफ़ी से महर माफ़ न होगा अलबत्ता शौहर को जिस क़दर (महर) की मीरास में हिस्सा पहुँचेगा, वह बेशक माफ़ हो जाएगा बाक़ी उसके ज़िम्मे वाजिबुल अदा रहेगा जो दूसरे वारिसों को दिया जाएगा। अलबत्ता अगर वुरसा इस माफ़ी को जायज़ रखें तो कुल माफ़ हो जाएगा और अगर बाज़ ने जायज़ रखा या बाज़ (वुरसा) नाबालिग़ हों तो उनके हिस्से के बक़द्र माफ़ न होगा।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

बीवी के इंतिक़ाल के बाद उसके महर में उसके वुरसा औलाद वग़ैरह का भी हक़ है जिसका अदा करना ज़रूरी है

महर के बारे में एक कोताही यह होती है कि मुतवफ़्फ़ी बीवी के वुरसा उसके माँ-बाप या भाई वग़ैरह होते हैं। तब तो उनके मुतालबे पर शौहर उनका हिस्सा महर (की मीरास में से) देता है और अगर ख़ुद उसी शौहर की औलाद वारिस हुई तो चूंकि वह मुतालबा नहीं कर सकते (छोटा होने की वजह से) और वह यह उनका हक़ अदा नहीं करता। यह फ़ेल सरासर जुल्म और ख़ियानत है। उनका हक़ अमानत है; उसे औलाद के नाम से जमा रखना चाहिए। और ख़ास उनके मसालिह में सर्फ़ करना चाहिए, ख़ुद (अपने ऊपर) ख़र्च करना हराम है। इसी तरह उन बच्चों की

उनकी माँ से जो मीरास पहुँची हो उन सबकी हिफ़ाज़त उसके ज़िम्मे फ़र्ज़ है उसमें बेजा तसर्रुफ़ करना हराम है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

मह्र मानेअ ज़कात नहीं

बाज़ लोग दैन मह्र को मानेअ वुजूबे-ज़कात (यानी ज़कात के वुजूब को रोकने वाला) समझते हैं यानी जिस शख़्स के ज़िम्मे मह्र वाजिब हो वह यूँ समझता है कि चूंकि मैं इतने का क़र्ज़दार हूँ इसलिए मुझ पर इतने माल में ज़कात वाजिब नहीं, लेकिन सहीह यह है कि वह मानेअ़ नहीं चूंकि शामी ने कहा है—

والصحيح انه غير مانع

ख़ुलासा यह है कि मह्र न मानेअ़ ज़कात नहीं है। यानी उस क़र्ज़ के होते हुए भी शौहर पर ज़कात वाजिब रहती है (अगर निसाब ज़कात मौजूद हो मह्र न मूजिबे-ज़कात है यानी औरत पर भी उसकी ज़कात वाजिब नहीं) जब तक कि वुसूल न हो जाए और वसूल होने के बाद भी गुज़िश्ता ज़माने की ज़कात वाजिब न होगी, ताज़ा ज़कात होगी।

(कज़ाफ़ी अद-दुर्रे-मुख़्तार, इस्लाहे-इंक़िलाब)

बाब 12

तलब व ख़्वाहिश के बग़ैर ख़ुलूस के साथ अगर लड़के को कुछ मिले तो अल्लाह की नेमत है

अगर ख़ुलूसे कामिल से शौहर की ख़िदमत की जाए बग़ैर इसके कि शौहर को उसकी ख़्वाहिश (या तलब) या उस पर नज़र या उसकी निगरानी या इंतिज़ार हो तो मुज़ायक़ा नहीं। (जिसकी दलील यह आयते क़ुरआनी है)—

ووجدك عائلاً فأغنى واشترط عدم الطمع والتشرف بقوله عليه السلام ما اتاك من غير اشراف فخذوه وما لا فلا تتبعه نفسك او كما قال عليه الصلوة والسلام.

तर्जमा : और अल्लाह तआला ने आपको नादार पाया सो मालदार बनाया और माल मिलने का इंतिज़ार और उस पर नज़र न होना शर्त है क्योंकि हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया जो कुछ तुम्हारे पास बग़ैर अशराफ़े नफ़्स (यानी ख़्वाहिश व तलब के बग़ैर) आ जाए उसे ले लो और जो तुम्हारे पीछे नहीं आता उसके पीछे न पड़ो। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

जहेज़ की हक़ीक़त और उसका हुक्म

बरी और जहेज़ ये दोनों दर हक़ीक़त ज़ौज (लड़केवालों की) तरफ़ से ज़ौजा या अहले ज़ौजा (लड़कीवालों) को हदया है। और जहेज़ जो दर हक़ीक़त अपनी औलाद के साथ सिलारहमी है फ़ी नफ़्सही अम्र मुबाह बल्कि मुस्तह्सिन है। (इस्लाहुर्रुसूम) अगर ख़ुदा किसी को दे तो बेटी को ख़ूब देना बुरा नहीं, मगर तरीक़े से होना चाहिए जो लड़की के कुछ काम भी आए। (हुक़ूक़ुल बैत)

जहेज़ देने में चन्द बातों का लिहाज़ रखना ज़रूरी है

जहेज़ में इस अम्र का लिहाज़ रखना चाहिए—

1. अव्वल इख़्तिसार यानी गुंजाइश से ज़्यादा कोशिश न करे।
2. दोम ज़रूरत का लिहाज़ करे यानी जिन चीज़ों की सरे-दस्त ज़रूरत वाक़ेअ़ हो, देना चाहिए।
3. एलान न हो, क्योंकि यह तो अपनी औलाद के साथ सिलारहमी है, दूसरे को दिखलाने की क्या ज़रूरत है। हुज़ूर (सल्ल०) के फ़ेल से जो इस रिवायत में मज़्कूर है, तीनों अम्र साबित हैं। (इस्लाहुर्रुसूम)

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का जहेज़

सय्यदतुन्निसा हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का जहेज़ यह था— दो यमनी चादर और दो नहाली। जिसमें अलसी की छाल भरी हुई थी और चार गद्दे, चाँदी के दो बाज़ू बंद और एक कमली, और तकिया और एक प्याला और एक चक्की और एक मश्कीज़ा और पानी रखने का बर्तन यानी घड़ा और बाज़ रिवायतों में एक पलंग भी आया है।

मुरव्वजा जहेज़ के मफ़ासिद और ख़राबियाँ

मगर अब जिस तौर से इसका रिवाज है, उसमें तरह-तरह की ख़राबियाँ हो गई हैं जिनका ख़ुलासा यह है कि न अब हदया मक़सूद रहा न सिलारहमी बल्कि नामवरी और शोहरत और रस्म की पाबंदी की नीयत से किया जाता है। यही वजह है कि बरी और जहेज़ दोनों का एलान होता है। मुअय्यन अश्या होती है, ख़ास तरह के बर्तन भी ज़रूरी समझे जाते हैं। जहेज़ के असबाब भी मुअय्यन हैं कि फ़्लाँ-फ़्लाँ चीज़ ज़रूरी हो और तमाम बिरादरी और घरवाले उसको देखेंगे। जहेज़ की तमाम चीज़ें आम मज्मअ़ में लाई जाती हैं और एक-एक चीज़ सबको दिखलाई जाती है और ज़ेवर (और जहेज़) की फ़िह्रिस्त पढ़कर सबको सुनाई जाती है।

(आप ख़ुद) फ़रमाइए कि पूरी रिया (दिखलावा) है या नहीं? इसके अलावा ज़नाना कपड़ों का मर्दों को दिखलाना किस क़द्र ग़ैरत के ख़िलाफ़ है।

अगर सिलारहमी मक़सूद होती तो कैफ़ मा तफ़क़ जो मयस्सर आता और जब मयस्सर आता बतौर सुलूक के दे देते।

इसी तरह हदया और सिलारहमी के लिए कोई शख़्स क़र्ज़ का बार नहीं उठाता। लेकिन इन दोनों रस्मों को पूरा करने के लिए अकसर औक़ात मक़रूज़ भी होते हैं, चाहे सूद ही देना पड़े। और गो बाग़ ही फ़रोख़्त या गिरवी हो जाए। पस इसमें इल्तिज़ाम माला यलज़्ज़म, और नुमाइश और शोहरत, इसराफ़ वग़ैरह सब ख़राबियाँ मौजूद हैं इसलिए यह भी बतरीक़े मुतआरिफ़ (मुरव्वजह तरीक़े से) ममनुआत की फ़ेहरिस्त में दाख़िल हो गया।

(इज़ालतुल ख़फ़ा, इस्लाहुर्रुसूम, अयज़न)

जहेज़ का सामान

बाज़ चीज़ें ऐसी दी जाती हैं जो कभी काम नहीं आतीं, सिवाए इसके कि घर की जगह घेर लें। मसूलन चौकी और निवाड़ का पीढ़ा कि यह इस तकल्लुफ़ की चीज़ें होती हैं कि उनको काम में लाते हुए तरस आता है। और हक़ीक़त में वह काम के क़ाबिल होती भी नहीं। क्योंकि तकल्लुफ़ की चीज़ नाज़ुक ज़रूर हुआ करती है उसकी नज़ाकत और ख़ूबसूरती की वजह से एक तरफ़ एहतियात से रख दिया जाता है। आपने देखा होगा कि वे चीज़ें रखी-रखी सड़ जाती हैं और कभी काम नहीं आतीं।

अगर बेटी को लख़्ते जिगर समझकर देना है तो क्या ऐसी ही चीज़ें देनी चाहिए थी जो उसके काम कभी न आएँ। असल यह है कि ये चीज़ें बेटी को दी ही नहीं जातीं, सिर्फ़ तफ़ाख़ुर और दिखलावे के लिए दी जाती हैं। उसमें जिसका जितना हौसला होता है बढ़कर क़दम रखता चला जाता है। एक ने दस बर्तन और

पचास जोड़े दिए तो दूसरा नौ बर्तन और उन्चास जोड़े नहीं देगा। एक बढ़ाकर ही देगा, चाहे क़र्ज़दार ही क्यों ना हो जाए। सूद पर क़र्ज़ लेना गवारा करता है। बिरादरी के दबाव से ग़रीब आदमी भी आक़िबत बर्बाद करता है और ग़रीब ही की क्या तख़्सीस है ग़रीब के इख़राजात ग़रीब जैसे होते हैं और अमीर के इख़्राजात अमीर जैसे होते हैं। अमीर लोग भी इन रस्मों की बदौलत क़र्ज़ से नहीं बचते। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

मुरव्वजा जहेज़ की बुनियाद तफ़ाख़ुर और नामो-नमूद पर है

ग़ौर करके देखा जाए तो रस्मों की बुनियाद और अस्ल भी तफ़ाख़ुर है, हत्ता कि बेटी को जो चीज़ जहेज़ में दी जाती है उसकी अस्ल भी यही है। बेटी लख़्ते जिगर कहलाती है सारी उम्र तो उसके साथ यह बर्ताव रहा कि छिपा-छिपाकर उसको खिलाते थे कि अच्छा है कोई लुक़मा हमारी बेटी के पेट में पड़ जाएगा तो काम आएगा। दूसरे को दिखलाना भी पसंद न था कि शायद नज़र लग जाए। और निकाह का नाम आते ही ऐसा काया पलट हुआ कि एक-एक चीज़ मज्मअ़ को दिखाई जाती है। बर्तन, जोड़े और संदूक़ हत्ता कि आइना, कंघी तक शुमार करके दिखलाए जाते हैं। शायद वह पहले लख़्ते जिगर थी और अब नहीं रही या अब है और पहले न थी जो अब के और पहले के बर्ताव में बिल्कुल उल्टा फ़र्क़ है।

अगर आप ग़ौर करेंगे तो उसकी वजह सिर्फ़ तफ़ाख़ुर पाएँगे। बिरादरी को दिखलाना है कि हमने इतना दिया। यह मंज़ूर नहीं कि हमारी बेटी के पास सामान ज़्यादा हो जाए।

दिल का चोर

और इसी वास्ते जोड़े और बर्तन ग़रज़ तमाम जहेज़ ऐसा तज्वीज़ किया जाता है कि ज़ाहिरी बनावट में बहुत उजला हो और क़ीमत के एतिबार से यही कोशिश की जाती है कि सब

चीज़ें हल्की रहें। जब बाज़ार में ख़रीदने जाते हैं तो दुकानदार से कहा जाता है कि शादी का सामान ख़रीदना है। लेने-देने का सामान दिखाओ।

अगर असल बेटी के साथ हमदर्दी थी तो गो जहेज़ तादाद में कम होता मगर सब चीज़ें अच्छी और कारआमद होतीं, बजाए इसके कि वे चीज़ें दी जाती हैं जो बरतने और इस्तेमाल में लाने के क़ाबिल नहीं होतीं, सिर्फ़ ज़ाहिरी शुमार बढ़ाकर दी जाती हैं।

(मुनाज़िअ़तुल-मावा)

रियाकारी और तफ़ाख़ुर की मुख़्तलिफ़ सूरतें

बाज़ लोग कहते हैं कि हम जहेज़ को दिखाते तक नहीं, देखो हमने रस्में छोड़ दीं! सो जनाब इसमें क्या कमाल! अपनी बस्ती में तो बर्सों पहले से सामान जमा करके एक-एक को दिखला चुकी हो। जो मेहमान आती है उसको भी और जो रिश्तेदार आती है उसको भी एक-एक चीज़ दिखाई जाती है। और ख़ुद सामान आने में जो शोहरत होती है वह अलग। आज दिल्ली से कपड़ा आ रहा है और मुरादाबाद गए थे वहां से बर्तन लाए हैं और इसके बाद वह दूल्हा के घर जाकर खुलता है और आमतौर पर दिखाया जाता है और इसी वास्ते लड़की के हमराह भेजा जाता है तो यह क़स्दन ऐलान नहीं तो और क्या है। (इस्लाहुन्निसा, हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

बजाए जहेज़ के ज़मीन-जायदाद बाग़ या तिजारत के लिए नक़दी रक़म देना

मैंने एक ताल्लुक़दार की एक हिकायत सुनी है जो बहुत मालदार हैं कि उन्होंने अपनी लड़की का निकाह किया और जहेज़ में सिर्फ़ एक पालकी दी और एक क़ालीन और एक क़ुरआन मजीद। इसके सिवा कुछ न दिया। न बर्तन न कपड़े। बल्कि उसके बजाए एक लाख रुपये की जायदाद बेटी के नाम कर दी और कहा कि मेरी नीयत इस शादी में एक लाख रुपये ख़र्च करने

की थी और यह रक़म इस वास्ते पहले से कर ली थी। ख़याल था कि ख़ूब धूमधाम से शादी करूँगा, मगर फिर मैंने सोचा कि इस धूमधाम से मेरी बेटी को क्या नफ़ा होगा। बस लोग खा-पीकर चल देंगे, मेरा रुपया बर्बाद होगा और मेरी बेटी को कुछ न हासिल होगा। इसलिए मैंने ऐसी सूरत इख़्तियार की जिससे बेटी को नफ़ा पहुँचे। और जायदाद से बेहतर उसके लिए कोई नफ़ा की चीज़ नहीं। इससे वह और उसकी औलाद पीढ़ियाँ तक बेफ़िक्री से ऐश करती रहेंगी। और अब कोई मुझे बख़ील और कंजूस भी नहीं कह सकता, क्योंकि मैंने धूमधाम नहीं की तो रक़म अपने घर में भी नहीं रखी। (देखो यह होता है अक्लमंदों का तर्ज़।)

अगर ख़ुदा किसी को दे तो बेटी के जहेज़ में बहुत देना बुरा नहीं, मगर तरीक़े से होना चाहिए जो लड़की के काम भी आए। मगर औरतों को कुछ नहीं सूझता। ये तो ऐसी बेहूदा तर्कीबों से बर्बाद करती हैं, जिससे न उनको कुछ वुसूल होता है न लड़की को। (हुक़ूक़ुल बैत)

काश! जिस क़द्र बेहूदा रुपया उड़ाया है उन दोनों के लिए इससे कोई जायदाद ख़रीद दी जाती या तिजारत का सिलसिला शुरू कर दिया जाता तो कितनी राहत होती है। (इस्लाहुन्निसा)

जहेज़ में बहुत ज़ाइद कपड़े देना और रिश्तेदार औरतों के कपड़े बनवाना

जहेज़ में इस क़द्र कपड़े दिए जाते हैं कि एक बार मैं ज़िला मेरठ के एक गाँव गया था। मालूम हुआ कि वहाँ एक बहू सिर्फ़ कपड़े पंद्रह सौ रुपये के लाई है (जो आजकल पंद्रह हज़ार से भी ज़ायद होंगे)। बर्तन और ज़ेवर और लचके-गोटे उससे अलग थे।

मैंने बाज़ घरों में देखा है कि जहेज़ में इतने कपड़े दिए गए थे कि लड़की सारी उम्र भी पहने तो ख़त्म न हों, अब वह क्या

करती है। अगर सख़ी हुई तो बाँटना शुरू कर दिया। एक जोड़ा किसी को दिया, एक किसी को और अगर बख़ील हुई तो संदूक़ में बंद करके रख लिए। फिर बहुत से जोड़ों को तो पहनना नसीब नहीं होता। वे यूं ही रखे-रखे गल जाते हैं। इस तरह फ़ुज़ूल ख़र्ची के साथ औरतें माल बर्बाद करती हैं।

भला जहेज़ में इतने कपड़े देने की क्या ज़रूरत है। मगर क्यों न दें। इसमें भी नाम होता है कि फ़लाँ ने अपनी बेटी को ऐसा जहेज़ और इतना-इतना दिया। बस शेख़ी के वास्ते घर बर्बाद किया जाता है। (हुक़ूक़ुल बैत)

अकसर ऐसा हुआ कि दुल्हन मर गई और यह सामान हज़ारों रुपये का ज़ाया हुआ। फिर दुल्हन के कपड़ों के अलावा तमाम कुंबा (ख़ानदान वालों) के जोड़े बनाए जाते हैं और बाज़ दफ़ा उनको पसंद भी नहीं आते। और उनमें ऐब निकाले जाते हैं। किस क़द्र बेलुत्फ़ी होती है और इस पर दावा यह कि हमने रस्में छोड़ दी हैं। (इस्लाहुन्निसा)

जहेज़ देने का सहीह तरीक़ा, जहेज़ कब देना चाहिए

फ़रमाया, लड़की को जो कुछ देना हो उसकी रुख़्सती के वक़्त न देना क्योंकि वह उसको देना नहीं है, बल्कि वह तो सास-ससुरे को देना है।

(जहेज़ का सामान) अगर लड़की के हमराह न किया जाता तो अक़्ल के मुवाफ़िक़ था। क्योंकि यह सब सामान लड़की ही को दिया जाता है और उस वक़्त वह क़ब्ज़ा नहीं करती और न उसको ख़बर होती है। उसको देना है तो उसका तरीक़ा यह है कि सरेदस्त अपने घर रखो। जब वह ख़ूब घुल-मिल जाए और फिर जब वह अपने घर आए उस वक़्त वह तमाम सामान उसके सामने रख दो और कहो कि ये सब चीज़ें तुम्हारी हैं। इनमें से जितनी

ज़रूरी हों और जितना तेरा दिल और जब जी चाहे अपने सुसराल ले जाना और जितनी चीज़ें यहां रखना चाहो, यहाँ रख लो। जो चीज़ें वह तुम्हारे सुपुर्द करे उसको एहतियात से अपने यहाँ रख लेना चाहिए।

और मसलिहत यही है कि वह अभी (सामाने जहेज़) न ले जाए क्योंकि इस वक़्त तो उसको कोई ज़रूरत नहीं। किसी वक़्त जब उसे ज़रूरत होगी ले जाएगी। (यह तरीक़ा) अक़्ल के मुवाफ़िक़ होने के साथ-साथ इसमें रिया भी नहीं। मगर चूंकि इसमें कोई तफ़ाख़ुर और दिखावा नहीं है इसलिए ऐसा कोई भी नहीं करता। अगर कोई ऐसा करे तो लोग उसे बुरा-भला भी कहते हैं और कंजूस भी बना देते हैं। कहेंगे कि ख़र्च से बचने के लिए शरीअत की आड़ पकड़ी है (लेकिन शरीअत और अक़्ल के मुवाफ़िक़ सहीह तरीक़ा यही है)। (हुस्नुल अज़ीज़)

औरत के सामाने-जहेज़ में शौहर को भी उसकी दिली मर्ज़ी के बग़ैर तसर्रुफ़ करना जायज़ नहीं

क्योंकि दोनों की मिल्क जुदा-जुदा हैं। यह शौहर के लिए ज़ुल्म होगा कि औरत के माल में उसकी रज़ा के बग़ैर (यानी उसकी दिली इजाज़त के बग़ैर) तसर्रुफ़ करे। और औरत के लिए भी ख़ियानत होगी अगर मर्द के माल में बिला उसकी रज़ा के तसर्रुफ़ करे। (इस्लाहुन्निसा)

दिली रज़ामंदी किसे कहते हैं?

रज़ामंदी से मुराद सुकूत करना (यानी ख़ामोश रहना) या नाराज़गी का ज़ाहिर न करना या पूछने के बाद रज़ामंदी (महज़ शरमा-हुज़ूरी में नहीं) ज़ाहिर कर देना है। तजुर्बे से साबित है कि अकसर औक़ात कराहत और गिरानी के बावजूद शर्म व लिहाज़

और मुरव्वत की वजह से ऐसा किया जाता है (यानी इजाज़त दे दी जाती है)। वरना रज़ामंदी तो वह है कि पुख़्ता ग़ैर मश्कूक क़राइन से मालिक का तीबे ख़ातिर जज़्म के साथ (यानी यक़ीनी तौर पर दिली रज़ामंदी के साथ) मालूम हो जाए।

रसूलुल्लाह सल्ल० ने फ़रमाया—

الا لا یحل مال امری مسلم الا بطیب نفس منه

'ख़बरदार मुसलमान का माल बग़ैर उसकी दिली रज़ामंदी के हलाल नहीं।' (इस्लाहे-इंक़िलाब)

ब्योहारी लेन-देन का बयान

मुरव्वजह रस्मी लेन-देन में फ़ायदे से ज़्यादा नुक़सानात हैं

सबसे उमदा रस्म जिसके सबसे ज़्यादा फ़वाइद बयान किए जाते हैं कि साहिबे न्योता (ब्योहारी तौर से लेन-देन की रस्म) तो निहायत उमदा रस्म है। थोड़ा-थोड़ा देने में शादीवाले का काम हो जाता है और देने वालों में से किसी पर बार नहीं होता। यह तो मुस्तहसन (पसंदीदा है) इसको क़बीह कैसे कह दिया। ग़रीब को दिया, उसकी शादी हो गई, यह थोड़ी बात है? मैं कहता हूँ कि उन लोगों ने एक फ़ायदे को तो देख लिया और दूसरे मफ़ासिद जो उसके अंदर हैं उनको छोड़ दिया। अगर एक फ़ायदा है, तो मफ़ासिद कितने हैं। उन मफ़ासिद को भी तो देखना चाहिए।

और अव्वल तो जो फ़ायदा इस अमल में सोचा गया है वह भी हासिल नहीं होता। क्योंकि आजकल की शादियों में ख़र्च इतना किया जाता है कि न्योता (ब्योहारी लेन-देन) उसके लिए काफ़ी नहीं होता। (अत-तबलीग़, अहकामुल माल)

रस्मी लेन-देन से मुहब्बत नहीं होती : तहादी इलल-उरूस

(यानी शादी के मौक़े पर लड़का-लड़की को कुछ देना) यह सहाबा किराम (रज़ि०) से साबित है। और हर चन्द कि

تہادی الی العروس فی نفسہ

मूजिबे-ज़्यादती मुहब्बत (यानी मुहब्बत को बढ़ाने का ज़रिआ) है लेकिन रस्म के तरीक़े पर भेजना बुग्ज़ को बढ़ाता (और ताल्लुक़ात को ख़राब करता) है। हाँ, ख़ुलूस के साथ भेजने से मुहब्बत बढ़ती है जैसा कि दो दोस्त आपस में कभी-कभी हदिया

भेज दिया करें और फिर रस्म से मुहब्बत नहीं बढ़ती।

(ततहीर रमज़ान)

न्योता और ब्योहार की हक़ीक़त और उसकी मसलिहत

शादियों में कई मौक़े पर न्योता जमा होता है। सलामी के वक़्त बतौर न्योते के रुपये जमा करके दूल्हा को दिए जाते हैं।

न्योता की असल यह मालूम होती है कि पहले ज़माने में किसी ग़रीब आदमी को कोई तक़रीब पेश आई (यानी शादी करनी हुई) तो उसके अज़ीज़ों ने बतौर इम्दाद कुछ जमा करके दे दिया। चूंकि उस वक़्त इन उमूर में इस क़द्र तूल न था। थोड़े से सरमाए में सब ज़रूरी काम अंजाम पा जाते थे। न उसको बार होता था न देनेवालों पर गिरां गुज़रता था।

अगर बतौर तबर्रा व एहसान के देते थे तो उसका बदला नहीं चाहते थे। गो दूसरा शख़्स

هَلْ جَزَاءُ الْإِحْسَانِ إِلَّا الْإِحْسَانُ

(एहसान का बदला एहसान) के क़ायदे से उसकी ज़रूरत के वक़्त बग़ैर कमी व बेशी का लिहाज़ किए गुंजाइश के मुताबिक़ उसकी इआनत कर देता था।

और अगर बतौर क़र्ज़ के होता होगा तो उसको क़र्ज़ बतदरीज (आहिस्ता-आहिस्ता) अदा करना आसान होता था। वाक़ई उस वक़्त यह तदबीर निहायत मुफ़ीद थी और अब तो इसमें कोई मसलिहत नहीं रही। जिस तरह शादी में सर्फ़ होता है उसका जुज़्वे मोतदबा (क़ाबिले शुमार एक हिस्सा) भी न्योते में जमा नहीं होता। फिर नाहक़ मक़रूज़ बनने से क्या फ़ायदा। बेज़रूरत मक़रूज़ होना भी मना है। फिर गुंजाइश के वक़्त अदा नहीं कर सकते। जब दूसरे शख़्स के यहाँ कोई तक़रीब हो तब ही अदा करना मुम्किन है और अगर किसी की तक़रीब के वक़्त अपने पास गुंजाइश न हो तो बाज़ औक़ात सूदी क़र्ज़ लेकर देना

पड़ता है। यह भी गुनाह है। जिस दस्तूर में इतने गुनाह हों बेशक वह वाजिबुत्तर्क है। (इस्लाहुर्रुसूम)

न्योता लेने-देने का शरई हुक्म

न्योता क़र्ज़ है। पस वह अहकाम जो अक़्दे-क़र्ज़ पर ख़ुदा तआला ने मुरत्तब किए हैं उस पर आइद होंगे और वह यह कि बिला ज़रूरत क़र्ज़ न लिया जाए। यह न्योता कैसा क़र्ज़ है कि ज़रूरत का तो क्या ज़िक्र देने वाले का इख़्तियार से दिया जाता है (जिसका लेना गोया ज़रूरी होता है) और न लेने से बिरादरी बुरा मानती है। कहीं आपने ऐसा क़र्ज़ देखा है कि देनेवाला ज़बर्दस्ती थोप दे और दूसरा मक़रूज़ बन जाए? यह हुक्म तो लेने के वक़्त का है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

न्योता लेने-देने के बाद का शरई हुक्म

यह हुक्म तो लेने के वक़्त का है। देने के वक़्त के एहकाम सुनिए। क़ुरआन शरीफ़ में है—

وَإِنْ كَانَ ذُو عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ إِلَىٰ مَيْسَرَةٍ

यानी अगर मक़रूज़ तंगदस्त हो तो उसको मुहलत देनी चाहिए जब तक कि वह दे सके। लेकिन आपके इस क़र्ज़ की अदाएगी का वह वक़्त मुक़र्रर है कि (देनेवाले के यहाँ) शादी हो; ख़्वाह किसी के पास हो या न हो।

और एक हुक्म यह है कि मक़रूज़ जिस वक़्त अदा करना चाहे उस वक़्त अदा कर सकता है। अगर कोई एक मुद्दत का वादा भी करके क़र्ज़ ले और और उस मुद्दत में क़र्ज़ न दे पाए तो महाजन उसे छूट देता है और बाद में ले लेता है आपके इस न्योते को अगर कोई बिला तक़रीब के वापस करना चाहे तो नहीं वापस कर सकता। कैसा क़र्ज़ है? यह हक़ तआला के अहकाम में मुदाख़लत है। (मुनाज़िअ़तुल-मावा, मुल्हिक़ा हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

मुरव्वजह न्योता की हक़ीक़त महज़ क़र्ज़ है

लोग कहते हैं न्योता सुलूक है गोया सिलारहमी में दाख़िल करना चाहते हैं। याद रखिए कि यह क़र्ज़ है, क्योंकि सिलारहमी में बऐवज़ (यानी बदल) की क़ैद नहीं होती और इसमें यह क़ैद है। सराहतन हो या तआमलन, देख लीजिए न्योता ख़बर के साथ वुसूल किया जाता है।

एक साहब के यहाँ शादी हुई तो उसमें न्योता कम आया। उन्होंने निकाल कर देखा तो उसमें बहुत से आदमी न्योता देने से रह गए थे। शादी ख़त्म हो गई, मगर उन्होंने एक तनख़्वाहदार नौकर कई महीने तक तंख़्वाह देकर न्योता वुसूल करने के लिए मुक़र्रर किया। यह कैसा सिला रहम था जो इस तरह वसूल किया जाता है। ख़ूब समझ लीजिए कि यह सिर्फ़ तावील है। दरहक़ीक़त न्योता क़र्ज़ है उसको किसी और अक़द में दाख़िल करने की गुंजाइश नहीं। जब यह क़र्ज़ है तो इस पर क़र्ज़ के शरई अहकाम जारी होंगे। उन अहकाम में आपको कोई इख़्तियार नहीं कि कोई तग़य्युर व तबदीली कर सकें। जैसा कि हाकिमे-वक़्त किसी मामले को एक अक़द में दाख़िल करके उसके अहकाम जारी करता है तो वह जबरन तसलीम करने पड़ते हैं। उसमें आपको इख़्तियार नहीं होता कि उन एहकाम में अपनी तरफ़ से कुछ तर्मीम कर दें। जब दुनिया के बादशाह का एक मामले पर हुक्म मुरत्तब करना लाज़िम आ जाता है जिसमें अभी भी यह साबित नहीं हुआ कि यह अक़्लन सहीह है या नहीं तो ख़ुदा अह्कमुल हाकिमीन के क़रार दादे-एहकाम व मामलात क्यों लाज़िम न होंगे।

(मुनाज़िअ़तुल-मावा)

न्योता, ब्योहरी लेन-देन के मफ़ासिद

इसके अंदर बहुत मफ़ासिद हैं। चुनांचे उनमें से एक मुफ़्सिदा यह है कि जब लोग किसी के यहाँ न्योता देते हैं तो न्योता

लेनेवाला इतने लोगों का मक़रूज़ होता है। जबकि हदीस में साफ़ मौजूद है कि मक़रूज़ जन्नत में न जाएगा उस वक़्त तक कि पहले हक़दार का हक़ अदा न हो जाए। (अत-तबलीग़)

न्योता के क़र्ज़ में मीरास भी जारी होना चाहिए

एक और फ़साद इसमें बहुत बड़ा है और वह मुफ़्सिदा बिल्कुल लाइलाज ही है। उसका इलाज ही नहीं सिवाए इसके कि उस रस्म को छोड़ दिया जाए। वह यह कि जब न्योता क़र्ज़ हुआ तो क़र्ज़ में मीरास जारी होती है जैसा कि आपने देखा होगा कि औरत मर जाती है तो उसके वारिस ख़ाविंद पर नालिश करके महर का रुपया वसूल कर लेते हैं। तो न्योता में भी मीरास जारी होना चाहिए और शरई हिस्सा के मुवाफ़िक़ सब वारिसों को पहुँचना चाहिए। मगर इसका कोई एहतिमाम नहीं करता।

(मिसाल के तौर पर) एक शख़्स मर गया। उसने दो बेटे छोड़े और उसने मसलन पाँच रुपये न्योता में दिए थे तो वे पाँच रुपये भी मुर्दों की मीरास है। जब वुसूल होंगे तो उनका वरसा पर तक़सीम करना वाजिब होगा। अब वे रुपए वसूल किस तरह से होंगे? जब उनके यहाँ कोई शादी होगी तो वह बतौर न्योता के दिए जाएँगे। अब एक बेटे की शादी हुई और वे पाँच रुपये आए तो वे पूरे पाँच रुपये उसके नहीं बल्कि यह सिर्फ़ ढाई रुपये का मुस्तहिक़ है। और बाक़ी ढाई रुपया दूसरे भाई का हिस्सा है। लिहाज़ा वे उसको देने लाज़िम हैं, मगर वे उसको नहीं दिए जाते। इसलिए देनेवाले के ज़िम्मे से पाँचों रुपये अदा न हुए बल्कि सिर्फ़ ढाई रुपये अदा हुए। और दूसरे बेटे के ढाई रुपये रह गए, फिर वह मर गया तो अब ढाई रुपये की मीरास चलेगी। इसी तरह आगे औलाद होगी और यही सिलसिला चलेगा तो उस ढाई रुपये के हज़ारों आदमी मुस्तहिक़ बन गए। क़ियामत में उस शख़्स की जान पर बनेगी। इसलिए एक-एक पैसा और कौड़ी का दावा होगा

आख़िर उसका इलाज क्या सोचा है? यह मफ़ासिद हैं इस ख़बीस न्योते में, मगर चूंकि लोगों को शरीअत के इल्म नहीं, इसलिए इन ख़राबियों में मुब्तला होते हैं। (अत-तबलीग़)

दर हक़ीक़त यह मीरास के अहकाम को बदलना है, जिसकी निस्बत क़ुरआन शरीफ़ में इर्शाद है "फ़रीज़तुम मिनल्लाह" यानी मुहर्र अल्लाह तआला की मुक़र्रर करदा है। और आगे इर्शाद है "जो कोई अल्लाह व रसूल के हुक्म को मानेगा अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेंगे और जो न मानेगा उसको दोज़ख़ में डालेंगे।" इस आयत में अहकामे-मीरास में तश्दीद पैदा होता है। अब देखिए न्योता में क्या होता है। बहुत जगह अगर न्योता देनेवाला न्योता छोड़कर मर जाता है तो वह न्योता बड़े बेटे की शादी के वक़्त अदा किया जाता है। और वह उसको अपनी शादी के ख़र्च में ले लेता है। हालांकि ये सब वारिसों का हिस्सा है जो एक के ख़र्च में आ रहा है। उससे खाना खाया जाता है और सब बिरादरी खाती है। इसमें दूसरे वारिसों की हक़तलफ़ी हुई और उनकी बिला इजाज़त खाने वालों ने खाया। यह हक़्क़ुल अब्द हुआ और अगर उन वारिसों में कुछ नाबालिग़ बच्चे भी हैं तो उनका हिस्सा भी खाया, इस हक़्क़ुल अब्द होने के साथ इतना और इज़ाफ़ा है कि यतीमों का माल ज़ुल्मन खाया, जिसकी निस्बत क़ुरआन शरीफ़ में है—

إِنَّ الَّذِيْنَ يَأْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْيَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا يَاْكُلُوْنَ فِىْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا وَسَيَصْلَوْنَ سَعِيْرًا۔

तर्जमा : यानी वे लोग जो यतीमों का माल बिला किसी हक़ के खाते हैं वे अपने पेट आग से भरते हैं और अंक़रीब दोज़ख़ में जाएंगे।

क्या कोई मुसलमान इन वईदों को सुनने के बाद उसके जारी रखने की जुर्अत करेगा। दुनिया तो दरकिनार ये ऐसी वईदें हैं कि

इनके ख़ौफ़ की वजह से अपना आता हुआ भी वुसूल करना भूल जाए। ये हैं आपके न्योते के मुख़्तसर नताइज जिनमें सारी बिरादरीवाले गिरफ़्तार हैं। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

रस्मी लेन-देन न करने से ताल्लुक़ात की ख़राबी का शुब्हा

एक साहब ने रस्मी लेन-देन की बाबत अर्ज़ किया कि अगर यह बन्द कर दिया जाए तो मुग़ायरत (दूरी) पैदा हो जाएगी और ताल्लुक़ात ख़राब हो जाएँगे। फ़रमाया गया कि जो रस्मी लेन-देन होता है उसके आसार व नताइज से मालूम होता है कि मुहब्बत नहीं बढ़ाता बल्कि मुहब्बत कम करता है। जो लोग देते हैं अकसर दबाव में (और शर्मा हुज़ूरी में रिवाज की वजह से) देते हैं।

दूसरे यह कि मिलना-जुलना कम हो जाता है, क्योंकि जब तक पास न हो मिलने क्या जाएँ (उसी मौक़े पर) देना ज़रूरी समझते हैं, इसलिए इसको मौक़ूफ़ करना चाहिए।

(मल्फ़ूज़ाते अशर्फ़िया, हुस्नुल अज़ीज़)

लेन-देन का सहीह और मुनासिब तरीक़ा

और अगर किसी अज़ीज़ के साथ एहसान का सुलूक करना हो, कुछ देना हो तो अगर रस्म की सूरत से न हो तो मुज़ाइक़ा नहीं और तक़रीबात (शादी) के मौक़े पर न दे, वक़्त टाल कर दे, जबकि तवक़्क़ो भी न रहे। बिला तवक़्क़ो के अगर दो रुपये भी मिलते हैं तो बहुत ख़ुशी होती है और मुहब्बत बढ़ती है समीमे क़ल्ब (दिल की गहराई) मसर्रत होती है तबीअत अंदर से खिल जाती है और अगर रस्म के तौर पर दिया तो सिर्फ़ इंतिज़ार की तकलीफ़ कम हो गई, गोया अज़ाब से नजात हुई। दोज़ख़ से तो नजात हुई लेकिन जन्नत नहीं मिली (यानी बदनामी और मलामत का डर न रहा लेकिन ख़ुशी न हुई)। (मल्फ़ूज़ाते अशर्फ़िया)

(और अब न्योते की रस्म को बिल्कुल बन्द कर दिया जाए और जिसके ज़िम्मे अब तक बक़ाया है अपनी हयात में बिला

किसी तक़रीब के इंतिज़ार के अदा कर दिया जाए)।

शादी के मौक़े पर शादी का ख़र्च देने का हुक्म

शादी वग़ैरह के मौक़े पर जो दूल्हा की तरफ़ (या दुल्हनवालों की तरफ़) से ख़र्च दिया जाता है उसके मुताल्लिक़ एक बड़े आलिम ने एतिराज़ किया कि अगर तीबे ख़ातिर (दिली रज़ामंदी) से दिया जाए तो जायज़ है, उसमें क्या ख़राबी है जो लोगों को आमतौर पर मना किया जाता है।

जवाब में इर्शाद फ़रमाया कि इसी में तो कलाम है कि तीबे ख़ातिर होता है या नहीं? बदनामी के ख़्याल से दबाव में आकर देते हैं, अंदर से जी पर बार होता है, फिर तीबे ख़ातिर कहाँ रहा।

(दअ़वाते अब्दियत)

रुख़सती के मौक़े पर रस्मी तौर से शादी-ख़र्च देने का हुक्म

एक कोताही बाज़ इलाक़ों में यह है कि शौहर (लड़के-वालों से या लड़की-वालों से जैसा भी उर्फ़ हो) निकाह या रुख़सती के क़ब्ल कुछ रुपये इस ग़रज़ से ले लेते हैं कि शादी के मसारिफ़ (इख़्राजात) में ख़र्च करेंगे तो जान लें कि यह रिश्वत और हराम है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

रस्म व रिवाज के मुताबिक़ दिए हुए सामान का शरई हुक्म शरमा हुज़ूरी या दबाव व बदनामी के ख़ौफ़ से दिया हुआ माल हलाल नहीं।

बैहक़ी व दारे क़ुत्नी की हदीस है—

قَالَ رَسُوْلُ اللّٰهِ اَلَا لَا تَظْلِمُوْا اَلَا لَا يَحِلُّ مَالُ امْرِءٍ اِلَّا بِطِيْبِ نَفْسٍ مِّنْهُ

यानी हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि ख़बरदार हो जाओ, ज़ुल्म न करो! ख़बरदार किसी इंसान का माल उसकी दिली मर्ज़ी के बग़ैर हलाल नहीं।

बाज़ लोगों को इसमें यह ग़लतफ़हमी होती है कि कहते हैं कि हमारी क्या वजाहत और दबाव है, जो शख़्स देगा ख़ुशी से देगा। हालांकि मुशाहिदा इसकी तकज़ीब करता है। उसका हाल देनेवाले से मालूम हो सकता है। या कोई तीसरा आदमी जो उससे बेतकल्लुफ़ हो, उससे क़सम देकर पूछे कि तूने ख़ुशी से दिया है या नाख़ुशी से? बहुत आसानी से इसका फ़ैसला हो जाएगा और उसी से हुक्म मालूम हो जाएगा कि उन रक़ूम (नक़दी रक़म या दिए हुए सामान) का जो लड़कीवाले शादी के मौक़े पर लड़के वाले से (या लड़के वाले लड़की वाले से) फ़रमाइश करके लेते हैं। वो लोग ख़्वाह रस्म की पाबंदी से या मज्मे के शर्म से या मुस्हिक (मांगनेवाले) के लिहाज़ से देते हों, बाज़ लोग बिला तहरीक (बिला मांगे अज़ ख़ुद) देते हैं लेकिन देने की बिना वही रस्म है कि जानते हैं कि न देने से या तो माँगा जाएगा या बदनाम किया जाएगा। सो इस क़िस्म की रक़्में (और सामान) शरअन हलाल नहीं हुए। और इस तरह से मांगना और लेना दुरुस्त नहीं होता और ये रक़ूम (और सामान) सब वाजिबुर्रद्द हैं (यानी उनका वापस करना ज़रूरी है) शादी के मौक़े पर अगर किसी ने लड़की के एवज़ रुपया लिया तो हराम है; क्योंकि शरीअत ने बेटी की कोई क़ीमत नहीं रखी। (हुक़ूक़ुल इल्म, अत-तबलीग़)

बाब 14

बारात और शादी का बयान

बारात हिन्दुओं की ईजाद और उनकी रस्म है

असल में यह बारात वग़ैरह हिन्दुओं की ईजाद है कि पहले ज़माने में अमन न था। अकसर राहज़नों और क़ज़्ज़ाक़ों (डाकुओं) से दो-चार होना पड़ता था। इसलिए दूल्हा, दुल्हन और असबाब ज़ेवर वग़ैरह की हिफ़ाज़त के लिए एक जमाअत की ज़रूरत होती थी और हिफ़ाज़त की मसलिहत से बारात ले जाने की रस्म ईजाद हुई और इसी वजह से हर घर से एक आदमी लिया जाता था कि अगर इत्तफ़ाक़ से कोई बात पेश आ जाए तो एक घर में एक ही बेवा हो। लेकिन अब तो अमन का ज़माना है। अब इस जमाअत को ले जाने की क्या ज़रूरत रही। अब हिफ़ाज़त वग़ैरह तो कुछ मक़सूद नहीं, सिर्फ़ रस्म का पूरा करना और नामवरी मद्देनज़र होती है। (अज़्लुलं जाहिलिया)

बारात की क़तअन ज़रूरत नहीं

साहिबो! इन रस्मों ने मुसलमानों को तबाह कर डाला है। इसी लिए मैंने मंगनी का नाम क़ियामते सुग़रा और शादी (बारात) का नाम क़ियामते कुबरा रखा है। अब तो बारात भी शादी का रुक्ने आज़म समझा जाता है (और इसके बग़ैर शादी ही नहीं होती)। इसके लिए कभी दूल्हावाले कभी दुल्हनवाले, बड़े-बड़े इसरार और तकरार करते हैं और इससे ग़रज़ नामवरी (शोहरत) और तफ़ाख़ुर है। हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का रिश्ता किया और रिश्ता (तय करने) के वक़्त तो हज़रत अली (रज़ि०) मौजूद थे। लेकिन निकाह के वक़्त तो हज़रत अली (रज़ि०) ख़ुद भी मौजूद न थे। बल्कि मुअल्लिक़ निकाह हुआ था

कि 'इन रज़ी अली' यानी अगर अली (रज़ि०) रज़ामंदी ज़ाहिर करें। चुनांचे जब वह हाज़िर हुए तो उन्होंने कहा 'रज़ीतु' अब निकाह मुकम्मल हुआ।

मेरा यह मतलब नहीं की इस क़िस्से को सुनकर दूल्हा भाग जाया करें। शायद बाज़ लोग ऐसी समझ के भी हो सकते हैं। मतलब यह है कि बारात वग़ैरह के तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ुद नौशा के होने की ज़रूरत नहीं समझी फिर बारात का होना क्यों ज़रूरी समझा जाए।

(अग़्लुल जाहिलिया, इस्लाहिर्रुसूम)

बारात के चन्द मफ़ासिद

बारात नाइत्तफ़ाक़ी और ज़िल्लत का सबब है

इस बारात के लिए कभी दूल्हावाले कभी दुल्हनवाले बड़े-बड़े इसरार व तकरार करते हैं और इससे मक़सूद सिर्फ़ नामवरी और तफ़ाख़ुर है। अकसर इसमें ऐसा भी करते हैं कि बुलाए पचास और जा पहुँचे सौ। अव्वल तो बिना बुलाए इस तरह किसी के घर जाना हराम है।

हदीस शरीफ़ में है कि जो शख़्स दावत में बिना बुलाए जाए तो वह गया तो चोर होकर और निकला लुटेरा होकर यानी ऐसा गुनाह होता है जैसा चोरी और लूटमार।

फिर दूसरे शख़्स की इसमें बे-आबरूई भी हो जाती है। किसी को रुसवा करना यह दूसरा गुनाह होता है।

फिर इन उमूर की वजह से अकसर जानबीन में ऐसी ज़िद्दा-ज़िद्दी और बे-लुत्फ़ी (कुदूरत बल्कि बसा औक़ात रंजिश) होती है कि उम्र भर क़लूब में उसका असर बाक़ी रहता है। चूंकि नाइत्तफ़ाक़ी हराम है, इसलिए उसके असबाब भी हराम होंगे। इसलिए यह फ़ुज़ूल रस्म हरगिज़- हरगिज़ जायज़ नहीं।

(इस्लाहिर्रुसूम)

अब तो इन रस्मों की बदौलत बजाए मुहब्बत व उलफ़त के जो कि मेल-मिलाप से असली मक़सूद है अकसर रंज व तकरार और शिकायत की नौबत आ जाती है। पुराने कीनों का ताज़ा करना और साहिबे तक़रीब की ऐब-जोई और तज़लील के दरपे होना और इसी तरह की दूसरी ख़राबियाँ देखी जाती हैं। और चूंकि ऐसा लेना-देना, खाना-खिलाना, उर्फ़न लाज़िम हो गया है इसलिए कुछ फ़रहत व मसर्रत भी नहीं होती। न देने वाले की वह एक बेगार-सी उतारता है न लेनेवाले को कि वह अपना हक़ ज़रूरी या मुआवज़ा समझता है। फिर लुत्फ़ (व मुहब्बत) कहाँ। इसलिए इन तमाम ख़ुराफ़ात का हज़्फ़ करना वाजिब है।

(इस्लाहुर्रुसूम)

मैं बारात की रस्म को हराम समझता हूँ

ये ख़राबियाँ हैं बारात में जिनकी वजह से बारात को मना किया जाता है। और मैं जो पहले बारातों में जाया करता था, उस वक़्त तक मेरी समझ में ख़राबियाँ न आई थीं। अब मैं इन रस्मों को बिल्कुल हराम समझता हूँ और अगर तुम्हारी समझ में न आए तो दूसरे बाब की छटवीं फ़स्ल और इम्दादुल फ़तावा जिल्द नम्बर 5 देख लो, उसमें मैंने तफ़्सीली दलाइल लिख दिए हैं। ख़ुदा ने मेरे क़लम से बाज़ ख़राबियाँ ज़ाहिर करा दीं जो दूसरों ने ज़ाहिर नहीं कीं इसी लिए लोग मुझे सख़्त मशहूर करने लगे।

(अज़्लुल जाहिलिया, हुक़ूक़ुज़-ज़ौजेन)

ब्याह-शादी, बारात में अगर आमद व रफ़्त न हो तो मेल-जोल की क्या सूरत हो

बाज़ लोग कहते हैं कि अगर ये रुसूम (बारात वग़ैरह) मौक़ूफ़ हो जाएँ तो फिर मेल-मिलाप की कोई सूरत ही नहीं रह जाती। इसका जवाब यह है कि अव्वल तो मेल-मिलाप की मसलिहत से मआसी (गुनाहों) का इर्तिकाब किसी तरह जायज़ नहीं हो सकता।

फिर यह कि मेल-मिलाप इस पर मौक़ूफ़ भी नहीं कि बिला रुसूम (और बारात) के अगर एक-दूसरे के घंर जाएँ या उसको बुलाएँ। उसको खिलाएँ पिलाएँ कुछ इम्दाद व सुलूक करें जैसे यार-दोस्तों में राह व रस्म जारी हैं तो इसमें कोई पाबंदी नहीं है, यह मुम्किन है। (ईस्लाहूर्रुसूम)

बारात वग़ैरह तमाम रस्मों के नाजायज़ होने की शरई दलील

मेरे नज़दीक जो मज्मूई हैयत इस वक़्त तक़रीबात की हो रही है उसके हर जुज़्व की क़रीब-क़रीब इस्लाह ज़रूरी है। तमाम रुसूम में बजुज़ इत्तलाफ़े माल (माल को बर्बाद करने) और इरतिकाबे मआसी के, मसलन रिया, तफ़ाख़ुर, इसराफ़ और दूसरों के लिए मूजिबे तकलीफ़ हो जाना और मुक़्तदए-मआसी बन जाना। (इन रस्मों में) कोई दुनिया का भी मौतदबा (लायक़े एतिबार) नफ़ा नहीं, इसलिए मेरे नज़दीक इनकी क़बाहत बढ़ी हुई है। मेरे ख़्यालात का ख़ुलासा मुख़्तसर अल्फ़ाज़ में यह है कि हैयत मुतआरिफ़ह् (मुरव्वजह् तरीक़ा) के तमाम अजज़ा बदलने की ज़रूरत है। गो अकसर अजज़ा अगर इंफ़िरादी (अलाहिदा) नज़र से देखे जाएँ तो मुबाह निकलेंगे।

मगर यह क़ायद-ए-शरई भी है और अक़्ली भी कि जो मुबाह मासियत का ज़रिया और मुआविने जुर्म बन जाए वह भी मासियत और जुर्म हो जाता है। इन तक़रीबात की बदौलत क्या मुसलमान मक़रूज़ नहीं हो जाते? क्या महाजनों को सूद नहीं देते? क्या उनकी जायदाद मकान नीलाम नहीं हो जाते? क्या अहले तक़रीब की नीयत में इज़्हार व तफ़ाख़ुर व नुमाइश नहीं होता? अगर आम मज्मे में इज़्हार न हो तो क्या ख़ास मज्मे के ख़्याल से (कि घर पहुँचकर सब ज़ेवर व असबाब देखा जाएगा उसकी क़ीमत का अंदाज़ा किया जाएगा) सामान नहीं किया जाता? फिर इन रुसूम

में तसलसुल व तर्तीब कुछ इस क़िस्म का है कि एक को करके फिर सब ही को आहिस्ता-आहिस्ता करना पड़ता है। क्या इन क़ुयूद व पाबंदियों को क़ुयूदे शरईया से ज़्यादा ज़रूरी अमलन नहीं समझा जाता। नमाज़ या जमाअत फ़ौत हो जाने से कभी ऐसी शर्मिंदगी महसूस हुई है जैसी जहेज़ में चौकी-पलंग के न देने से होती है। गो उसकी ज़रूरत न हो। जहेज़ में ज़रूरी सामान का लिहाज़ (करने में) शरअन व अक़्लन मुज़ायक़ा न था, मगर बहुत यक़ीनी अम्र है कि ज़रूरियात की फ़ेहरिस्त हर जगह जुदा बनेगी, लेकिन जहेज़ की एक ही फ़ेहरिस्त हर जगह है। इससे मालूम होता है कि रिवाज की पाबंदी इसकी इल्लत है। ज़रूरत पर उसकी बुनियाद नहीं तो उसकी पाबंदी न अक़्लन जायज़, न शरअन दुरुस्त। पस जब इनमें इस क़द्र मफ़ासिद हैं तो अक़्ल या नक़्ल (शरई) कब इसकी इजाज़त दे सकती है। (इम्दादुल-फ़तावा)

साहिबे हैसियत मालदार के लिए भी बारात वग़ैरह की रस्में दुरुस्त नहीं

बाज़ लोग कहते हैं कि साहब। जिसको गुंजाइश हो वह करे, जिसको न हो वह न करे, इसका जवाब यह है कि अव्वल तो गुंजाइशवालों को भी गुनाह करना जायज़ नहीं। जब इन रस्मों का मासियत होना साबित हो गया फिर गुंजाइश से इजाज़त कब हो सकती है।

दूसरे यह कि जब गुंजाइशवाले करेंगे तो उनकी बिरादरी के ग़रीब आदमी भी अपनी इज़्ज़त व आबरू के लिए ज़रूर करेंगे। इसलिए ज़रूरी अम्र और मुक़्तज़ा यही है कि सब ही तर्क करें यानी छोड़ दें। (इस्लाहुर्रुसूम)

अगर यह कहा जाए कि किसी को अगर गुंजाइश हो तो दुनियवी मज़्कूरह मज़र्रतों से भी महफ़ूज़ रहे और नीयत की दुरुस्ती इख़्तियारी अम्र है। हम न उमूर को ज़रूरी समझते हैं, न

तफ़ाख़ुर और नुमाइश का हमको ख़्याल है। पस ऐसे शख़्स के लिए तो यह सब उमूर जायज़ होने चाहिएँ।

सो अव्वल तो ज़रा उसका तसलीम करना मुश्किल है। तजुर्बा उसको तसलीम न करने देगा, चाहे कैसा ही गुंजाइश वाला हो। कुछ न कुछ गिरानी उस पर ज़रूर होगी और नीयत में भी फ़साद ज़रूर होता है। लेकिन इसमें मुनाज़अत व मज़ाहमत न की जाए तो सौ में एक-दो शख़्स ऐसे मुश्किल से निकल सकते हैं।

जब यह हालत है तो यह क़ायदा सुनने के क़ाबिल है कि किसी शख़्स के मुबाह फ़ेल से, जो हद दर्जा ज़रूरत से ऊपर न हो (यानी वाजिब न हो) और दूसरे शख़्स को ज़रर पहुंचने का ग़ालिब गुमान या यक़ीन हो तो वह फ़ेल उसके हक़ में भी मुबाह नहीं रहता। तो इस क़ायदे से ये आमाल व अफ़आल उस महफ़ूज़ शख़्स के हक़ में भी, इस वजह से कि दूसरे लोग तक़लीद करके ख़राब होंगे, नाजायज़ हो जाएंगे।

क़ौमी हमदर्दी का तक़ाज़ा

इस शरई क़ायदे का हासिल वह है जिसको अक़्ली क़ानून में क़ौमी हमदर्दी कहते हैं। यानी हमदर्दी का मुक़्तज़ा यह है कि जहाँ तक मुमकिन हो दूसरों को नफ़ा पहुँचाए, अगर यह भी न हो तो दूसरों को नुक़सान तो न पहुँचाए।

क्या कोई बाप जिसके बच्चे को हलवा नुक़सान करता हो उसके सामने बैठकर हलवा खाना महज़ मज़े के लिए पसंद करेगा? क्या उसको ख़याल न होगा कि मेरी हिर्स से शायद बच्चा भी खाए और बीमारी बढ़ जाए? क्या मुसलमान की हमदर्दी इसी तरह ज़रूरी नहीं? इससे अक़्लन व नक़्लन बात समझ में आ गई होगी कि किसी के लिए भी इन रुसूम की इजाज़त नहीं।

(इम्दादुल-फ़तावा)

चूंकि इन ख़राबियों की बुराई बदीही है, इसलिए ज़्यादा

दलाइल क़ायम करने की हाजत नहीं। पस मुसलमानों को फ़र्ज़ व वाजिब और ईमान व अक़्ल का मुक़्तज़ा यह है कि इन ख़राबियों की बुराई जब अक़्लन व नक़्लन साबित हो गई तो हिम्मत करके सब ख़ैरबाद कहे और नाम व बदनामी पर नज़र न करे बल्कि तजुर्बा शाहिद है कि अल्लाह तआला की इताअत में इज़्ज़त व नेकनामी होती है। (इस्लाहुर्रुसूम)

बारात मज्मूअ-ए-मासियत है

जो रुसूम शरीअत के ख़िलाफ़ अकसर शादियों में हुआ करती हैं उन्हीं से वह मज्मूअ-ए-मासियत का मजमूआ हो जाता है। वहीं न बैठे और रुसूम तो अलग हैं आजकल ख़ुद बारात ही मज्मूअ-ए-मासियत है। अगर कोई ख़राबी न हो तो यह ख़राबी तो ज़रूर ही बारातों में होती है (उमूमन) बाराती मिक़दार दावत से ज़ायद हो जाते हैं जिसकी वजह से बेचारे मेज़बान को सख़्त दिक़्क़त का सामना करना पड़ता है। कहीं क़र्ज़ लेता है, कहीं और कुछ फ़िक्र करता है। ग़रज़ बहुत ख़राबी होती है।

(हुक़ूक़ व फ़राइज़)

शादी में लड़कीवालों के यहाँ मज्मा

फ़रमाया कि भाई मुंशी अकबर अली साहब की एक लड़की की शादी में मैं इसलिए शरीक नहीं हुआ था कि उसके घरवालों ने मज्मा का एहतिमाम किया था। उन्होंने फिर मुझसे कहा कि हम मज्मा न करेंगे। मैंने कहा कि इसमें तुम्हारी अहानत होगी और उनकी दिल शिकनी होगी, क्योंकि पहले उनको मेहमान बना लिया। उन्होंने ग़ायते ख़ुशफ़हमी से मेरी अदम शिरकत मंज़ूर कर ली और कहा कि तुम साहिबे मंसब हो, तुम्हारे मुताल्लिक़ दीन का काम है। मैं दीन में ख़लल नहीं डालना चाहता।

(हुस्नुल-अज़ीज़)

आजकल हत्तल-इम्कान शादी में शिरकत से बचना ही बेहतर है

तक़रीबात (शादियों) में अगर और कोई रस्म न भी हो तब भी यह तो ज़रूर है कि जिसका खाओ उसको खिलाना भी पड़ेगा और यही जड़ है तमाम रस्मों की। इसलिए इसका टाल देना बेहतर है, जहाँ तक हो सके टाल ही दो। मगर दिल शिकनी किसी की मुनासिब नहीं, लताफ़त से कोई हीला कर देना चाहिए। और किसी अज़ीज़ के साथ एहसान करना हो और रस्म की सूरत से न हो तो इसका मुज़ायक़ा नहीं, लेकिन इसके लिए ख़ुद जाने की क्या ज़रूरत है, यहाँ से भी तो भेज सकते हो। (बाद में भी दे सकते हो)। (मल्फ़ूज़ात अशर्फ़िया)

शरई दलील

एक हदीस में शिरकत करनेवालों के लिए भी साफ़ मुमानिअत वारिद हुई है। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने ऐसे दो शख़्सों का खाना खाने से मना किया है जो बाहम फ़ख़्र के लिए खाना खिलाते हों और ज़ाहिर है कि मुमानिअत की इल्लत फ़ख़्र और रिया के सिवा कुछ नहीं।

तो ऐसी तक़रीबात (शादियों) की शिरकत इसलिए सराहतन ममनूअ़ हो गई जिनमें दावत वग़ैरह से फ़ख़्र व रिया का क़सद हो। (असबाबुल-ग़ाफ़िला, दीन व दुनिया)

मुक्तदा और उलमा को चाहिए कि रुसूम व रिवाज वाली शादी में शिरकत न करें

फ़रमाया कि मेरी अल्लाती हमशीरह की जो शादी हुई थी उसमें सब मुरव्वजह रुसूम हुई थीं। उसका क़िस्सा यह है कि उसकी वालिदा को औरतों ने बहकाया और यह कहा कि तुम्हारी एक ही तो बच्ची है, दिल खोलकर शादी करनी चाहिए। अगर यह

अंदेशा है कि वह यानी मैं शादी में शिरकत न करूंगा तो निकाह में तो शिरकत हो ही जाएगी और जिन रस्मों को बुरा कहेंगे उसमें शिरकत न करेंगे। निकाह तो सुन्नत है उसमें तो ज़रूर ही शरीक होंगे। वालिदा बेचारी बहकावे में आ गईं। बारात आने का दिन जुमा का दिन था। मैंने जुमा की नमाज़ जामा मस्जिद में पढ़ी और बाहर ही बाहर बहली (गाड़ी) में बैठकर भिंयानी पहुँच गया। यहाँ पर किसी से ज़िक्र नहीं किया। हत्ताकि घरवालों तक को भी ख़बर न की। जब मग़्रिब के बाद का वक़्त हुआ तब निकाह पढ़ाने के लिए तलाश हुई। मैं न मिला, सुबह को वहीं पर रहा। सुबह देर करके चला। इस ख़्याल से कि एक बुराई की भी सूरत न देखूँ।

फिर तो मेरी शिरकत न करने की वजह से सारे ख़ानदान ने तौबा की और कहा कि बुरी वाहियात (हरकत) हुई। अब कभी ऐसा न करेंगे, जब से अल्लाह का फ़ज़्ल है ख़ानदान में कभी कोई रस्म नहीं हुई। (अल-इफ़ाज़ातुल-यौवमिया)

बाब 15

शादियों के बाज़ मुंकिरात व मुहरिमात

शादी के मौक़े पर नोटों के गिराने और नाचने व गाने की रस्म

शादियों पर दो तरह के नाच होते हैं— एक तो रंडी वग़ैरह का नाच दूसरा वह नाच जो ख़ास औरतों की महफ़िल में होता है। ये दोनों नाच हराम और नाजायज़ हैं।

रंडी के नाच में जो गुनाह और ख़राबियाँ हैं, उनको सब जानते हैं कि नामहरम औरत को सब मर्द देखते हैं यह आँख का ज़िना है। उसके बोलने और गाने की आवाज़ सुनते हैं, यह कान का ज़िना है। उससे बातें करते हैं, यह ज़बान का ज़िना है, उसकी तरफ़ दिल को रग़बत होती है, यह दिल का ज़िना है। जो ज़्यादा बे-हया हैं उसको हाथ भी लगाते हैं, यह हाथ का ज़िना है। उसकी तरफ़ चल कर जाते हैं, यह पाँव का ज़िना है। हदीस में है कि जिस तरह बदकारी ज़िना है इसी तरह आँख से देखना, कान से सुनना, पाँव से चलना वग़ैरह इन सब बातों से ज़िना का गुनाह होता है। फिर गुनाह को खुल्लम-खुल्ला करना शरीअत में और भी बुरा है।

हदीस शरीफ़ में यह मज़्मून आया है कि जब किसी क़ौम में बे-हयाई और फ़हाशी इतनी फैल जाए कि लोग खुल्लम-खुल्ला करने लगें तो ज़रूर उनमें ताऊन और ऐसी बीमारियाँ फैल पड़ती हैं जो उनके बुज़ुर्गों में (यानी पहले) कभी नहीं हुईं।

अब रह गया वह नाच जो औरतों में होता है। इसमें औरत नाचती है और कूल्हे वग़ैरह मटका-चमका कर तमाशा करती है।

बाज़ औरतें उस नाचने वाली औरत के सर पर टोपी रख देती हैं। यह सब हर तरह नाजायज़ है। ख़्वाह इसमें किसी क़िस्म का ढोल बाजा वग़ैरह हो या न हो किताबों में बन्दरों तक के तमाशों को मना लिखा है, तो आदमियों को नचाना क्यों बुरा न होगा? फिर कभी घर के मर्दों की भी नज़र पड़ती है और कभी यह नाचनेवाली गाती भी है, तो जो औरत इस गुनाह का ज़रिया बनी वह भी गुनाहगार होगी और चूंकि अकसर गानेवाली जो इन ख़ुश-आवाज़ इश्क़िया मज़्मून याद रखनेवाली तलाश की जाती है और अकसर उसकी आवाज़ ग़ैर मर्दों के कान में पहुंचती है, उसका सबब औरतें ही होती हैं।

और कभी-कभी ऐसे मज़्मूनों के अश्आर से बाज़ औरतों के दिल भी ख़राब हो जाते हैं। बाज़ दफ़ा उनके शौहर या दूल्हा की तबीअत नाचने वाली पर आ जाती है और अपनी बीवी से दिल हट जाता है। फिर यह सारी उम्र रोती फिरती हैं।

फिर रात-रात भर शग़ल रहता है। बहुत औरतों की सुबह की नमाज़ें ग़ारत हो जाती हैं, इसलिए यह भी मना है। ग़र्ज़ यह कि हर क़िस्म का नाच और राग-बाजा, जो आजकल हुआ करता है, सब गुनाह है। (बहिश्ती ज़ेवर)

अतिशबाज़ी, शादी में अनार, पटाख़े और आतिशबाज़ी करने में कई गुनाह हैं। अव्वल तो यह कि पैसा फ़ुज़ूल बर्बाद जाता है। क़ुरआन शरीफ़ में माल उड़ानेवालों (यानी बर्बाद करनेवाले) को शैतान का भाई फ़रमाया है।

और एक आयत में फ़रमाया है कि फ़ुज़ूल माल उड़ानेवालों को अल्लाह तआला नहीं चाहते। यानी उनसे बेज़ार हैं, दूसरे हाथ-पाँव के जलने का अंदेशा या मकान में आग लग जाने का ख़ौफ़ होता है और अपनी जान या माल को ऐसी हलाकत और ख़तरे में डालना ख़ुद शरीअत में बुरा है।

तीसरे अकसर लिखे हुए काग़ज़ आतिशबाज़ी के काम में लाए जाते हैं। ख़ुद हुरूफ़ भी अदब की चीज़ है। इस तरह के कामों में उनको लाना मना है। बल्कि बाज़ काग़ज़ों पर क़ुरआन की आयतें या हदीसें या नबियों के नाम लिखे होते हैं। बतलाओ तो सही उनके साथ बे-अदबी करने का कितना बड़ा वबाल है।

(बहिश्ती ज़ेवर)

ब्याह-शादी में फ़ोटो खींचना और उसकी फ़िल्म तैयार करना

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि रहमत के फ़रिश्ते दाख़िल नहीं होते उस घर में जिसमें कुत्ता या तसवीर हो।

और फ़रमाया नबी (सल्ल०) ने कि सबसे ज़्यादा अज़ाब अल्लाह तआला के नज़दीक तस्वीर बनानेवाले को होगा।

हदीसों में तस्वीर बनाना, तस्वीर रखना सबका हराम होना मालूम होता है इसी लिए इन बातों से बहुत बचना चाहिए।

(बहिश्ती ज़ेवर)

हदीस सहीहा की रू से तस्वीर बनाना, रखना सब हराम है और उसको ज़ायल करना मिटाना और ख़त्म करना वाजिब है। इसलिए कि ये मामलात सख़्त गुनाह हैं। तस्वीर बनाने की नौकरी करना जायज़ नहीं। (इम्दादुल-फ़तावा)

अलग़रज़ शरीअते इस्लामिया में जानदार की तस्वीर बनाना मुतलक़न मासियत (गुनाह) है ख़्वाह किसी की तस्वीर हो और ख़्वाह मुजस्समा हो या ग़ैर मुजस्समा और आइने पर क़यास करके उसको जायज़ कहना कि फ़ोटो आइने का अक्स है लिहाज़ा जिस तरह आइना देखना जायज़ है। यह भी जायज़ है यह क़ौल बिल्कुल ग़लत है और क़यास मअल फ़ारिक़ है। आइने के अंदर कोई इंतिक़ाश (पाएदारी) बाक़ी नहीं रहती। ज़वाल मुहाज़ी (यानी तक़ाबिल के इज़ाला) के बाद वह अक्स भी ज़ायल हो जाता है।

बख़िलाफ़ फ़ोटो के और यह बिल्कुल ज़ाहिर है और फिर सनअत के वास्ते से है इसी लिए (हुक्म में) बिल्कुल दस्ती तसवीर के मिस्ल है। (इम्दादुल-फ़तावा)

निकाह की फ़िल्म बनवाना

अफ़सोस! अब तो ऐसे रंज व ग़म का वक़्त है कि किस-किस चीज़ को रोया जाए। ख़ुसूसन जबकि अपने भाइयों के हांथों ग़म का सामान जमा हो।

फ़िल्म कम्पनी का आला लह्व व लअब से होना तो ज़ाहिर है और आलात लह्व को मक़ासिद दीनिया में बरतना दीन की सख़्त अहानत और इस्तिख़फ़ाफ़ (हल्का समझना है) हदीस पाक में जारहिया मग़न्निया (एक गाने वाली लड़की) का यह कहना

وَفِينَا نَبِيٌّ يَعْلَمُ مَا فِي غَدٍ

ममनूअ़ क़रार दिया गया है। चुनांचे बाज़ शराह ने यह वजह भी लिखी है। गो इसमें दूसरा भी एहतिमाल है मगर इस तौजीह पर भी किसी ने नकीर नहीं की तो इस वजह के मुअस्सिर होने पर (यानी उसके ममनूअ़ होने पर) इज्माअ़ हो गया है। गो इस महल में मुस्तहिक़ न हो।

इसमें तस्वीरों का इस्तेमाल होता है और उनसे तलज़्ज़ुज़ (लज़्ज़त हासिल करना) होता है और उसकी क़बाहत (व मुमानिअत) में किसी को कलाम नहीं। गो कि आबिदीन (और अच्छे ही लोगों) की तसवीरें हों। हुज़ूर अक़दस (सल्ल०) ने हज़रत इब्राहीम व इस्माईल अलैहिस्सलाम की तसवीरें जो बैतुल्लाह के अंदर बनाई गई थीं, उनके साथ जो मामला फ़रमाया मालूम है (कि सबको नीस्तो नाबूद करके मिटा दिया)। (इम्दादुल-फ़तावा)

और किसी मुसलमान की तस्वीर बनाना और ज़्यादा मासियत है कि इसमें ऐसे शख़्स को आल-ए-मासियत बनाना है जो इसको एतिक़ादन क़बीह जानता है।

(इसकी हुरमत में तो कई शुबहा नहीं) अगरचे उस तसवीर की तरफ़ कोई मकरूह भी मंसूब न किया गया हो, महज़ तफ़रीह व तलज़्ज़ुज़ ही के लिए हो क्योंकि मुहर्रिमात शरिअ से नज़र के ज़रिए से तलज़्ज़ुज़ करना भी हराम है।

और अगर उस तस्वीर की तरफ़ किसी नक़्स या ऐब को भी मंसूब किया जाए तो उसमें एक दूसरी मासियत यानी ग़ीबत भी शामिल होगी क्योंकि ग़ीबत नक़ूश व फ़िल्म यानी किताबत से भी होती है। इसी तरह उस ऐब की हैयत बनाने से भी होती है क्योंकि यह सबसे अशद्द है।

उस तस्वीर की कोई ख़ास हैयत बनाना ऐसा ही है जैसा ख़ुद उस शख़्स की तरफ़ वस्फ़ को मंसूब करना। मसलन मुहज़्ज़िरात (औरतों) की तसवीरें बेपरदा ज़ाहिर करना, और अगर वह तस्वीर किसी मुश्तहा (जवान औरत) की हो तो नज़र-बद की मासियत का उसमें इज़ाफ़ा हो जाता है और तस्वीर तो साहिबे तस्वीर की पूरी हिकायत है। अजनबिया (औरत) के कपड़े तक बदनफ़्सी से देखना भी हराम है।

बिलख़ुसूस अगर ग़ैर मुस्लिमों को ख़वातीन की तरफ़ बदनफ़्सी के साथ नज़र करने का मौक़ा दिया जाए (तो यह और ज़्यादा हराम है)।

और अगर इसमें मुआज़िफ़ व मज़ामीर (बाजे) या अजनबिया औरत के गाने की आवाज़ है तो उसका सुनना भी हराम है। जब ऐसी फ़िल्मों की क़बाहतें मालूम हो गईं तो मुसलमानों पर वाजिब है कि अपनी क़ुदरत के मुताबिक़ उनके बन्द करने की कोशिश करें और तमाशा देखनेवालों को इन बुराइयों से मुत्तला करके शिरकत से रोकें। वरना अंदेशा है कि सब अज़ाबे ख़ुदावंदी में गिरफ़्तार हों। (इम्दादुल-फ़तावा)

शादियों में ताशा और दफ़ बजाना

मुझको भी तहक़्क़ुक़ के साथ इस मस्अले की तहक़ीक़ का इत्तफ़ाक़ नहीं हुआ था। इसलिए क़ौले मशहूर की बिना पर जो मज़्कूर अलल्लिसानुल जमहूर है, यह समझता था कि शादी में दफ़ बजाना जायज़ है, दूसरे बाजे नाजायज़। मगर थोड़ा ज़माना हुआ एक मज़्मून शाए हुआ है, नज़र से गुज़रा तब से मुतआरिफ़ ज़र्ब के जवाज़ में भी शुब्हा हो गया और एहतियातन तर्क और मना का अज़्म कर लिया, तफ़्सील के लिए मुलाहिज़ा हो।

(इम्दादुल-फ़तावा)

शादियों में गीत गाने की रस्म

अकसर लोग यह सुनकर या समझकर कि शादी में गीत दुरुस्त है, बे-धड़क डुंमरियाँ गवाते हैं। यह बताओ कि उनकी आवाज़ अजनबी मर्दों के कानो में पहुँचती है या नहीं? और महरम औरतों की आवाज़ किसी अजनबी मर्द के कानों में जाना और इस तरह से कि सुनने से ख़राबी पैदा हो हराम है या नहीं?

फिर उस राग में यह भी ख़ासियत है कि जो सिफ़ात क़ल्ब में ग़ालिब होते हैं उनमें और ज़ोर हो जाता है। तो बताओ कि हम लोगों के क़ल्ब में सिफ़ाते-ख़बीसा का ग़ल्बा है या नहीं? और सिफ़ाते-ख़बीसा को क़ुव्वत देना हराम है या नहीं? फिर यह कि आधी-आधी बल्कि पूरी रात कहीं ढोलक भी बजती है जिससे पासवालों की अमूमन नींद ज़ाया होती है और सुबह होते ही सब मुर्दा की तरह पड़-पड़कर सोते हैं। सुबह की नमाज़ें उनकी क़ज़ा होती हैं या नहीं? और नमाज़ का क़ज़ा करना और जिस शक्ल की वजह से नमाज़ क़ज़ा हो वह शग़ल हराम है या नहीं?

और कहीं-कहीं गीत के मज़ामीन भी ख़िलाफ़े शरअ़ होते हैं। उनके गाने और सुनने से गुनाह होता है। अब बताओ इस तरह का गीत गाना और गवाना हराम है या नहीं? फिर जब वह हराम

हुआ तो उसकी उजरत देना-दिलाना किस तरह जायज़ होगा? और वह उजरत भी किस तरह कि घरवाला तो इसलिए देता है कि उसने बुलाया है और उसके यहाँ तक़रीब है। आनेवालों की कम्बख़्ती है कि उनसे भी जबरन वुसूल किया जाता है और जो न दे उसकी तज़्लील व तहक़ीर व तान व तश्नीअ़ की जाती है। ऐसे गाने और ऐसे हक़ को क्योंकर हराम न कहा जाए।

गाने बाजे की फ़रमाइश

बाज़ लोग जो शादी के मौक़े पर इसका सामान (और इंतिज़ाम) करते हैं या दूसरी तरफ़वालों पर तक़ाज़ा करते हैं ये लोग किस क़दर गुनाहगार होते हैं। बल्कि महज़ करनेवाला जितने आदमियों को गुनाह की तरफ़ बुलाता है, जिस क़दर अलग-अलग सबको गुनाह होता है वह सब मिलाकर उस अकेले को इतना ही गुनाह होगा। मसलन फ़र्ज़ करो कि मज्लिस में सौ आदमी आए तो जितना हर-हर आदमी को हुआ वह सब उस अकेले शख़्स को हुआ। यानी मज्लिस करनेवाले को पूरे सौ आदमियों का गुनाह हुआ बल्कि उसी की देखा-देखी जो कोई जब कभी ऐसा जलसा करेगा (यानी नाच-गाना कराएगा) उसका गुनाह भी उसको होगा बल्कि उसके मरने के बाद जब तक उसका बुनियाद डाला हुआ सिलसिला चलेगा उस वक़्त तक बराबर उसके नाम-ए-आमाल में गुनाह बढ़ता रहेगा।

फिर उस मज्लिस में बाजा-गाजा भी बे-धड़क बजाया जाता है। यह भी गुनाह है। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुझको मेरे परवरदिगार ने इन बाजों को मिटाने का हुक्म दिया है। ख़्याल करने की बात है कि जिसके मिटाने के लिए हुज़ूर (सल्ल०) तशरीफ़ लाए उसको रौनक़ देनेवाले के गुनाह का क्या ठिकाना।

(इस्लाहुर्रुसूम, बहिश्ती ज़ेवर)

शादियों में बैंड बाजे बजाने की रस्म

किस क़दर अफ़सोस और हसरत का मक़ाम है कि हुज़ूर (सल्ल०) तो फ़रमाएँ कि ख़ुदा ने मुझे हिदायत के वास्ते रसूल बनाया और हुक्म दिया कि तमाम दुनिया से राग और बाजा मिटा दूँ। (अबू-दाऊद)

और यह भी फ़रमाया कि मेरी उम्मत से एक क़ौम के लोग आख़िर ज़माने में मस्ख़ होकर सुअर-बंदर हो जाएँगे। सहाबा (रज़ि०) ने पूछा कि वे लोग मुसलमान होंगे? या कौन? हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि हाँ, ये सब मुसलमान होंगे, ख़ुदा की वह्दानियत और मेरी रिसालत के शाहिद होंगे और रोज़ा भी रखते होंगे मगर आलाते लह्व यानी बाजा वग़ैरह बजाएँगे और गाना सुनेंगे और शराब पिएँगे तो मस्ख़ कर दिए जाएँगे।

(इम्दादुल-फ़तावा)

अगर लड़की या लड़केवाले मानने को तैयार न हों

बाज़ लोग कहते हैं कि लड़कीवाला नहीं मानता, बहुत मजबूर करता है। उनसे पूछना चाहिए कि लड़कीवाला अगर यह ज़ोर डाले कि साड़ी पहन कर तुम ख़ुद नाचो तो क्या लड़की लेने के वास्ते तुम ख़ुद नाचोगे? या गुस्से से दरहम-बरहम होकर मरने-मारने को तैयार हो जाओगे और लड़की न मिलने की कुछ परवाह न करोगे।

पस मुसलमानों का फ़र्ज़ है कि शरीअत ने जिसको हराम किया है उससे उतनी ही नफ़रत होनी चाहिए जितनी अपनी तबीअत के ख़िलाफ़ कामों में होती है। तो जैसे इसमें शादी होने की कुछ परवाह नहीं होती इसी तरह ख़िलाफ़े शरअ़ कामों में साफ़ जवाब दे देना चाहिए कि चाहे शादी करो चाहे न करो, हम हरगिज़ नाच न होने देंगे। इसी तरह ऐसी शादी में शरीक नहीं होना चाहिए, न देखना चाहिए। (बहिश्ती ज़ेवर)

बाब 16

फ़स्ल (1)

शादी की रस्मों का बयान

रस्म व रिवाज की तारीफ़

रस्म सिर्फ़ इस बात को नहीं कहते जो निकाह और तक़रीबात में की जाती है। बल्कि हर ग़ैर लाज़िम चीज़ को लाज़िम कर लेने का नाम रस्म है। ख़्वाह तक़रीबात में हो या रोज़-मर्रा के मामूलात में। (कमालात अशर्फ़िया, इस्लाहुल-मुस्लिमीन)

रस्म व ग़ैर-रस्म का मेयार

जब न रस्म की नीयत हो और न रस्म वालों के तरीक़े पर करें तो वह रस्म नहीं, न हक़ीक़तन, न सूरे, यही मेयारे फ़र्क़ है। (इम्दादुल-फ़तावा)

रस्मों की दो क़िस्में

रस्में दो क़िस्म की हैं। एक तो शिर्क व बिद्अत की रस्में। मसलन चटाई पर बहू को बिठाना, उसकी गोद में बच्चा देना कि इससे शगुन (नेक फ़ाली) लेते हैं कि औलाद हो, तो ऐसे टोने-टोटके तो अकसर जगह छूट गए।

दूसरी तफ़ाख़ुर और नामवरी की रस्में सो यह दूसरी क़िस्म मतरूक नहीं हुई बल्कि मालदारी के सबब से ये निस्बत से पहले कुछ बढ़ गई है। पहले ज़माने में इतना तफ़ाख़ुर और रिया (दिखलावा) न था। क्योंकि कुछ सामान कम था, कुछ तबीअतों में सादगी भी थी। अब तो खाने में अलग तफ़ाख़ुर है, वह पहली-सी सादगी ही नहीं रही। पुलाओ भी, कबाब भी हो, फ़िरनी, बिरयानी भी हो। (इस्लाहुन-निसा)

मुझसे एक शख़्स ने कहा कि ख़ुदा का शुक्र है कि इस ज़माने में पहली की सी रस्में बहुत कम हो गई हैं। मैंने कहा, हरगिज़ नहीं। बात यह है कि रस्में दो क़िस्म की हैं, एक वह जो शिर्क तक पहुँची हैं। वे अलबत्ता छूट गईं, दूसरी वे हैं जिनकी अस्ल तफ़ाख़ुर है। ये पहले से भी बढ़ गईं। पहले शिर्क की अजीब-अजीब रस्में थीं।

पहले की रस्मों और आजकल की रस्मों में फ़र्क़

मैं कहता हूँ कि (पहले) रस्में बिल्कुल लग्व थीं मगर यह ज़रूर था कि बहुत-से समझदार करने वाले भी उनको लग्व समझते थे। अगरचे करते सब थे और आजकल की जो रस्में हैं उनको दानिशमंद लोग भी यह नहीं समझते हैं कि यह गुनाह है और वे रस्में आजकल की तफ़ाख़ुर और तकल्लुफ़ की हैं। पहले लोग मोटा-छोटा पहन लेते थे। बासी-ताज़ा खा लेते थे। और आजकल कोई अदना आदमी भी ग़रीबाना मईशत को पसंद नहीं करता। अपने हाथ से काम करने को ऐब समझते हैं। बोल-चाल में और उठने-बैठने में सबसे तकब्बुर और तकल्लुफ़ भरा हुआ है। गोया हर वक़्त किसी न किसी रस्म के पाबंद हैं।

और तकल्लुफ़ में गुनाह के अलावा एक दुनयवी ख़राबी यह भी है कि कोई शख़्स बनावट करनेवाले की बात पर एतिक़ाद नहीं करता इस ख़ौफ़ से कि शायद यह बात भी बनावटी हो। इसी वास्ते पहले लोगों की बात बड़ी पक्की होती थी। आजकल के लोगों की बात ऐसी नहीं पाई जाती।

ग़रज़ शिर्क की रस्में तो छूट गईं, क्योंकि इल्म फैल गया है। पहले मौलवी कम होते थे और तफ़ाख़ुर की रस्में बढ़ गईं क्योंकि तालीमे जदीद की तरक़्क़ी है तो आजकल की रस्मों में शिर्क न सही तफ़ाख़ुर तो ज़रूर है, यह भी मना होने के लिए क्या कुछ कम है। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

रुसूम रिवाज भी गुनाह में दाख़िल हैं

बहुत-से गुनाह ऐसे हैं कि जिनकी तरफ़ आजकल ख़्याल भी नहीं जाता। बल्कि छोड़ने से जी बुरा होता है और यूँ तो गुनाह सब ही बड़े हैं, लेकिन ऐसे गुनाह ज़्यादा ख़तरनाक हैं जो अमूमन आदत और रिवाज में दाख़िल हो गए हों; क्योंकि तबीअतें उनसे मानूस हो गई हैं। हत्ताकि उनकी बुराई ज़ेहन से दूर हो गई है। उनके छूटने की क्या उम्मीद हो सकती है। आदमी छोड़ता है उस चीज़ को जिसकी बुराई ख़्याल में हो। और जिस चीज़ की बुराई ज़ेहन से निकल जाती है फिर उसको क्यों छोड़ने लगा।

यह वह हालत है जिसको मौते क़ल्ब कहते हैं। उसके बाद तौबा की भी क्या उम्मीद है क्योंकि तौबा की हक़ीक़त है नदामत यानी पशेमानी। और पशेमानी उस काम से हुआ करती है जिसकी बुराई ज़ेहन में हो और जब गुनाह दिल में ऐसा रच गया कि उस पर फ़ख़्र करते हैं तो फिर पशेमानी कहाँ। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

इन (रुसूम) ने ऐसा रिवाज पाया है जैसा सालन में हल्दी, मसाला, नमक, मिर्च उनके बग़ैर सालन बनता ही नहीं। हत्ताकि जो लोग मिर्च ज़्यादा खाते हैं उनसे कोई माहिर तबीब भी कहे कि मिर्च में यह नुक़सान है तो भी उनका दिल क़बूल न करेगा और यही जवाब देंगे कि मियाँ तिब्ब को रहने दो तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है सारी उम्र खाते हो गई कोई भी नुकसान नहीं हुआ और बे-मिर्च के लुत्फ़ ही क्या।

इसी तरह मुसलमान ग़ैर क़ौमों की सुहबत से रस्मों के ऐसे ख़ूगर हो गए हैं कि बग़ैर उनके किसी तक़रीब (शादी) में लुत्फ़ ही नहीं आता। चाहे घर वीरान ही हो जाए लेकिन ये रस्में न छूटें। असल यह है कि एतिक़ाद में उनका मासियत और गुनाह होना ही नहीं रहा, हत्ताकि अगर कोई रस्म रह जाती है तो मरते-मरते वसीयत कर जाते हैं।

कैसा हिस बातिल हुआ है जब किसी को पाख़ाना में ख़ुशबू आने लगे तो क्या ताज्जुब है कि मेहमानों के सामने बजाए खाने के ग़लाज़त (पाख़ाना) को रख दे। मगर याद रखे कि मेहमानों का हिस बातिल नहीं हुआ। आपके बेहिस हो जाने से मासियत ताअ़त नहीं बन जाएगी। ख़ुदा तआला के यहाँ दूध का दूध पानी का पानी होगा। यह हालत बहुत अंदेशा की चीज़ है कि मासियत का बुरा होना भी ज़ेहन से उठ जाए। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

आजकल की रस्मों के ममनूअ और नाजायज़ होने के शरई दलाइल

पहले यह समझ लीजिए कि गुनाह क्या चीज़ है। गुनाह की हक़ीक़त है ख़ुदा के अहकाम को बजा न लाना। आपने जो फ़िहरिस्त गुनाहों की बनाई है उसमें बहुत सी कोताहियाँ हैं। शरीअत की दी हुई फ़िहरिस्त में और भी गुनाह हैं। आपकी नज़र चूंकि अपनी फ़िहरिस्त पर है इस वास्ते रस्मों को गुनाह नहीं समझते। मैंने बता दिया कि शरीअत की फ़िहरिस्त में एक गुनाह तफ़ाख़ुर भी है, जिस अमल में पाया जाएगा उसी को फ़ासिद कर देता है।

(ख़ूब) समझ लीजिए कि शरीअत ने जो गुनाहों की फ़िहरिस्त दी है उसमें और भी गुनाह हैं जो आपकी रुसूम का जुज़ हैं, यानी उसमें तकब्बुर और तफ़ाख़ुर वग़ैरह भी दाख़िल हैं।

हक़ तआला फ़रमाते हैं—

إِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ كُلَّ مُخْتَالٍ فَخُورٍ

तर्जमा : बेशक अल्लाह तआला ऐसों को पसंद नहीं करते, जो अपने को बड़ा समझते हों; शैख़ी की बातें करते हों।

और फ़रमाते हैं—

إِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْمُسْتَكْبِرِينَ

तर्जमा : बेशक अल्लाह तआला तकब्बुर करनेवालों को पसंद नहीं करता।

और रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़रमाते हैं–

لا يدخل الجنة من كان في قلبه مثقال حبة من الكبر

तर्जमा : जिस शख़्स के दिल में ज़र्रा बराबर भी किब्र होगा वह जन्नत में दाख़िल न होगा।

और दूसरी हदीस में है–

من سمع سمع الله به (الخ)

तर्जमा : जो शख़्स शोहरत के वास्ते कोई काम करता है तो अल्लाह तआला उसको शोहरत देगा (और क़ियामत के दिन रुस्वा करेगा)।

और एक हदीस में है–

من لبس ثوب شهرة البسه الله ثوب الذل يوم القيامة

तर्जमा : जो शख़्स दिखावे और शोहरत की ग़रज़ से कोई कपड़ा पहनेगा ख़ुदा तआला उसको क़ियामत के दिन ज़िल्लत का लिबास पहनाएगा।

इन आयात और अहादीस से उजुब और तकब्बुर और बनावट और दिखलावे की बुराई साबित है। अब देख लीजिए कि रुसूम की बिना इन्हीं पर है या नहीं।

हमारे पास दलील मौजूद है जिसकी बिना पर हम इन रुसूम को बुरा कहते हैं, वह दलील यह है कि तकब्बुर और तफ़ाख़ुर और दिखलावे को शरीअत ने मासियत क़रार दिया है, लिहाज़ा जिस काम में यह मासियत मौजूद होगी वह भी मासियत होगा।

अब आप देख लीजिए कि आपकी रस्मों का यह जुज़्वे-आज़म है या नहीं और यह जुज़ ऐसा है कि उन तमाम अज्ज़ा को जिनको आपने मुबाह कहा था, सबको इबाहत से निकाल देता है।

देखिए कपड़ा पहनना जायज़ है मगर जब तफ़ाख़ुर शामिल हो जाए तो जायज़ नहीं। दिखाना, खिलाना जायज़ है मगर तफ़ाख़ुर

के साथ जायज़ नहीं। किसी को लेना-देना, रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक करना सबसे अच्छा, मगर तफ़ाख़ुर के साथ जायज़ नहीं। यह तफ़ाख़ुर हलाल चीज़ों को ऐसा गंदा करता है जैसे नजासत कुएँ को। जिसको आपने बहुत सहल समझ रखा है और उसका नाम ही अपनी फ़िहरिस्त से उड़ा दिया है। हालाँकि ग़ौर से देखा जाए तो रस्मों की बिना और असल भी तफ़ाख़ुर है हत्ताकि बेटी को जो चीज़ें जहेज़ में दी जाती हैं उसकी असल भी यही है। बेटी लख़्ते-जिगर कहलाती है। सारी उम्र तो उसके साथ यह बर्ताव रखा कि छुपा-छुपाकर उसको खिलाते थे, दूसरे को दिखाना पसंद न था, शायद नज़र न लग जाए, निकाह का नाम आते ही ऐसा काया पलट हुआ कि एक-एक चीज़ मज्मे को दिखाई जाती है। बर्तन और जोड़े और संदूक़ हत्ताकि आइना-कंघी तक शुमार करके दिखाए जाते हैं। अगर आप ग़ौर करेंगे तो इसकी वजह सिर्फ़ तफ़ाख़ुर पाएँगे। बिरादरी को दिखाना है कि हमने इतना दिया। यह मंज़ूर नहीं होता कि हमारी बेटी के पास सामान ज़्यादा हो जाए। इसी वास्ते तमाम जहेज़ ऐसा तजवीज़ किया जाता है कि ज़ाहिरी बनावट में बहुत उजला हो और क़ीमत के एतिबार से यही कोशिश की जाती है कि सब चीज़ें हल्की रहें। बाज़ार ख़रीदने जाते हैं तो कहते हैं कि शादी का सामान ख़रीदना है, लेने-देने का सामान दिखाओ। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

ब्याह शादी की रस्मों के नाजायज़ होने की क़वी दलील

إِنَّمَا يُرِيدُ الشَّيْطَٰنُ أَن يُوقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَاءَ فِي الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ وَيَصُدَّكُمْ عَن ذِكْرِ اللَّهِ وَعَنِ الصَّلَوٰةِ.

तर्जमा : शैतान की जुऐ और शराब से यह ग़रज़ है कि आपस में दुश्मनी डाल दे और ज़िक्रुल्लाह और नमाज़ से रोक दे।

हक़ तआला ने इस आयत में जुए और शराब के दो नुक़सान

बताए हैं। एक यह कि शैतान इनके ज़रिए से तुम्हारे आपस में निफ़ाक़ डालता है। दूसरे यह कि ख़ुदा तआला की याद और नमाज़ से रोकता है। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि अदावत और बुग्ज़ नमाज़ और ज़िक्रुल्लाह से ग़ाफ़िल करने के लिए ये दोनों चीज़ें आती हैं। और आला और इल्लत एक ही चीज़ है इसी वास्ते उसकी शरह में जनाबे रसूल (सल्ल०) इर्शाद फ़रमाते हैं– "जो चीज़ तुझको ज़िक्रुल्लाह से ग़ाफ़िल कर दे वह सब जुआ है" हदीस में जो इसको जुआ कहा गया है वह इल्लत के इश्तराक की बिना पर उसकी तसरीह हो गई कि (यानी अल्लाह के ज़िक्र और नमाज़ से ग़फ़्लत करना) पाया जाएगा, वह सब हुक्मे ख़म्र और मयसर (यानी शराब और जुआ के हुक्म में) होगा।

अब इसी से अपनी रस्मों का हुक्म निकाल लीजिए। हदीस के अल्फ़ाज़ साफ़ कहते हैं कि जो चीज़ नमाज़ और ज़िक्र से ग़ाफ़िल कर दे इनका हुक्म भी जुए और शराब का-सा है। क्योंकि नमाज़ से ग़ाफ़िल होने का सबब हो गई।

अगर और दलीलों से क़तअ नज़र भी कर लिया जाए तो यह दलील मैंने ऐसी पेश की है कि इसके सामने किसी और दलील की हाजत नहीं और इसका जवाब आप कुछ भी नहीं दे सकते। जब चाहे मुशाहिदा कर लीजिए कि जहाँ ये रस्में होती हैं वहाँ नमाज़ की (पाबंदी) नहीं होती। तो रसूल (सल्ल०) के इर्शाद के मुताबिक़ (ये रस्में) मयसर यानी जुए के हुक्म में हुईं। और मयसर को क़ुरआन शरीफ़ में रजस (नापाक गंदी शै) और शैतान का अमल फ़रमाया गया है। तो मैं नहीं कहता, बल्कि क़ुरआन इन (रुसूम) को अमले शैतान कहता है।

पस और दलीलों को जाने दीजिए। यही क्या कम ख़राबी है कि उसका नाम अमले शैतान हुआ। हुक्म शरई तो यही है जिसके लिए ऐसी दलील बतलाई गई है कि मोटी से मोटी अक़्ल वाला

भी समझ सकता है। (मुनाज़िअतुल-मावा)

क़ायलीने जवाज़ के दलाइल पर तबसिरा

आजकल की बाज़ रस्में ख़ूबसूरत मुबाहात हैं, उनमें चालाकी की गई है और उनको खींचतान कर जायज़ किया गया है।

जब उलमा से दर्याफ़्त किया कि आपस में मिलना जायज़ है या नहीं? और किसी रिश्तेदार के साथ अच्छा सुलूक करना जायज़ है या नहीं? इन सवालों का जवाब मुजीब (मुफ़्ती) क्या दे सकता है, सिवाए इसके कि जायज़ है। पस आपने यह जवाब लेकर गुनाहों की फ़िहरिस्त में इन अफ़आल को अलाहिदा कर लिया और उन अफ़आल को जायज़ रखा और समझ लिया कि जिस मुरक्किब का हर जुज़ मुबाह है तो मुरक्किब नाजायज़ कैसे होगा? यह दलील है आजकल के रुसूम की जो अकसर पढ़े लिखे लोगों को याद है? लेकिन समझ लीजिए कि शरीअत में और भी गुनाह हैं जो आपकी रुसूम का जुज़ हैं। यानी तकब्बुर, तफ़ाख़ुर (नाम-नमूद, शोहरत, दिखलावा)।

अब देख लीजिए कि रुसूम की बिना (बुनियाद) इन्ही पर है (या नहीं?) पस उस मुरक्किब का हर जुज़ जायज़ कहाँ हुआ? पस आपकी दलील तो न चली और हमारे पास दलील है जिसकी बिना पर हम इन रुसूम को बुरा कहते हैं (जिसका बयान इससे पहले गुज़र चुका)।

पस जुज़ मासियत को ज़िक्र न करना और सिर्फ़ मुबाहात का नाम लेकर इस्तफ़ता करना चालाकी नहीं तो और क्या है।

ख़ुदारा इन चालाकियों के मफ़ासिद में न पड़िए। मफ़ासिद तो अपना असर ज़रूर लाएंगे। गो कैसी ही तावील करके कहे कि शकर भी सफ़ेद होती है और यह भी सफ़ेद है तो हम उसको शकर क्यों न कहें, क्या इस तावील से संखिया अपना असर छोड़ देगा?

ऐसे ही खाने और पीने और लिबास और उठने-बैठने में जब शरई मफ़ासिद मौजूद हों तो क्या इन मफ़ासिद का इज़ाला आपके इस समझाने से हो जाएगा कि लिबास भी जायज़ है। उठना-बैठना भी जायज़ है, लेना-देना भी जायज़ है, तो इन सबका मज्मूआ कैसे नाजायज़ होगा। अगर तहक़ीक़ यक़सूद है तो सवाल में इस नाजायज़ जुज़ को भी ज़ाहिर करके जिस आलिम से चाहें पूछ लीजिए कि लिबास बतौर तफ़ाख़ुर के पहनना कैसा है? जवाब यही मिलेगा कि नाजायज़ है। और इसी तरह अगर यह पूछा जाए कि तफ़ाख़ुर के लिए रस्में करना कैसा है? तो देखिए क्या जवाब मिलेगा। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

शरई दलील

आपका ख़्याल था कि खाना खिलाना जायज़ है। और मुफ़्ती फ़त्वा देते हैं कि जायज़ है। मगर शरीअत की फ़िहरिस्त में तो देखो, उसमें हदीस का यह मज़्मून भी गुनाहों में लिखा है।

हदीस में है—

نهى رسول الله صلى الله عليه وآله وسلم عن طعام المتبارئين (مشكوة)

यानी रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने उन दो शख़्सों के खाना खाने को मना फ़रमाया है जो आपस की बख़्शा-बख़्शी से खाना खिलाते हों।

देख लीजिए यह खाना जायज़ है कि आपका कहना सहीह न रहा कि खाना खाने में क्या हर्ज है।

इसी पर तमाम कामों को क़यास कर लीजिए जिनके मज्मूए का नाम रुसूम है। आपने रस्मों के जवाज़ में यह दलील पेश की थी कि खाना खिलाना, देना-लेना, आना-जाना अलाहिदा-अलाहिदा सब अफ़आल मुबाह हैं, उनके जमा होने से मुमानिअत कैसे लाज़िम आ गई। मैं कहता हूँ कि देख लीजिए कपड़ा पहनने को आप जायज़ समझते हैं, मगर उसके लिए शरीअत में एक क़ैद है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

مَنْ لَبِسَ ثَوْبَ شُهْرَةٍ (الخ)

"यानी जो शख़्स कोई कपड़ा दिखावे की ग़रज़ से पहनेगा उसको ख़ुदा तआला क़ियामत के दिन ज़िल्लत का लिबास पहनाएँगे। (इसी तरह) खाना खिलाने को आप जायज़ कहते हैं, उसमें भी एक क़ैद है। अब इन रस्मों में देख लीजिए कि वह अफ़्आल मअ उन क़ैदों के मौजूद हैं या बिला क़ैदों के उसमें आजकल के अक़्लमंद भी धोखे खाते हैं। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

फ़स्ल (2)

रुसूम में अक़्ली ख़राबियाँ और दुनयवी नुक़सानात

रुसूम में अक़्ली ख़राबियाँ देखिए कि जिस माल को मेहनत व जांफ़शानी से हासिल किया गया हो उसको इस बेदर्दी से ख़र्च कर दिया जाए कि मालिक के क़र्ज़ तक अदा न हों और उसके बच्चे मुहताज होकर रह जाएँ। हमने ऐसे लोग देखें हैं कि जिनके बाप ख़ुशहाल थे और बहुत कुछ तर्का (मीरास का माल) छोड़ा था, मगर उन्होंने बिरादरी की ख़ुशी और नमूद (दिखलावे) के लिए सब (रुसूम) में लगा दिया। थोड़ी देर के लिए ख़ूब वाह-वाह हुई और अपने आप मोहताज हो गए। घर फूंक कर तमाशा देखा। यह कौन-सी अक़्ल की बात है कि एक-एक लुक़मा बिरादरी को खिलाकर ख़ुद फ़क़ीर हो गए। दीन से क़ता नज़र अक़्ल से भी काम लिया जाए तो इसका बर अक्स (उलटा) होना चाहिए। यानी बिरादरी सब मिलकर पैसा-पैसा दें, ताकि एक शख़्स के पास काफ़ी रक़म जमा हो जाए। और बिरादरी को मालूम भी न हो मगर जबकि हमको दीन या अक़्ल से काम करना भी हो तो

हमारा इमाम तो हवाए नफ़सानी और ख़्वाहिशे नफ़सानी है। उसके सामने हमें कुछ नहीं सूझता कि क्या कर रहे हैं और इसका अंजाम क्या होगा। नफ़्स और शैतान आपका दुश्मन है कभी आपके फ़ायदे की बात न बतलाएगा। हमेशा वे बातें बतलाएगा जो दीन के ख़िलाफ़ और अक़्ल से भी ख़ारिज हों। हमारी तीनत (तबीअत) में ऐसी जिहालत दाख़िल हो गई है कि अच्छे-बुरे में तमीज़ ही नहीं रही। अपना नफ़ा-नुक़सान भी नज़र नहीं आता, बस ख़्वाहिश को इमाम बना लिया है। (मुनाज़िअ़तुल मावा)

इन रुसूम की बदौलत लोग मक़रूज़ और कंगाल हो गए

शादी-ब्याह सबको पेश आते हैं। ग़रीब आदमी को भी ख़ब्त सूझता है कि अगर ज़रा भी घटिया काम करूँगा तो सारी उम्र को बिरादरी मुँह काला करेगी। इस वास्ते सूद पर क़र्ज़ लेना गवारा करता है। बिरादरी के दबाव से ग़रीब आदमी भी आक़िबत बर्बाद करता है और ग़रीब ही की क्या तख़्सीस है, ग़रीब के इख़राजात ग़रीब ही के-से होते हैं और अमीर के इख़राजात अमीर के-से होते हैं।

अमीर लोग भी इन रस्मों की बदौलत क़र्ज़ से नहीं बचते। अमीरों की तो मंगनी भी मामूली शादियों से बड़ी हुआ करती है। उनको उनकी हैसियत के मुआफ़िक़ बिरादरी ज़ेरबार करती है और दीन के बर्बाद करने के साथ दुनिया में भी उनको ज़लील करके छोड़ती है। अच्छी-अच्छी रियासतें देखी गई हैं कि एक शादी की बदौलत ग़ारत हो गईं। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

अभी लोगों की आँखें नहीं खुलीं। जब सारा घर नीलाम हो जाएगा, उस वक़्त शरीअत के मुआफ़िक़ शादी करने की सूझेगी।

साहिबो! शादियों में बहुत इख़्तिसार करना चाहिए ताकि बाद में अफ़सोस न हो कि हाय हमने यह क्या किया। अगर किसी के पास बहुत ही ज़्यादा रक़म हो तो उसको इस तरह बर्बाद करना

मुनासिब नहीं। बल्कि दुनियादार को कुछ रक़म जमा भी करना चाहिए; इससे दिल मुतमईन रहता है और ताआत में यकसूई नसीब होती है। (अल-कमाल फ़िद्दीनुंलिन्निसा)

ब्याह-शादी में इसराफ़ और ख़र्च की ज़्यादती

शादी ब्याह में लोग आँखें बन्द कर लेते हैं। इससे कुछ बहस नहीं होती कि इस मौक़े पर ख़र्च करना भी चाहिए या नहीं। ख़ूब समझ लो कि ख़र्च करने के भी हुदूद हैं जैसे नमाज़-रोज़ा के हुदूद हैं। अगर कोई शख़्स नमाज़ बजाए चार रकअत के छः रकअत पढ़ने लगे या कोई ईशा तक रोज़ा रखने लगे तो गुनाहगार होगा।

रऊसा (मालदार) लोग शादी वग़ैरा में बड़ी बेइहतियातियाँ करते हैं। मुसलमानों के हाल पर बड़ा अफ़सोस होता है कि वे आगे-पीछे ख़्याल नहीं करते। बुरी तरह फ़ुज़ूल ख़र्ची करते हैं, यहाँ तक कि ब्याह-शादी हो जाते हैं। बाज़ की लंगोटी बंध जाती है। यह नौबत मुसलमानों की इस वजह से हुई कि इस्लाम के आहनी क़िले का फाटक खोल दिया। वरना इस्लामी उसूल पर चलने से कभी ज़िल्लत नहीं हो सकती। हुक़ूके मालिया की हिफ़ाज़त निहायत ज़रूरी है। (अत-तबलीग़)

शादी में ज़्यादा ख़र्च करना हिमाक़त है

एक रईस साहब थे उन्होंने शादी की और बेइंतहा ख़र्च किया। मौलाना मुहम्मद क़ासिम साहब (रह०) उनके यहाँ आए और कहा कि माशा-अल्लाह आपने बहुत ही ख़र्च किया, आपकी बुलन्द हौसलगी में कुछ शुबहा नहीं। मगर आपने बहुत ख़र्च करके ऐसी चीज़ ख़रीदी है कि अगर ज़रूरत के वक़्त उसको फ़रोख़्त करें तो उसे कोई खोटी कौड़ी (एक पैसे) की भी न लेगा। वह क्या है "नाम और शोहरत"। इन रस्मों ने मुसलमानों को तबाह कर डाला है। इसलिए मैंने मंगनी का नाम क़ियामते सुग़रा और शादी का

नाम क़ियामते कुबरा रखा है। इन शादियों की बदौलत घरों को घुन लग जाता है; हत्ताकि रफ़्ता-रफ़्ता सारे घर का ख़ातिमा हो जाता है। (अज़्लुल जाहिलिया)

इसराफ़ की क़बाहत

बुख़्ल के मुक़ाबले में इसराफ़ ज़्यादा बुरा है

अगर आदमी फ़ुज़ूल ख़र्ची से बचे तो बड़ी बरकत होती है। फ़ुज़ूल ख़र्ची बड़ी मुज़िर चीज़ है। उसकी बदौलत मुसलमानों की जड़ ही खोखली हो गई है। बुख़्ल के मुक़ाबले में इसराफ़ ज़्यादा बुरा है। जिस चीज़ का अंजाम परेशानी हो वह ज़्यादा बुरी है, उससे जिससे परेशानी न हो। बुख़्ल में परेशानी नहीं होती और इसराफ़ में परेशानी होती है।

मुसर्रफ़ (फ़ुज़ूल ख़र्ची करनेवाले) से अंदेशा है कि कहीं दीन न खो बैठे ऐसे वाक़िआत बकसरत मौजूद हैं कि इसराफ़ का नतीजा कुफ़्र हो गया और वजह उसकी यह हुई कि मुसर्रफ़ को अपनी हाजतों को पूरा करने में इज़्तरार होता है और माल होता नहीं। इसलिए दीन-फ़रोशी भी कर लेता है और बुख़्ल को यह इज़्तरार नहीं होता। उसके हाथ में हर वक़्त पैसा है, गो वह ख़र्च न करे। (अल इफ़ाज़ात)

इसी लिए मैं कहा करता हूँ कि आजकल पैसे की क़द्र करना चाहिए। इसके न होने की वजह से भी इंसान बहुत-सी आफ़ात में मुब्तला हो जाता है। दीन-फ़रोशी भी इस आफ़त की एक फ़र्द है।

किस निकाह में बरकत नहीं होती

फ़रमाया, हदीस है—

اعظم النكاح بركة ايسره مؤنة

तर्जमा : ज़्यादा बरकतवाला निकाह वह होता है जो ख़र्च के एतिबार से आसान हो। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि जितना

ज़्यादा निकाह में ख़र्च किया जाएगा बरकत कम होगी।

(मल्फ़ूज़ाते अशर्फ़िया)

शादी में ज़्यादा ख़र्च करने के सहीह और मुफ़ीद तरीक़े

1. एक शख़्स ने मुझसे बतौर इश्काल के कहा कि ख़ुशी में हम काफ़ी रक़म ख़र्च करना चाहते हैं और जब ख़ुदा ने माल दिया है तो क्यों न ख़र्च करें। सो इन तरीक़ों को तो आप मना करते हैं। आख़िर कोई तरीक़ा ख़र्च का भी तो बतलाएँ। मैंने कहा, अगर आपको ख़र्च करना ही मक़सूद है तो इसका तरीक़ा अक़्ल के मुआफ़िक़ यह है कि ग़रीबों की एक फ़िहरिस्त बनाएँ और जितनी रक़म आपको ख़र्च करनी हो उनको बांट दीजिए। (ग़रीब घराने की लड़कियों की शादी में वह रक़म सर्फ़ कर दीजिए) देखिए शोहरत भी कितनी हो जाएगी, गो इसकी नीयत न चाहिए और (इस सूरत में ग़रीबों को) नफ़ा भी किस क़द्र पहुँचेगा। (अत-तबलीग़)
2. (और अगर अपने ही घराने दामाद-बेटा) पर ख़र्च करना हो तो इसका बेहतर तरीक़ा वह है कि जो एक मालदार ने इख़्तियार किया था। वह यह कि एक मालदार ने अपनी लड़की का निकाह किया (और बजाए धूमधाम से शादी करने के) एक लाख रुपये की जायदाद बेटी के नाम कर दी। और कहा कि मेरी नीयत इस शादी में एक लाख रुपया ख़र्च करने की थी और यह रक़म इसके वास्ते पहले से तजवीज़ कर ली थी। ख़्याल था कि ख़ूब धूमधाम से शादी करूँगा मगर फिर मैंने सोचा कि इस धूमधाम से मेरी बेटी (और दामाद) को क्या नफ़ा होगा। बस लोग खा-पीकर चल देंगे, मेरा रुपया बर्बाद होगा और बेटी को कुछ न हासिल होगा। इसलिए मैंने ऐसी सूरत इख़्तियार की जिससे बेटी (और दामाद) को नफ़ा पहुंचे और जायदाद से बेहतर उसके लिए नफ़ा की कोई चीज़

नहीं। इससे वह और उसकी औलाद पुश्तहा-पुश्त बेफ़िक्री से ऐश करते रहेंगे और अब कोई मुझे बख़ील और कंजूस भी नहीं कह सकता। क्योंकि मैंने धूमधाम नहीं की तो रक़म अपने घर में भी नहीं रखी। यह होता है उक़्ला का तर्ज़।

(अल-हुक़ूक़ुल-हैयत)

फ़स्ल (३)

शादी में शोहरत और धूमधाम

मौजूदा रस्में और तरीक़े ऐसे लग़्व हैं कि जिनसे न ही कोई फ़ायदा होता और न ही शोहरत। फ़ायदा न होने का सुबूत तो देख लीजिए कि रियासतें एक-एक तक़रीब में ग़ारत हो गईं और शोहरत की हालत यह है कि आज किसी ने (सत्तर) हज़ार रुपया तक़रीब में लगाया, कल को दूसरे ने ज़रा-सी बात और ईजाद कर ली तो कहते हैं कि अरी फ़्लां ने क्या किया था। और शोहरत है क्या चीज़, शोहरत ख़ुद एक मज़्मूम चीज़ है।

(दवाउल-उयूब, अत-तबलीग़)

जितनी धूमधाम से शादी करोगे उतनी ही बदनामी होगी

मैं तो कहता हूँ जितनी नाम की कोशिश करते हैं, उतनी ही बदनामी होती है। एक महाजन ने बड़ी धूमधाम से शादी की। बहुत ख़र्च किया। बरातियों में से हर शख़्स को एक-एक अशर्फ़ी भी दी। जब बरात वापस हुई तो आपको यह ख़्याल हुआ कि हर गाड़ी में मेरा ही तज़्किरा और तारीफ़ हो रही होगी। उसको किसी बहाने से सुनना चाहिए। चुनांचे वह एक मक़ाम पर ख़ुफ़िया तौर पर खड़े हो गए। बरात वहाँ से गुज़री, मगर किसी गाड़ी में इतना तज़्किरा न पाया। आख़िर एक गाड़ी में उन्होंने देखा कि दो शख़्स उसका तज़्किरा कर रहे हैं। उन्होंने बड़े शौक़ से कान लगाया। एक ने कहा कि देखो कैसे नाम का काम किया, एक-एक अशर्फ़ी

सबको दी, यह काम किसी ने नहीं किया। दूसरे ने कहा कि ससुरे ने एक-एक दी अगर दो-दो देता तो क्या मर जाता। ग़रज़ यह कि नाम के लिए माल बर्बाद करते हैं। मगर वह भी मयस्सर नहीं होता। (अत-तबलीग़)

जिनके वास्ते तुम माल लुटाते हो वे तुम्हारे बदख़्वाह हैं

और जिनके वास्ते ख़र्च करते हो, जिस वक़्त मुसीबत आती है उनमें कोई पास खड़ा नहीं होता। बल्कि तबाही होने पर यूँ कह देते हैं कि माल बर्बाद करने को किसने कहा था, अपने हाथों बर्बाद हुए। हमने देखा है कि जो लोग आसूदगी (ख़ुशहाली) में यह कहते थे कि जहाँ तुम्हारा पसीना गिरेगा वहाँ हम ख़ून गिराने को तैयार हैं। लेकिन जिस वक़्त तबाही आई, उनमें से एक भी पास खड़ा नहीं मिला लिहाजा मुसीबत के वक़्त सब (आँखें बन्द कर लेते हैं और) बदल जाते हैं। (अत-तबलीग़)

धूमधाम से शादी करने का ज़बरदस्त नुक़सान

इस धूमधाम को देखकर दूसरे मालदारों के दिल में हसद पैदा होता है कि यह तो हमसे भी बढ़ने लगा। अब वे इसकी कोशिश करते हैं कि किसी तरह इंतिज़ाम में कोई ऐब निकालें लिहाज़ा अगर कुछ भी इंतिज़ाम में कमी रह गई तो फिर, ठिकाना है। हर तरफ़ उसका चर्चा सुन लीजिए। कोई कहता है कि मियाँ क्या हमें तो हुक़्क़ा भी नसीब न हुआ और दूसरा कहता है कि मियाँ भूखे मर गए, रात को दो बजे खाना नसीब हुआ। जब इंतज़ाम नहीं हो सकता था तो इतने आदमियों को बुलाया ही क्यों था? ग़रज़ उस कमबख़्त का तो रुपया बर्बाद हुआ और उनकी नाक भी सीधी न हुई। बाज़ दफ़ा हसद में कोई यह हरकत करता है कि पकती देग़ में ऐसी चीज़ डाल देता है, जिससे खाना ख़राब हो जाए। फिर उसका हर महफ़िल में चर्चा होता है और अच्छी तरह नाक कटती है और अगर सारा इंतिज़ाम उम्दगी से हो भी गया तो नतीजा यह

होता है कि कोई बुरा नहीं कहता तो भला भी नहीं कहता।

(दीन व दुनिया)

धूमधामवाली शादी में नमाज़ से लापरवाही

जहाँ शादी धूमधाम से और रिवाज के मुताबिक़ होती है वहीं औरतों और मर्दों को और साहिबे ख़ाना को और नौकरों को नमाज़ का मुतलक़ (बिल्कुल) होश नहीं होता। रात भर जागने और खाना-दाना में और मेहमानदारी और लेने-देने में कट जाती है। मगर नमाज़ की फ़ुरसत किसी को नहीं होती। यह हद शरई से ख़ुरूज (आगे बढ़ना) है या नहीं? नमाज़ जिसका छोड़ना किसी ज़रूरत से भी जायज़ नहीं। बे-ज़रूरत छोड़ दी जाती है।

बाज़ औरतों को यही उज़्र होता है कि घर में इतना मज्मा हो गया है कि नमाज़ के लिए जगह ही नहीं। इतनी औरतें नमाज़ कहाँ पढ़ें।

क्यों बीबियो! सारे कामों के लिए जगह है और नमाज़ के लिए जगह नहीं? क्या जिस वक़्त सोने का वक़्त आएगा उस वक़्त इनको लेटने के लिए भी जगह न मिलेगी? लेटने के लिए तो ज़रूर जगह मिलेगी। अगर किसी बीबी को ज़रा-सी भी तकलीफ़ हो गई तो सारी बिरादरी में नाक कट जाएगी। अगर बीबियाँ सोने के बराबर भी नमाज़ को ज़रूरी समझें तो नमाज़ की जगह न मिलने पर भी बिरादरी में नाक कटी कर दें। मगर नमाज़ पढ़ना ही नहीं होता, ये सब हीले-बहाने होते हैं। और कुछ भी हो फ़र्ज़ कर लीजिए कि जगह बिल्कुल नहीं है तो हक़ तआला कब इसके ज़िम्मेदार हैं। क्या हक़ तआला ने हुक्म दिया था कि ऐसे मज्मे में जाओ जहाँ नमाज़ भी न पढ़ सको? जब वक़्त आए लाख तदबीरें करो और नमाज़ अदा करो। मज्मे में पढ़ो या मज्मे में ख़ाक डालो। घर जाकर नमाज़ अदा करो। जिस सूरत से भी हो नमाज़ छोड़कर गुनाह से नहीं बच सकतीं। अगर मज्मा नमाज़ पढ़ने को

मानेअ होता है तो शरीअत उस मज्मे को भी जायज़ नहीं क़रार देती। अगर एक नमाज़ भी तक़रीबात में छूट गई तो उनके क़बीह होने के लिए काफ़ी है, मगर हमको उनके हुस्न व क़बह (अच्छाई-बुराई) की ख़बर ही नहीं। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

फ़स्ल (4)

शादी के लिए क़र्ज़

औरतें जब शादी-ब्याह के ख़र्च मर्दों को बतलाती हैं और ख़ाविंद पूछता है कि इतना ख़र्च मैं कहाँ से करूँ। मुझमें तो इतनी गुंजाइश नहीं है, तो वह कहती है कि क़र्ज़ा ले लो। शादी का क़र्ज़ा रहा नहीं करता है अदा हो जाता है। ख़ुदा जाने यह इन्होंने कहाँ से समझ रखा है कि शादी और तामीर का क़र्ज़ा अदा ही हो जाता है, चाहे वह सूदी क़र्ज़ हो और चाहे ख़र्च बेतुका ही हो।

साहब! हमने इन क़र्ज़ों में जायदादें नीलाम होते देखी हैं और जब यह नौबत पहुँच गई तो अब लोग ख़ुद भी उनकी बुराई कुछ समझ गए हैं, मगर फिर भी पूरी अक़्ल नहीं आई। अभी बहुत कुछ रुसूम बाक़ी हैं।

शिर्क व बिद्अत की रस्में तो कम हो गईं लेकिन तफ़ाख़ुर की रस्में बढ़ गई हैं। बर्तनों और फ़र्श व फ़रोश में क़िस्म-क़िस्म के तकल्लुफ़ पैदा हो गए हैं। पहले यह हालत थी कि इस क़िस्म की बढ़िया चीज़ किसी एक-दो शख़्स के यहाँ होती थी। शादी-ब्याह में लोग उनसे माँग-माँगकर काम निकाल लिया करते थे।

(दीन व दुनिया)

शादी के लिए क़र्ज़ देने का हुक्म

फ़रमाया कि (ऐसी) शादी-ब्याह में क़र्ज़ देना जिससे रुसूमात अदा किए जाएँ या इसराफ़ किया जाए, ममनूअ है। क्योंकि गो

उस मक़रूज़ (क़र्ज़ देनेवाले) की नीयत इतलाफ़े माल (माल को बर्बाद करने) की न हो, मगर तकल्लुफ़ का वुक़ूअ़ तो हुआ। यानी माल बर्बाद तो हुआ जिसका सबब उस शख़्स का फ़ेल है (जिसने क़र्ज़ दिया है) और अम्रे मुंकिर का मुबाशिर बनना इस तरह मुंकिर (गुनाह) है, इसी तरह सबब बनना भी (गुनाह) है।

دلیله لقوله تعالیٰ وَلَا تَسُبُّوا الَّذِیْنَ یَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ (الآیه) (کمالات اشرفیه)

(कमालात अशर्फ़िया)

बाब 17

फ़स्ल (1)

औरतें और रुसूम की पाबंदी

औरतों की हालत बहुत ज़्यादा ख़राब है। ये अपने ज़ेहन की ऐसी पक्की होती हैं कि दीन तो क्या दुनिया की भी बरबादी का उनको ख़्याल नहीं रहता। रस्मों के सामने और अपनी ज़िद के सामने चाहे कुछ भी नुक़सान हो जाए, कुछ परवाह नहीं करतीं। बाज़ औरतें ऐसी देखी जाती हैं कि उनके पास माल था किसी तक़रीब या शादी में लगाकर कौड़ी-कौड़ी की मोहताज हो गईं और हर वक़्त मुसीबत उठाती हैं, मगर लुत्फ़ (और ताज्जुब) यह है कि अब तक भी उन रस्मों की बुराई उनको महसूस नहीं हुई। यूँ कहती हैं कि हमने फ़ुलाने के साथ भलाई की। उनकी शादी ऐसी धूमधाम से कर दी। हमारी यंह रक़म ख़ुदा के यहाँ जमा है। (उनका होता है रक़म) जैसी जमा है आँख बन्द होते ही मालूम हो जाएगा। जब दुनिया की तकलीफ़ें जो कि उनके सामने हैं उनपर असर नहीं करतीं हालाँकि वह बिल्कुल महसूस हैं तो आख़िरत की तकलीफ़ों को वह कब ख़्याल में लाती हैं जो अभी मख़फ़ी हैं।

(मुनाज़िअ़तुल-मावा)

एक मर्ज़ इन औरतों में है जो मुफ़्सिदा में सबसे बढ़कर है वह यह कि कुछ औरतें रुसूम की सख़्त पाबंद होती हैं। ख़ाविंद के माल को बड़ी बेदर्दी से उड़ाती हैं। ख़ासकर शादी-ब्याह की रस्मों में और शैख़ी के कामों में। बाज़ जगह सिर्फ़ औरतें ख़र्च की मालिक होती हैं। फिर उसका नतीजा यह होता है कि मर्द रिश्वत लेता है या मक़रूज़ होता है तो ज़्यादातर जो मर्द हराम आमदनी में मशग़ूल हैं उसका बड़ा सबब औरतों की फ़ुज़ूल ख़र्ची है।

मसलन किसी घर में शादी हुई तो यह फ़रमाइश होती है कि क़ीमती जोड़ा होना चाहिए। अब वह सौ-दो-सौ रुपये में (और आजकल हज़ार-दो-हज़ार में) तैयार होता है। मर्द का ख़याल था कि ख़ैर सौ-दो-सौ ही में पाप कटा, मगर बीवी ने कहा कि यह तो शाहाना जोड़ा है। चौथी का अलग होना चाहिए वह भी (अस्सी 80 हज़ार) के क़रीब लागत में तैयार हुआ। फिर फ़रमाइश होती है कि जहेज़ में देने को बीस-पच्चीस जोड़े और होने चाहिए। ग़रज़ कपड़े-ही-कपड़े में सैंकड़ों हज़ार रुपये लग जाते हैं।

जब बिरादरी में ख़बर मशहूर होती है कि फ़ुलाँ घर में तक़रीब है तो हर बीबी को नये क़ीमती जोड़े की फ़िक्र लग जाती है। कभी ख़ाविंद से फ़रमाइश होती है, कभी ख़ुद। बज़्ज़ाज़ (कपड़े बेचनेवाले) को दरवाज़े पर बुलाकर उससे उधार लिया जाता है या सूदी क़र्ज़ लेकर उससे ख़रीदा जाता है। शौहर को अगर वुसअत नहीं होती तब भी उसका उज़्र क़बूल नहीं होता। ज़ाहिर है यह जोड़ा महज़ रिया और तफ़ाख़ुर के लिए बनता है। इस ग़रज़ से माल ख़र्च करना इसराफ़ है। ख़ाविंद पर उसकी वुसअत से ज़्यादा बिला ज़रूरत फ़रमाइश करना उसको ईज़ा पहुँचाना है, अगर ख़ाविंद की नीयत उन फ़रमाइशों से बिगड़ गई और हराम आमदनी पर उसकी नज़र पहुँची कि किसी का हक़ तलफ़ किया, रिश्वत ली और फ़रमाइशें पूरी कीं, इन सब गुनाहों का बाइस यह बीबी बनी। इन रस्मों के पूरा करने में अकसर मक़रूज़ भी होते हैं गो बाग़ ही फ़रोख़्त या गिरवी हो जाए और गो सूद देना पड़े इसमें इल्तिज़ाम, नुमाइश, शोहरत और इसराफ़ वग़ैरह सब ख़राबियां मौजूद हैं। इसलिए यह भी ममनूआत में दाख़िल हैं।

(इस्लाहुर्रुसूम)

रस्मो-रिवाज की जड़-बुनियाद औरतें हैं

जितने सामान ब्याह-शादी के हैं सबकी बिना तफ़ाख़ुर और

नमूद (शोहरत) पर है और यह तफ़ाख़ुर गो मर्द भी करते हैं मगर असल जड़ इसमें औरतें ही हैं। यह उस फ़न की इमाम हैं और ऐसी शाक़ और तजुर्बेकार हैं कि निहायत आसानी से तालीम दे सकती हैं। जो आदमी जिस फ़न का माहिर होता है उसको उस फ़न के कुल्लियात ख़ूब मालूम होते हैं। यह एक कुल्लिया (क़ायदा) में सब कुछ सिखा देती हैं। जब उनसे पूछा जाता है कि ब्याह-शादी में क्या-क्या करना चाहिए तो ज़रा-सा कलिमा चुटकुले-सा समझा देती हैं कि ज़्यादा नहीं, अपनी शान के मुआफ़िक़ तो कर लो। यह कुल्लिया नहीं कलीहा है और कलीहा भी ऐसी है कि हाथी भी उसमें समा जाए। ये तो इतना-सा जुमला कह कर अलग हो गईं, करनेवालों ने जब उसकी शरह पूछी तो वे इतनी तवील हुई कि हज़ारों जुज़्यात उसमें से निकल आएँ जिनसे दुनिया की भी बर्बादी हुई और आख़िरत का भी कोई गुनाह नहीं बचा। उन्होंने तो सिर्फ़ एक लफ़्ज़ यह कह दिया था कि अपनी शान के मुआफ़िक़ कर लो। जिसको मर्दों ने शरह कराकर इतना बढ़ा लिया कि रियासतें की रियासतें ग़ारत हो गईं, हज़ारों गुनाहे-कबीरा सरज़द हो गए। (अत-तबलीग़)

औरतों के जमा होने के मफ़ासिद और ख़राबियाँ

मस्तूरात (औरतों) के जमा होने में बहुत-सी ख़राबियाँ और गुनाह हैं जो अक़्लमंद दीनदार को मुशाहिदा और ग़ौर करने से बे-तकल्लुफ़ मालूम हो सकते हैं। इसलिए मेरी राय यह है कि उम्मुल मफ़ासिद (तमाम बुराइयों की जड़) इन औरतों का जमा होना है। इसका इंसिदाद (बंदोबस्त) सबसे ज़्यादा ज़रूरी है, (अशरफ़ुल-मामूलात)। मैं राय देता हूँ कि औरतों को आपस में मिलने न दिया करें। ख़रबूज़े से ख़रबूज़ा रंग बदलता है।

मेरी राय बिला शकोशुबहा क़तई तौर से यह है कि इन औरतों को एक जगह जमा ही न होने दें और अगर किसी ऐसी

ज़रूरत के लिए जमा हों जिसको शरअ़ ने भी ज़रूरत क़रार दिया हो तो मुज़ायक़ा नहीं। मगर इसमें भी ख़ाविंदों को चाहिए कि औरतों को इस पर मजबूर करें कि कपड़े बदलकर मत जाओ, जिस तरह और जिस हालत में बावर्चीख़ाना में बैठी हो चली जाओ। (इस्लाहुर्रुसूम)

तक़रीबात में औरतें चन्द मौक़ों पर जमा होती हैं। इस इज्तिमा में जो ख़राबियाँ हैं उनका शुमार नहीं। मिसाल के तौर पर बाज़ का बयान होता है। (इस्लाहुर्रुसूम)

ब्याह-शादियों में औरतों के मफ़ासिद की तफ़सील

1. शैख़ी औरतों की गोया सरिश्त में दाख़िल है। उठने-बैठने में बोलने- चालने में, कहीं जाएँगी तो बे-धड़क उतरकर घर में दाख़िल होंगी। यह एहतिमाल ही नहीं कि शायद घर में कोई नामहरम मर्द पहले से हो। और बारहा ऐसा इत्तिफ़ाक़ होता है कि ऐसे मौक़े पर नामहरम का सामना हो जाता है, मगर औरतों को तमीज़ ही नहीं कि पहले घर में तहक़ीक़ कर लिया करें।
2. अब घर में पहुँची हाज़िरीन को सलाम किया। बाज़ों ने ज़बान को तकलीफ़ ही नहीं दी, फ़क़त हाथ को माथे पर रख दिया। बस सलाम हो गया। जिसकी मुमानिअत हदीस में आई है। बाज़ों ने लफ़्ज़ सलाम कहा तो सिर्फ़ लफ़्ज़ सलाम में, जवाब दिया, जो यह भी सुन्नत के ख़िलाफ़ है। अस्सलामु अलैकुम कहना चाहिए। अब जवाब मुलाहिज़ा फ़रमाएँ, जीती रहो, ठंडी रहो, सुहागन रहो, भाई जिए, बच्चे जिएँ ग़रज़ कुंबे भर की फ़िहरिस्त शुमार करना आसान और 'व अलैकुमुस्सलाम' कहना मुश्किल जो सबमें जामेअ है।
3. वहाँ पहुँचकर ऐसी जगह बैठेंगी कि सबकी नज़र उन पर पड़े। हाथ-कान ज़रूर दिखलाएँगी। हाथ किसी चीज़ में घिरा हुआ हो

तब भी किसी बहाने से निकालेंगी और कान को ढके हुए हों, मगर गर्मी के बहाने से या किसी ज़रूरत के बहाने से खोलकर ज़रूर दिखलाएँगी कि हमारे पास इतना ज़ेवर है। अगर किसी की नज़र न भी पड़ी हो तो खुजली उठाकर कान तो दिखा ही देंगी। जिससे अंदाज़ा किया जाए कि जब इतना ज़ेवर इनके कानों में है तो घर में न मालूम कितना होगा।

4. अब मज्लिस जमी तो शग़ल आज़म यह हुआ कि गप्पें शुरू हुईं। बैठते ही सिवाए ग़ीबत के कोई और दूसरा मशग़ला ही नहीं जो सख़्त ममनूअ़ और क़तई हराम है। इन औरतों को शैख़ी के दो मौक़े मिलते हैं– एक ख़ुशी का या एक ग़मी का इन्हीं दो मौक़ों में इज्तिमाअ होता है।

5. बातों के दर्मियान हर बीबी इसकी कोशिश में होती है कि मेरी पोशाक और ज़ेवर पर सबकी नज़र पड़ जाना चाहिए, हाथ से, पाँव से ग़रज़ तमाम बदन से इसका इज़्हार होता है जो सरीह रिया है और जिसका हराम होना सबको मालूम है।

6. और जिस तरह हर बीबी (दूसरों को अपना ज़ेवर) दिखाती है इसी तरह दूसरों की मज्मूई हालत देखने की भी कोशिश करती है। चुनांचे अगर किसी को अपने से कम पाया तो उसको हक़ीर और ज़लील समझा। और अपने को बड़ा, यह सरीह तकब्बुर और गुनाह है और अगर दूसरी को अपने से बढ़ा हुआ पाया तो हसद और नाशुक्री और हिर्स इख़्तियार की। ये तीनों गुनाह हैं।

7. अकसर इस तूफ़ान और बेहूदा मशग़ूली में नमाज़ें उड़ जाती हैं वरना वक़्त तो ज़रूर तंग हो जाता है।

8. अगर तक़रीबवाले घर के मर्द बे-एहतियाती और जल्दी में बिल्कुल दरवाज़े में घर के रूबरू खड़े हो जाते हैं (बल्कि घर के अंदर घुस जाते हैं) और बहुतों पर निगाह पड़ती है, उनको

देखकर किसी ने मुँह फेर लिया, कोई आड़ में आ गई। किसी ने सिर नीचा कर लिया, बस पर्दा हो गया।

9. फ़रागत के बाद जब घर जाने को होती हैं तो याजूज-माजूज की तरह वह तमूज होता है कि एक पर दूसरी और दूसरी पर तीसरी ग़रज़ दरवाज़े पर सब लिपट जाती हैं कि पहले मैं सवार हूँ।

10. फिर किसी को कोई चीज़ गुम हो गई तो बिला दलील किसी को तोह्मत लगाना उस पर तशद्दुद करना अकसर शादियों में पेश आता है। (इस्लाहुर्रुसूम)

लिबास, ज़ेवर, मेकअप, (ज़ीनत) का मुफ्सिदा

1. ग़ज़ब यह है कि एक शादी के लिए एक जोड़ा बना, वह दूसरी शादी के लिए काफ़ी नहीं। इसके लिए फिर दूसरा जोड़ा चाहिए। यह तो पोशाक की तैयारी थी। अब ज़ेवर की फ़िक्र हुई। अगर अपने पास नहीं होता तो माँग-माँगकर पहना जाता है और उसकी आरयत (माँगा हुआ) होने को पोशीदा रखा जाता है। उसको अपनी ही मिल्कियत ज़ाहिर किया जाता है। यह एक क़िस्म का झूठ है।

   हदीस शरीफ़ में है कि जो शख़्स बा-तकल्लुफ़ अपनी आसूदगी (ख़ुशहाली) ज़ाहिर करे ऐसी चीज़ से जो उसकी नहीं है उसकी ऐसी मिसाल है जैसे किसी ने दो कपड़े झूठ और फ़रेब के पहन लिए, यानी सर से पाँव तक झूठ ही झूठ लपेट लिया।

   फिर अकसर ऐसा ज़ेवर पहना जाता है जिसकी झंकार दूर तक जाए ताकि महफ़िल में जाते ही सब की निगाहें उन्हीं के नज़ारे में मशग़ूल हो जाएँ। बजता हुआ ज़ेवर पहनना ख़ुद ममनूअ है। हदीस में है कि हर बाजे के साथ एक शैतान होता है।

2. बाज़ औरतें ऐसी बे-एहतियात होती हैं कि डोली (सवारी) से पल्ला लटक रहा है या किसी तरफ़ से पर्दा खुल रहा है या इत्र

वग़ैरा इस क़द्र मिला है कि रास्ते में ख़ुश्बू महकती जाती है। ये नामहरमों के रूबरू ज़ीनत है। हदीस में वारिद है कि जो औरत घर से इत्र लगाकर निकले यानी इस तरह कि दूसरों को भी ख़ुश्बू पहुँचे तो वह ऐसी-वैसी है (यानी बदकार ज़ानिया है)।

(इस्लाहुर्रुसूम)

औरतों की ज़बरदस्त ग़लती

यह अजीब बात है कि घर में तो भंगनों और मामाओं की तरह रहें और डोली (रिक्शा) आते ही बन-संवरकर बेगम साहिब बन जाएं। कोई उनसे पूछे कि अच्छे कपड़े पहनने की ग़रज़ क्या सिर्फ़ ग़ैरों को दिखलाना है? ताज्जुब है कि जिस वास्ते में कपड़े बने और जिसके दाम लगे उसके सामने कभी न पहना जाए और ग़ैरों के सामने पहना जाए। हैरत है कि ख़ाविंद से कभी सीधे मुँह बात न बोलें, कभी अच्छा कपड़ा उसके सामने न पहनें और दूसरों के घरों में जाएँ तो शीरीं ज़बान बन जाएं और कपड़े भी एक से एक बढ़े-चढ़े पहनकर जाएँ। काम आईं ग़ैरों के और दाम लगे ख़ाविंद के यह क्या इंसाफ़ है। इस तस्नुअ़ की यहाँ तक नौबत पहुँची।

(अत-तबलीग़, दवाउल-उयूब)

इर्शादे नबवी (सल्ल०) और ज़रूरी मस्अला

रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि जो शख़्स कोई कपड़ा दिखावे की ग़रज़ से पहनेगा उसको ख़ुदा तआला क़ियामत के दिन ज़िल्लत का लिबास पहनाएँगे। क्या औरतों के इस मामूली अफ़आल को देखकर कोई कह सकता है कि रुसूम में इनकी नीयत दुरुस्त होती है। औरतों की इस तरफ़ इल्तिफ़ात (तवज्जुह) भी नहीं होती कि नीयत दुरुस्त और नादुरुस्त (सहीह-ग़लत) कैसी होती है।

और कोई यहाँ यह शुब्हा न करे कि जब कोई कपड़ा बनाता है तो दो-चार कपड़ों में से अच्छा ही छाँटकर लेता है तो यह सब

तरफ़ा दिखलावा हुआ? तो याद रखो कि अपना जी ख़ुश करने को कपड़ा पहना जाए तो मुबाह है और दूसरे की नज़र में बड़ा होने के लिए पहना जाए तो नाजायज़ है। (हुक़ूक़ज़-ज़ौजैन)

औरतों को शादियों में जाने से बाज़ रखने का तरीक़ा

एक तर्कीब मैंने मर्दों को सिखलाई है। गो औरतें इससे बहुत ख़फ़ा होती हैं। मगर वह शैख़ी का इलाज है। वह तर्कीब यह है कि औरतों से यह मत कहो कि जमा न हो (यानी शादियों में शिरकत न करो) यह तो होना मुश्किल है और इसमें वे मअज़ूर भी हैं क्योंकि 'जिन्स का मैलान अपनी ही जिन्स की तरफ़ होता है।' इसी लिए औरतों का दूसरी बीबियों से मिलने को कभी तवज्जी चाहता ही है, मगर यह करो कि कहीं जाते वक़्त कपड़े न बदलने दिया करो, इसके लिए मर्दाना हुकूमत से काम लो। और जब कहीं जाएँ तो सर पर खड़े होकर मजबूर करो कि कपड़े न बदलने पाएँ।

शादियों में औरतों को मना करने का सहल तरीक़ा यही है कि जाने को मना न करें, मगर इस पर मजबूर करें कि कपड़े, ज़ेवर वग़ैरह कुछ न पहनें। जिस हैसियत से अपने घर में रहती हैं उसी तरह चली जाएँ, ख़ुद जाना बन्द हो जाएगा।

(अशरफ़ुल मामूलात)

अगर औरतें शादी में शिरकत और रस्म-रिवाज से बाज़ न आएँ

एक शख़्स मौलाना क़ासिम साहब की ख़िदमत में तक़रीबात में रुसूम की मुमानिअत पर कहने लगा कि बीवी नहीं मानती। फ़रमाया कि जाकर समझाओ, मान जाएगी। उसने कहा कि बहुत समझा चुका हूँ, किसी तरह नहीं मानती। मौलाना को गुस्सा आ गया और फ़रमाया कि अगर वह किसी मर्द की बग़ल में सोने की

इजाज़त माँगे तो क्या उसकी भी इजाज़त दे दोगे? बस वह साहब चुप ही रह गए।

सवाल : औरतों के लिए शादी में शिरकत का फ़ी नफ़्सिही हुक्म शादियों में औरतों के लिए शिरकत की गुंजाइश है या नहीं?

जवाब : लाइम (दावते-वलीमा, शादी) और नामहरमों में जाने से मना करने की इल्लत एहतिमाले फ़ित्ना है, और फ़ित्ना आम है हर अम्र ग़ैर मशरूअ (नाजायज़ काम को) जिसकी तफ़्सील मेरे नज़दीक वही है जिसको इस्लाहुर्रुसूम में बन्दे ने लिखा है। (जिसका ज़िक्र मा क़ब्ल में गुज़र चुका)।

बाक़ी जिसके नज़दीक नहीं का मदार जो फ़ित्ना हो वह है। और इल्लत के इर्तफ़ाअ (ख़त्म हो जाने से मालूम) मुमानियत भी मुर्तफ़ा (ख़त्म हो जाएगा) यानी अगर एहतिमाले फ़ित्ना न हो तो जाने की गुंजाइश है।

और जहाँ जाने की इजाज़त है वह मश्रूत है अदम तज़ई (बनाओ श्रृंगार न करने) के साथ और उसका मदार भी वही एहतिमाले फ़ित्ना है औरतों में जब बेपर्दगी होती है तब फ़ित्ना होता है।

औरतें भी सुन लें। अगर कपड़े बिल्कुल ही मैले हों तो ख़ैर बदल लो। वे भी सादे वरना हरगिज़ न बदलो। सीधे-साधे कपड़ों में मिल आया करो, मिलने से जो ग़रज़ है वह इस सूरत में हासिल होगी और अख़्लाक की दुरुस्तगी भी होगी।

और अगर यह ख़्याल हो कि इसमें हमारी हिक़ारत होगी तो एक तो जवाब इसका यह है कि नफ़्स की हिक़ारत तो होनी ही चाहिए।

दूसरा जवाब तसल्लीबख़्श यह है कि जब एक बस्ती में इसका रिवाज हो जाएगा सीधी-साधी तरह से मिल लिया करेंगी तो अंगुश्त- नुमाई और तहक़ीर भी न रहेगी। और अगर ग़रीब मज़दूर की बीवी बनकर जाती भी है मगर जिन औरतों को उसके

घर की हालत मालूम है वह तो यही कहेंगी कि निगोड़ी मांगे का कपड़ा और ज़ेवर पहनकर आई है। इस पर इतराती है।

(अत-तबलीग़)

कोई साहब यह शुबहा न करें कि मैं अच्छे लिबास को मना करता हूँ। मैं ख़ुद अच्छे लिबास को मना नहीं करता बल्कि उस मुफ़्सिदा से बचाता हूँ जो इसके साथ लगा हुआ है। वह रिया और अजब है। जो इनसे बच सके वह पहने। (हक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

कपड़े के अच्छे होने के दो मर्तबे हैं। एक यह कि बुरा न हो जिससे अपना दिल ख़ुश हो और दूसरों के सामने ज़लील न होना पड़े। इसका कुछ हर्ज नहीं।

और एक यह कि दूसरों से बढ़ा-चढ़ा हो कि उसकी तरफ़ नज़रें उठें। यानी दूसरे की नज़र में बड़ा होने के लिए पहना जाए यह बुरा और नाजायज़ है। (हक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

रुसूम की पाबंदियों में बूढ़ी औरतों की कोताही

बाज़ औरतों ने मुझसे मुरीद होना चाहा तो मैंने उनसे शर्त लगा दी कि रस्में छोड़नी पड़ेंगी। कहने लगीं कि मेरे कुछ है ही नहीं न बाल न बच्चा, मैं क्या रस्में करूँगी। मैंने कहा करोगी तो नहीं लेकिन सलाह (मश्वरा तो ज़रूर) दोगी।

ये पुरानी बूढ़ियाँ (रस्मों के मामले में गोया) शैतान की ख़ाला होती हैं। ख़ुद अगर न करें तो दूसरों को बताती हैं। चुनांचे देखता हूँ कि जिन औरतों के औलाद नहीं वे ख़ुद तो कुछ करती नहीं लेकिन दूसरों को तालीम देती हैं। कोई पूछे तो क्या उसको शामत सवार हुई है। उसको तो यह मुनासिब था कि तस्बीह लेकर मुसल्ले पर बैठ जातीं। कुछ फ़िक्र तो है नहीं ख़ुदा तआला ने सब फ़िक्रों से ख़ाली रखा था। (काश) वक़्त की क़दर जानतीं मगर यह हरगिज़ न होगा, बस यह मश्ग़ला होगा कि किसी की ग़ीबत कर रही हैं किसी को राय दे रही हैं, गोया ये बड़ी बनती हैं।

बात-बात में दख़ल देती हैं।

याद रखो ज़्यादा बोलने से कुछ इज़्ज़त नहीं होती। इज़्ज़त उसी औरत की होती है जो ख़ामोश रहे। अगर ख़ामोश होकर एक जगह बैठकर अल्लाह का नाम ले (तस्बीह पढ़े) तो उसकी बड़ी क़दर और वक़्अत होती है। मगर बातें करने की जिनको आदत हो जाती है यह कैसे छूट सकती है। ख़्वाह ज़िल्लत-ख़्वारी ही कोई उनकी बात भी कान लगाकर न सुने लेकिन उनको अपनी हाँकने से काम, औरतें उसको सुनकर कहा करती हैं कि बैठ तो जाएँ लेकिन कोई चैन तो लेने दे। मैं कहता हूँ कि तुम अपने मुँह को जब लगा-लगाकर बैठोगी (यानी बिल्कुल ख़ामोश रहोगी तो क्या किसी का सर फिरा है, कोई पागल है) जो तुमसे मुक़ाबला करे। ज़्यादा फ़साद और गुनाह बोलने ही से होते हैं।

वाक़ई ज़्यादा गुनाह हम लोगों के इस ज़बान ही की बदौलत होते हैं। इस मज़्मून को मर्द और औरतें सब याद रखें। लेकिन आजकल मुश्किल यह है कि आँसू बहा लेंगे, आहें भर लेंगे, और सुनकर कहेंगे कि बस जी हमारा क्या ठिकाना है।

साहिबो! इन बातों से काम नहीं चलता। काम तो करने ही से होता है। पस काम करो और बातें न भघारो।

(दुनिया व आख़िरत)

फ़स्ल (2)

औरतों के रुसूम में अस्ल क़ुसूर मर्दों का है

जिसकी वजह यह है कि जिन कामों से औरतों को मना करते हैं उन कामों में मर्दों को भी हज़ (मज़ा) आता है। उनका मना करना बराए नाम होता है। हत्ताकि औरतें जब रस्म करती हैं और मर्द उनको मना करते हैं तो वे जवाब देती हैं कि हमें क्या मिल जाएगा, तुम्हारा ही नाम करेंगी। बस उस वक़्त मर्द ख़ामोश हो

जाते हैं। मालूम हुआ कि नाम करने की ख़्वाहिश उनको ख़ुद भी है। जब उन्हीं के अफ़आल में कोताही है तो उनके महकूमों के अफ़आल में क्यों न होगी।

आप यह न कहें कि औरतें राह पर आती ही नहीं। (यानी बात मानती ही नहीं,) क्योंकि ख़ुदा तआला ने आपको हाकिम और उनको महकूम बनाया है।

क़ुरआन कहता है कि मर्द औरतों पर हाकिम हैं। हाकिम का महकूम पर बड़ा क़ब्ज़ा होता है। यह सिर्फ़ हीला है कि वे मानती नहीं, इसको हम सच जब समझें कि वे खाने में नमक तेज़ कर दें और आप दो-चार मर्तबा कहने के बाद चुपके बैठकर खा लिया करें, मगर दुनिया के कामों में यह कभी नहीं हो सकता। सस्ता तो दीन है, इसको जिस तरह चाहें रखें। बात दर-हक़ीक़त यह है कि औरतों को एक-दो बार नसीहत करके ख़ामोश हो जाने की वजह यह है कि उनका मना करना बराए नाम होता है, (वरना) इन कामों में मर्दों को भी हज़ (लुत्फ़) आता है। (मुनाज़िअ़तुल-मावा)

मर्दों ने औरतों को इमाम बना रखा है

मर्दों ने इन कामों में इमाम भी औरतों ही को बना रखा है। ख़ुद कुछ भी नहीं करते। तक़रीबात (ब्याह-शादी) के तमाम काम औरतों से पूछ-पूछकर करते हैं।

कानपुर में एक बरात आई तो लड़की वाले से अहबाब ने पूछा कि बारात कहाँ ठहराएँ। उसने कहा, इसमें तुम्हें क्या दख़ल है, मुन्नी की अम्माँ से पूछ लो। इतनी-सी बात के लिए चिन्नी-मुन्नी की अम्माँ से पूछने की ज़रूरत थी।

ग़रज़ मर्दों ने ऐसी अपनी महार (नकेल) औरतों के हाथ में दे दी है कि इतनी-इतनी बात में भी उनके ख़िलाफ़ नहीं चल सकते। हालाँकि उनको शरीअत से पूछकर काम करना चाहिए था। बुतकदे से निकलकर मस्जिद में आना चाहिए था। मगर यह तो

पीरानी साहिबा से पूछ रहें हैं कि मदरसे से काबा की तरफ़ जाऊँ या मयकदे की तरफ़। कभी किसी मर्द ने किसी मौलवी से जाकर न पूछा कि शादी में फ़लाँ-फ़लाँ काम करें या न करें। यह इस्तफ़्ता औरतों ही से होते हैं। फिर जैसी वे मुफ़्ती हैं वैसे ही फ़त्वे भी होते हैं। मर्दों को तो बेवक़ूफ़ बनाती हैं और ख़ुद तक़रीबात में ऐसी मुनहमिक होती हैं कि कुछ भी होश नहीं रहता। (अत-तबलीग़, दवाउल-उयूब)

रुसूम से मना करनेवाले दो क़िस्म के लोग

ताज्जुब है कि अकसर मर्द भी औरतों के रुसूम में उनके ताबेअ हो जाते हैं और बाज़ मर्द जो उसमें मुख़ालिफ़त करते हैं, वे दो क़िस्म के हैं। एक तो अहले दीन जो दीन की हैसियत से उनकी मुख़ालिफ़त करते हैं। दूसरे अंग्रेज़ी तालीम-याफ़्ता जो दीनी हैसियत से उनकी मुख़ालिफ़त नहीं करते। हाँ, अक़्ल के ख़िलाफ़ समझते हैं। सो पहले लोग क़ाबिले-क़द्र हैं। बाक़ी दूसरों की मुख़ालिफ़त ऐसी है कि—

فَرَّمِنَ الْمَطَرِ وَوَقَفَ تَحْتَ الْمِيْزَابِ

"बारिश से भाग कर परनाले के नीचे खड़े हो गए।"

वजह यह है कि औरतें तो रुसूम में दो-तीन बार ही उम्र भर में ख़र्च करती होंगी इसपर उनको मलामत की जाती है कि बहुत फ़ुज़ूलख़र्ची करती हैं। और ख़ुद रात-दिन उससे बढ़कर फ़ुज़ूल में मुब्तला हैं। कहीं फ़ोटोग्राफ़ आ रहें हैं, कहीं हारमोनियम है। कहीं विलायती फ़ुज़ूल चीज़ों से कमरा सजाया जा रहा है। छः-छः जोड़े जूते रखे जाते हैं। फ़ैशन के कपड़े क़ीमती-क़ीमती सिलवाए जा रहे हैं। बाज़ लोगों के कपड़े लन्दन सिलने और धुलने जाते हैं। ये लोग रात-दिन इसी क़िस्से में मश्ग़ूल हैं। ख़ुद की तो यह हालत है और औरतों को फ़ुज़ूल ख़र्च बताते हैं।

ये हज़रात जो औरतों को रुसूम से रोकते हैं तो सिर्फ़ इसलिए

कि दो तरफ़ ख़र्च न हों। यह रोकना क़ाबिले क़द्र नहीं। हाँ, दीन की वजह से रोकना अलबत्ता मतलूब है, जिसमें रोकनेवाला अपने नफ़्स को भी शरीक रखता है, यानी वह भी उसका आमिल (उसके मुताबिक़ अमल करने वाला) है। (अल-आक़िलातुल-ग़ाफ़िला)

मर्दों से शिकायत

औरतों की क्या शिकायत, मैं मर्दों से भी कहता हूँ कि शाज़ो-नादिर ऐसा होता होगा कि एक बात को किसी का जी चाहे फिर वह इतना सोच ले कि यह काम अल्लाह व रसूल (सल्ल०) के हुक्म के मुआफ़िक़ है या नहीं। बस जो जिसके जी में आता है वह कर गुज़रता है।

कभी किसी मर्द ने किसी मौलवी से जाकर नहीं पूछा कि शादी में फ़ुलाँ-फ़ुलाँ काम करें या न करें।

और अगर उस काम (रस्म वग़ैरह) में दुनिया की भी कोई मस्लिहत हो तो इस सूरत में यह ख़याल आना तो दरकिनार कि यह काम अल्लाह व रसूल (सल्ल०) के ख़िलाफ़ है या नहीं। अगर कोई याद भी दिलाए कि यह काम जायज़ नहीं, तो कभी न सुने। और जो सुने भी तो खींचतान कर उसको जायज़ ही करके छोड़े। वैसे करना तो एक ही गुनाह था अब यह जहले मुरक्कब हो गया और इसरार अलल-मासियत का मर्तबा और (गुनाह) हो गया।

(अत-तबलीग़)

फ़स्ल (3)

रुसूम व रिवाज के ख़त्म करने के तरीक़े

1. इन रुसूम को ख़त्म करने के लिए दो तरीक़े हैं। एक तो यह कि सब बिरादरियाँ मुत्तफ़िक़ होकर यह सब बखेड़े मौक़ूफ़ कर दें। देखा-देखी और लोग भी ऐसा ही करेंगे, इसी तरह चन्द रोज़ में यह तरीक़ा आम हो जाएगा और करने का सवाब उस शख़्स को मिलेगा और मरने के बाद भी वह

सवाब लिखा जाया करेगा।

2. दीनदार को चाहिए कि न ख़ुद इन रस्मों को करे और जिस तक़रीब में रस्में हों, हरगिज़ वहाँ शरीक न हों। साफ़ इंकार कर दें कि बिरादरी और कुंबे की रज़ामंदी अल्लाह तआला की नाराज़ी के रूबरू कुछ काम न आएगी।
3. इस बात का इल्तिज़ाम कर लो कि बिला पूछे और बिला समझे महज़ अपने नफ़्स के कहने से कोई काम न करो ताकि कमाले ईमान मयस्सर हो। इसी को जनाबे रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

لا يؤمن احدكم حتى تكون هواه تبعا لما جئت به

"तुममें से कोई शख़्स उस वक़्त तक कामिल मोमिन नहीं हो सकता जब तक कि उसकी ख़्वाहिश उन अहकाम के ताबेअ न हो जाए जिनको मैं लाया हूँ।"

(बाज़ लोग) कहते हैं कि हम तो दुनियादार हैं, हमसे कहीं शरीअत निभ सकती है। क्यों साहबो! जिस वक़्त जन्नत सामने की जाएगी उस वक़्त यह कह दोगे कि हम तो दुनियादार हैं, हम कैसे इसमें जाएँ। शरीअत को ऐसी हौलनाक चीज़ फ़र्ज़ कर लिया है कि जो दुनियादारों के बस की नहीं। (हालांकि) शरीअत में बहुत वुसअत है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

रुसूम व रिवाज को ख़त्म करने का शरई तरीक़ा

रस्मो-रिवाज में अमल की तबदीली भी ज़रूरी है, (क्योंकि) सीने से हर्ज (और लुज़ूम) निकलता नहीं, मगर अमल को एक मुद्दत तक बदल देने से। इसी लिए इख़राजे-हर्ज (यानी दिल से उसकी बुराई ख़त्म करने के लिए) ऐसा करने से ज़रूर इंदल्लाह माजूर होगा। इसकी नज़ीर में हदीस शरीफ़ मौजूद हैं।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने एक मर्तबा बाज़ रोग़नी बर्तनों में नबीज़ बनाने को मना फ़रमा दिया था। फिर फ़रमाते हैं—

كنت نهيتكم عن الدباء والحنتم فانبذوا فيها فان الظرف لا يحل شيئا ولا يحرم

यानी पहले मैंने रौग़नी बर्तनों में नबीज़ बनाने को मना कर दिया था, अब इसमें नबीज़ बनाया करो और इल्लत इर्शाद फ़रमाते हैं कि बर्तन न किसी चीज़ को हराम करता है और न हलाल करता है, फिर इसके बावजूद मना फ़रमा दिया था। वजह सिर्फ़ यह थी कि लोग शराब के आदी हैं, थोड़े से नशे को महसूस न कर सकेंगे और इन बर्तनों में पहले शराब बनाई जाती थी, इसलिए ख़म्र (शराब) से पूरा इज्तनाब न कर सकेंगे और गुनाहगार होंगे। पस पूरे इज्तनाब (बचने) का तरीक़ा यही है कि उन बर्तनों में नबीज़ बनाने से मुतलक़न रोक दिया जाए। जब तबीअतें शराब से बिल्कुल मुतनफ़्फ़िर हो जाएँ और ज़रा-से नशे को पचाने लगें तो फिर इजाज़त दे दी जाए।

इसी तरह इन रस्मों की हालत है कि ज़ाहिरी इबाहत को देखकर लोग उसको इख़्तियार करते हैं और उन मुंकिरात को नहीं पहचानते जो उसके ज़िम्न में पाए जाते हैं। तो इसके लिए इस्लाह का कोई तरीक़ा नहीं हो सकता, सिवाए इसके कि चन्द रोज़ तक अस्ल अमल ही को तर्क कर दें, और यह बात कि अस्ल अमल बाक़ी रहे और मुंकिरात आमतौर से दूर हो जाएँ सो हमारे इम्कान से तो बाहर है। जब रसूल (सल्ल०) ही ने यह तरीक़ा इख़्तियार फ़रमाया था तो हम क्या हैं कि उसके सिवा तदबीरें इख़्तियार करते फिरें। जब एक तदबीर अक़्लन भी मुफ़ीद मालूम होती है और नक़्लन भी साबित हो चुकी तो ज़रूरत ही क्या है कि उससे बचा जाए। (ततहीरे रमज़ान)

सब रस्मों को एक बार मना करने के मुताल्लिक़ हज़रत थानवी (रह०) की राय

एक शख़्स ने शादी की रस्मों के मुताल्लिक़ मुझसे कहा कि एक दम से सब रस्मों को मना न किया करो, एक-एक करके मना

किया करो। मैंने कहा, "सलाम है, जब मैं एक को मना करूँगा, एक को मना न करूंगा मुझसे बदगुमान होंगे कि रुसूम होने में तो दोनों बराबर हैं फिर एक को क्यों मना किया और एक को क्यों मना न किया। फिर बार-बार मना करने से क़ल्ब में तंगी पैदा होगी कि यह तो रोज़ एक बात को मना ही करते रहते हैं। ख़ुदा जाने कहाँ तक क़ैद करेंगे। इसलिए मना तो सबको करूंगा, मगर मजबूर नहीं करता कि सबको एकदम से छोड़ दो, तुम छोड़ने में एक-एक करके छोड़ दो। बहरहाल अगर किसी में बहुत से उयूब हों तो बता तो दो सबको मगर पहले एक को छुड़ा दे फिर दूसरे को छुड़ा दे फिर तीसरे को छुड़ा दे।" (ततहीर रमज़ान)

रुसूम की मुख़ालिफ़त करनेवाला वली और ख़ुदा का मक़बूल बन्दा

बाज़ लोग तान व तश्नीअ़ के ख़ौफ़ से रुसूम पर अमल कर लेते हैं, मगर जिस शख़्स में अहकाम की तामील का माद्दा होगा वह रुसूम को तर्क करने में किसी की तान व तश्नीअ़ का कभी ख़्याल न करेगा और बाहिम्मत मुसलमान से यह कुछ बईद नहीं, लेकिन आजकल मुख़ालिफ़ते आम्मा की वजह से ऐसा शख़्स क़ाबिले तारीफ़ है। ऐसा शख़्स आजकल वली और ख़ुदा का मक़बूल बन्दा है। (अल-आक़िलातुल ग़ाफ़िला)

रुसूम की पाबंदी करनेवाले लानत के मुस्तहिक़ हैं

हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि छः शख़्सों पर मैं और हक़ तआला और फ़रिश्ते लानत करते हैं, मिंजुम्ला उनके एक वह शख़्स है जो रस्मे जाहिलियत को ताज़ा करे।

(एक हदीस में) रसूल (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि सबसे ज़्यादा बुग्ज़ अल्लाह तआला को तीन शख़्सों के साथ है, उनमें से एक वह शख़्स भी है जो इस्लाम में आकर जाहिलियत का काम

बरतना चाहे। मज़ामीन मज़्कूरा की बहुत-सी अहादीस मौजूद हैं।

इस बारे में तुम लोग शरीअत का मुक़ाबला कर रहे हो। ख़ुदा के लिए इन कुफ़्फ़ार की रुसूम को छोड़ दो।

(इस्लाहुर्रुसूम, अज़्लुल-जाहिलिया)

तमाम मुसलमानों की ज़िम्मेदारी

हर मुसलमान मर्द-औरत पर लाज़िम है कि इन सब बेहूदा रस्मों को मिटाने पर हिम्मत बाँधे और दिल व जान से कोशिश करे कि एक रस्म भी बाक़ी न रहे और जिस तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के मुबारक ज़माने में सादगी से काम हुआ करते थे उसके मुताबिक़ अब फिर होने चाहिए। जो मर्द और जो औरतें यह कोशिश करेंगे उनको बड़ा सवाब मिलेगा।

हदीस शरीफ़ में आया है कि सुन्नत का तरीक़ा मिट जाने के बाद जो कोई (उस सुन्नत के तरीक़े को) ज़िंदा कर देता है उसको सौ 100 शहीदों का सवाब मिलता है। (बहिश्ती ज़ेवर)

औरतों से दरख़्वास्त

औरतें चाहें तो सारे रस्मो-रिवाज ख़त्म हो जाएँ

मैं औरतों से दरख़्वास्त करता हूँ कि उनको चाहिए कि ज़ालिनूस मर्दों को (रुसूम से) रोकें। उनका रोकना बहुत मुअस्सिर है। एक तो इस वजह से कि इन क़िस्सों (रुसूम-रिवाज) की असल बानी वही हैं। जब ये ख़ुद रुकेंगी और मर्दों को रोकेंगी तो कोई भी क़िस्सा न होगा।

इसके अलावा उनका लब व लहजा और उनका कलाम बेहद मुअस्सिर होता है। उनका कहना दिल में घुस जाता है। इसलिए ये चाहें तो बहुत जल्द रोक सकती हैं।

(अत-तबलीग़, दवाउल-उयूब)

फ़स्ल (1)

मुख़्तलिफ़ रस्में

माइयों में बिठलाने और उब्टन मलने की रस्म

शादी से पहले ही ये मुसीबतें उस बेचारी पर आ जाती हैं कि पहले उसको सख़्त क़ैदख़ाने में रखा जाता है जिसको आपकी इस्तलाह में माइयों बैठना कहते हैं। बिरादरी और कुंबे की औरतें जमा होकर लड़की को अलग मकान में मोतकिफ़ कर देती हैं। यह रस्म भी चन्द ख़ुराफ़ात से मुरक्कब है।

अव्वल उसको अलग बिठलाने को ज़रूरी समझना, ख़्वाह गर्मी हो या जिसको गो हकीम जालीनूस और बुक़रात भी कहें कि उसको कोई बीमारी हो जाएगी, कुछ भी हो मगर यह फ़र्ज़ क़ज़ा न हो।

एक कोठरी में बन्द कर दी जाती है, जहाँ उसको हवा तक नहीं पहुँचती। सारे घर से बोलना बन्द हो जाता है। अपनी ज़रूरियात में दूसरे की मुहताज हो जाती है। अपने आप पाख़ाना-पेशाब को नहीं जा सकती। इन रस्मों की बदौलत दुनिया की सज़ाएँ भुगतें।

ग़ज़ब यह है कि उस क़र्नतीना में नमाज़ तक नहीं पढ़तीं, क्योंकि अपने मुँह से पानी नहीं माँग सकतीं और ऊपर वालियों (बूढ़ी औरतों) को अपनी ही नमाज़ की परवाह नहीं, उसकी क्या ख़बर लें। वह नमाज़ जो मरते वक़्त भी माफ़ नहीं, मगर इसमें वह भी क़ज़ा की जाती है।

और अगर उसके बीमार होने का एहतिमाल हो तो किसी

मुसलमान को ज़रर पहुँचाने का अलग गुनाह होगा जिसमें सारी बिरादरी शरीक है।

हया और बे-हयाई का इम्तिहान भी औरतें करती हैं, चुनांचे लड़की के गुदगुदी उठाती हैं, अगर वह हँस पड़े तो बे-हया और न हँसे तो हयादार! क्या आप कह सकते हैं कि इन मुंकिरात के बावजूद ये रस्में जायज़ हो सकती हैं? हाशा व कल्ला।

दीन से क़ता नज़र यह अक़्ल के भी तो ख़िलाफ़ है कि उसको आदमी से हैवान बल्कि जमादात (पत्थर) बना दिया जाए। उसका खाना-पीना बन्द किया जाता है, महज़ इसलिए कि अगर कम खाने की आदत न होगी तो सुसराल में खाएगी। फिर पाख़ाना जाएगी जो क़ानूने हया के ख़िलाफ़ है, हत्ताकि बहुत जगह देखा गया है कि फ़ाक़ा करते-करते लड़कियाँ बीमार हो गईं "ला हौ-ल व ला कुव्व-त इल्ला बिल्लाह" जब दीन को कोई छोड़ता है तो अक़्ल भी सल्ब हो जाती है। शादी के मफ़ासिद को कहाँ तक बयान करूँ, जिस रस्म को चाहे देख लीजिए। वह दीन के ख़िलाफ़ होने के साथ अक़्ल से भी ख़ारिज साबित होगी।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन, इस्लाहुर्रुसूम, अल-इफ़ाज़ात)

उब्टन मलने की रस्म

अगर बदन की सफ़ाई और नर्मी की मस्लिहत से बुटना (उब्टन) मलने की ज़रूरत हो तो इसका मुज़ायक़ा नहीं। मगर मामूली तौर से बिला किसी रस्म की क़ैद के (पर्दे की रिआयत के साथ) मल दो, बस फ़रागत हो गई। उसका इस क़द्र तोमार क्यों मचाया जाए। (इस्लाहुर्रुसूम)

सलामी और मलीदा की रस्म

(औरतें) दूल्हा की ज़ियारत बारात के तमाशे को देखना फ़र्ज़ और तबर्रुक समझती हैं। जिस तरह औरत को अपना बदन अजनबी मर्द को दिखाना जायज़ नहीं, इसी तरह बिला ज़रूरत

अजनबी मर्द को देखना भी एहतिमाले-फ़ित्ना की वजह से ममनूअ़ है। (लेकिन कुछ भी हो) नौशा घर में बुलाया जाता है, और उस वक़्त पूरी बे-पर्दगी होती है। और बाज़ बातें बे-हयाई की उससे पूछी जाती हैं जिसका गुनाह और बे-ग़ैरती होना मुहताजे बयान नहीं। नौशा के घर में जाने के वक़्त कोई एहतियात नहीं रहती। बड़ी गहरी पर्दा करने वालियाँ आराइश व ज़ेबाइश किए हुए उसके सामने आ खड़ी होती हैं और यह समझती हैं कि यह तो इसके शर्म का वक़्त है। यह किसी को न देखेगा। भला यह ग़ज़ब की बात नहीं? अव्वल तो यह कैसे मालूम हुआ कि यह किसी को न देखेगा? मुख़्तलिफ़ तबीअतों के लड़के होते हैं, जिनमें अकसर तो आजकल शरीर भी हैं। फिर अगर उसने न भी देखा तो तुम क्यों उसको देख रही हो।

हदीस शरीफ़ में है कि लानत करे अल्लाह तआला देखनेवाले पर और (उसपर) जिसको देखे। ग़रज़ इस मौक़े पर दूल्हा और औरतें सब गुनाह में मुब्तला होते हैं।

जूता छुपाने और हँसी मज़ाक़ करने की रस्म

दूल्हा जब घर में जाता है तो सालियाँ उसका जूता छुपाकर जूता छुपाई के नाम से हज़ारों रुपये तक लेती हैं।

शाबाश! एक तो चोरी करें और उल्टा इनाम पाएँ। अव्वल तो ऐसी हँसी कि किसी की चीज़ उठाई और छुपा दी। हदीस में इसकी मुमानिअत आई है।

फिर यह कि हँसी और दिल्लगी का ख़ास्सा यह है कि इससे एक बे-तकल्लुफ़ी पड़ती है। भला अजनबी मर्द (बहनोई) से ऐसा ताल्लुक़ व इर्तिबात पैदा करना ख़ुद शर्म के ख़िलाफ़ है। फिर उस इनाम का हक़ लाज़िम समझना यह भी जबरन और तअद्दी (ज़्यादती) हुदूद है। बाज़ जगह जूता छुपाने की रस्म नहीं मगर उसका इनाम बाक़ी है। क्या वाहियात बात है। (इस्लाहुर्रुसूम)

दुल्हन का क़ुरआन ख़त्म कराने की रस्म

सवाल : यहाँ रस्म है कि दुल्हन की रुख़्सती के वक़्त सब औरतें दुल्हन का ख़त्मे क़ुरआन कराती हैं। जिसकी तफ़्सील यह है कि मुअल्लिमा जिसने लड़की को क़ुरआन पढ़ाया है वह आती है और वह लड़की दुल्हन बनी हुई है, क़ुरआन पढ़ना शुरू करती है। घर में शोर व गुल मचता रहता है और लड़केवालों का जल्द रुख़्सत कराने का तक़ाज़ा होता है। मगर जब तक लड़की क़ुरआन ख़त्म न कर ले रुख़्सत नहीं की जाती। ख़त्म करने पर नक़दी रुपये, दुपट्टे, जोड़े दिए जाते हैं। इसको इतना ज़रूरी समझा जाता है कि इसके बग़ैर लड़की की रुख़्सती नहीं की जाती है। बाज़ वक़्त ऐसा भी होता है कि ख़त्मे-क़ुरआन भी नहीं होने दिया जाता है। कुछ लोग इसे नाजायज़ क़रार देकर इसकी मुख़ालिफ़त भी करते हैं। पर्स उलमाए दीन से इस्तफ़ता है कि रुख़्सती के वक़्त ख़त्म क़ुरआन की कुछ असलियत है या नहीं और इस रस्म को तोड़नेवाला गुनाहगार है या मुस्तहिक़े सवाब?

जवाब : अहले इल्म के समझने के लिए इतना ही काफ़ी है कि ग़ैर लाज़िम को लाज़िम समझना बिद्अत, ज़लालत (गुमराही) और उसके तर्क (न करनेवाले) या मानेअ (मना करनेवाले) पर मलामत करना उसके बिद्अत होने को और ज़्यादा मुअक्किदा कर देता है।

और ग़ैर अहले-इल्म के लिए इतना और इज़ाफ़ा किया जाता है कि अगर दुल्हन के सुसरालवाले भी उन्हीं मसालिह की बिना पर जिसके सबब मायके में इस रस्म पर अमल किया जाता है उसका इल्तिज़ाम करें कि (यानी) रुख़्सती के बाद जब तक पूरा क़ुरआन ख़त्म न कर लें। मायके न भेजें तो क्या मायकेवाले इसको पसंद करेंगे? अगर पसंद न करें तो दोनों में फ़र्क़ क्या है?

अगर तबीअत में सलामती और इंसाफ़ हो तो अब मानने में

कोई उज़्र नहीं। बाक़ी जमूद का कोई इलाज नहीं।

(इम्दादुल-फ़तावा)

सब बारातियों को किराया देने की रस्म

किराया का अपने पास से देना ख़्वाह दिल चाहे या न चाहे महज़ नमूद व इज़्हारे शान के लिए है। इसी तरह आनेवालों का यह समझना कि किराया उनके ज़िम्मे वाजिब है, यह एक क़िस्म का जब्र है और रिया और जब्र का ख़िलाफ़े शरअ़ होना ज़ाहिर है।

(इस्लाहुर्रुसूम)

तबआ़त में जब्र हराम है और जब्र के क्या यही मानी हैं कि लाठी- डंडा मारकर किसी से कुछ ले लिया जाए, बल्कि यह भी जब्र है कि अगर न देंगे तो बदनाम होंगे। फिर लेनेवाले ख़ुद झगड़कर-मांगकर लेते हैं और बेचारा अपनी इज़्ज़त के लिए देता है। यह सब हराम है।

बग़ैर पैसे लिए हुए बहू को न उतरने देने की रस्म

बहू को डोली में से उतारने नहीं देतीं कि जब तक उनको हक़ न दिया जाए कहा जाता है कि हम दुल्हन को घर में घुसने न देंगे जब तक हमारा हक़ न दे दिया जाएगा। यह भी जब्र फ़िश्शरअ़ है जो कि हराम है। अगर यह इनाम है तो इनाम में जब्र कैसा? और अगर उजरत है तो उजरत की तरह होना चाहिए। उस वक़्त मजबूर करना इत्तबाअ रस्म के सिवा और कुछ भी नहीं।

(इस्लाहुर्रुसूम)

दुल्हन को गोद में उतारने की रस्म

एक रस्म यह है कि बहू डोली से (यानी किसी भी सवारी से) ख़ुद नहीं उतरती बल्कि दूसरे उतारते हैं। हट्टी-कट्टी, मोटी हथनी गोद में चढ़ी फिरती है। कभी गिर भी जाती है और चोट भी खाती है। बाज़ जगह दूल्हा बीवी को उतारता है 'ला हौ-ल व

ला क़ुव्व-त' इन लोगों को शर्म भी नहीं आती। क्या यहँ सब ख़राबियाँ हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा के निकाह में हुई थीं? हरगिज़ नहीं।

शादी ऐसी करो जैसी हुज़ूर (सल्ल०) ने की

لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِي رَسُولِ اللهِ أُسْوَةٌ حَسَنَةٌ

बाज़ जगह दूल्हा को गोद में लेकर उतारा जाता है किस क़द्र बे-ग़ैरती की बात है! (इस्लाहुर्रुसूम)

फ़स्ल (2)

बहू के पैर धुलवाने की रस्म लग्व है

एक अमल मशहूर है कि बहू के पैर धोकर घर में जगह-जगह पानी छिड़का जाता है। (तज़्किरातुल मौज़ुआत में इसको मौज़ूअ लग्व क़रार दिया है।) (इस्लाहुर्रुसूम)

नई दुल्हन को ज़रूरत से ज़्यादा शर्म करना

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा की रुख़्सती के बाद अगले दिन हुज़ूर (सल्ल०) हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास तशरीफ़ ले गए और उनसे कहा कि थोड़ा पानी पिलाओ। हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा ख़ुद उठकर एक प्याले में पानी लाईं। इससे मालूम हुआ कि नई दुल्हन को शर्म में इस क़द्र मुबालिग़ा करना कि चलना-फिरना और अपने हाथ से कोई काम करना ऐब समझा जाए। यह भी सुन्नत के ख़िलाफ़ है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

नई दुल्हन के लिए क़ैदख़ाना

दुल्हन ब्याह हो जाने के बाद वह अजाइबुल-मख़्लूक़ात में से हो जाती है। दूर-दूर से देखने वालियाँ आती हैं और वह इस तरह से इंसान से जिमाद बना दी जाती है कि न उसकी आँख रहे न

ज़बान रहे, न किसी तरफ़ देख सकती है, न बोल सकती है। पाख़ाना-पेशाब को जाना हो तो दूसरे पकड़कर ले जाते हैं। मुँह पर हाथ होता है बल्कि हाथ पर मुँह होता है। क्योंकि दुल्हन दोनों घुटनों पर हाथ रखकर हाथों पर मुँह रखती है। उस वक़्त दुल्हन बिल्कुल मुर्दा बदस्त ज़िंदा हो जाती है। ऊपर वाले जिस तरह रखें उस तरह रहना पड़ता है। यह सब क्या ख़ुराफ़ात हैं। कौन-सी अक़्ल इन बातों को अच्छा बताती है और इस क़र्नतीना में नमाज़ तो बिल्कुल ही नाजायज़ हो जाती है। तिलावत वग़ैरह का तो ज़िक्र ही क्या।

सब काम तो होंगे, लेकिन जब नमाज़ का वक़्त आएगा तो वह ख़िलाफ़े हया है। नमाज़ कैसे पढ़वाएँ और अगर कोई दुल्हन नमाज़ का नाम ले और वुज़ू के लिए पानी भी माँगे तो बूढ़ी औरतें काँय-काँय करके उसके पीछे पड़ जाती हैं, कहती हैं कि अफ़सोस अब तो वह ज़माना आ गया है कि नई दुल्हनों का दीदा भी नहीं छुपता। (अत-तबलीग़)

अगर कभी वह अपने मुँह से पानी तक भी माँग बैठे तो चारों तरफ़ से गुल मच जाए कि हाय-हाय कैसी बे-हयाई का ज़माना आ गया। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

मुँह दिखाई की रस्म

बहू को उतारकर घर में लाते और बिठाते हैं। उसके बाद बहू का मुँह खोला जाता है और सबसे पहले सास या ख़ानदान की सबसे बड़ी औरत बहू का मुँह देखती है और कुछ मुँह दिखाई देती है जो साथ वाली के पास जमा होता रहता है। इसकी ऐसी पाबंदी है कि जिसके पास मुँह दिखाई न हो, वह हरगिज़-हरगिज़ मुँह नहीं देख सकती। ग़रज़ इसको वाजिबात में से क़रार दिया है जो सरीह हुदूदे शरीआ से तअद्दी (ज़्यादती) है। फिर इसकी वजह समझ में नहीं आती कि उसके ज़िम्मे मुँह पर हाथ रखना यह क्यों फ़र्ज़

किया गया है। इस तरह अगर कोई न करे तो तमाम बिरादरी में बे-हया, बे-इज़्ज़त, बे-शर्म, मशहूर हो जाए। बल्कि ऐसा ताज्जुब करते हैं कि जैसे कोई मुसलमान काफ़िर बन जाए। फिर बतलाइए यह ताअद्दी है या नहीं।

इसी शर्म में अकसर दुल्हने नमाज़ क़ज़ा कर डालती हैं। अगर साथ वाली ने पढ़वा दी तो ख़ैर वरना मस्तूरात के मज़हब में उसको इजाज़त नहीं कि ख़ुद उठकर या किसी से कह-सुनकर नमाज़ का इंतिज़ाम कर ले। इसको हरकत करना, बोलना-चालना, अगर बदन में खुजली उठे तो खुजलाना, अगर जमाई या अंगड़ाई का ग़ल्बा हो तो जमाई या अंगड़ाई लेना या नींद आने लगे तो लेटे रहना, अगर पेशाब-पाख़ाना की ख़ता होने लगे तो उसकी इत्तलाअ़ तक करना भी औरतों के मज़हब में हराम बल्कि कुफ़्र है। ख़ुदा जाने उसने क्या जुर्म किया था कि सख़्त काली कोठरी में यह मज़्लूमा क़ैद की गई है।

फिर सब औरतें मुँह देखती हैं और बाज़ शहरों में यह ख़ुराफ़ात है कि मर्द भी दुल्हन का मुँह देखते हैं। अस्तग़फ़िरुल्लाह, नऊज़ु बिल्लाह। (इस्लाहुर्रुसूम)

बहू के आने से अगले दिन उसके अज़ीज़ व अक़ारिब दो-चार गाड़ियाँ और मिठाई वग़ैरह लेकर आते हैं। इसका नाम चौथी है। इसमें भी इल्तिज़ाम मा-ला यलज़्ज़म की इल्लत लगी हुई है। इसके अलावा यह रस्म कुफ़्फ़ारे हिन्द से माख़ूज़ है और तशब्बुह बिल्कुफ़्फ़ार का ममनूअ़ होना ज़ाहिर है। (इस चौथी में बहू के भाई वग़ैरह) रिश्तेदार जो नामहरम भी होते हैं, बुलाए जाते हैं। बहू के पास अलग मकान में बैठते हैं। अकसर औक़ात ये लोग शरअन नामहरम भी होते हैं। मगर इसकी कुछ तमीज़ नहीं होती कि नामहरम के पास तंहा मकान में बैठना ख़ुसूसन ज़ेब व ज़ीनत के साथ। किस क़द्र गुनाह और बेइज़्ज़ती की बात है!

लफ़्ज़ देवर का इस्तेमाल मुनासिब नहीं

फ़रमाया देवर का लफ़्ज़ जो हमारे यहाँ मुस्तामिल है, बहुत बुरा है। 'वर' हिन्दी में शौहर को कहते हैं और दे संस्कृत शब्द द्वितीय का मुखफ़्फ़फ़ है जिसके मानी सानी (दूसरे) के हैं। पस देवर के मानी दूसरा शौहर के हुए। बाज़ जाहिलों के यहाँ देवर को शौहर के क़ायम मक़ाम समझा जाता है। इसलिए यह लफ़्ज़ बदलने के क़ाबिल है। इसी तरह मुझे साला का लफ़्ज़ बहुत बुरा मालूम होता है। (मल्फ़ूज़ात अशर्फ़िया)

हर रुख़्सती में ग़ल्ला मिठाई और जोड़े देने की रस्म

निकाह के बाद साल दो साल तक बहू की रवानगी के वक़्त कुछ मिठाई और कुछ नक़द जोड़े वग़ैरह तरफ़ैन से बहू के हमराह कर दिए जाते हैं और अज़ीज़ों में भी ख़ूब दावतें होती हैं। मगर वही जुर्माने की दावत कि बदनामी से बचने या नामवरी और सुर्ख़रूई हासिल करने का सारा बखेड़ा होता है। फिर उसमें मुआवज़ा व मुसावात का पूरा लिहाज़ होता है। बल्कि बाज़ औक़ात ख़ुद शिकायत व तक़ाज़ा करके दावत खाते हैं। वहाँ से दो-तीन मन जिंस मसूलन सेवय्याँ, चावल, आटा, मेवा वग़ैरह भेजा जाता है। और दूल्हा-दुल्हन का जोड़ा दिया जाता है। यह ऐसा फ़र्ज़ और ज़रूरी है कि गो सूदी रुपया क़र्ज़ लेना पड़े, मगर यह क़ज़ा न हो। ग़रज़ थोड़े दिनों तक यह आओ-भगत सच्ची या झूठी रहती है फिर उसके बाद कोई नहीं पूछता कि भाई कौन हो? सब ख़ुशियाँ बनाने वाली झूठी ख़ातिरदारी करने वाले अलग हुए, अब जो मुसीबत पड़े भुगतो। काश! जिस क़द्र रुपया बेहूदा उड़ाया है उन दिनों के लिए इससे कोई जायदाद ख़रीदी जाती या तिजारत का सिलसिला शुरू कर दिया जाता तो किस क़द्र राहत होती। (इस्लाहुर्रुसूम)

आप जिन रुसूम को मना करते हैं दूसरे लोग क्यों नहीं मना करते?

एक शख़्स ने मुझसे दर्याफ़्त किया कि आप जिन रुसूम को मना करते हैं और लोग क्यों नहीं मना करते? मैंने उनसे कहा कि यह सवाल जैसे आप हमसे करते हैं और लोगों से क्यों नहीं करते हैं? आप जिन रुसूम को मना नहीं करते फ़लाँ क्यों करता है? अगर इसकी तहक़ीक़ ज़रूरी है और आपको तरद्दुद है तो जैसे हम पर सवाल होता है, तो उन पर भी होता है यह अजीब अंधेर की बात है।

मौलाना ख़लील अहमद साहब से किसी ने अर्ज़ किया कि आपने उस तक़रीब में शिरकत फ़रमाई और फ़लाँ शख़्स ने यानी मैंने शिरकत नहीं की। यह क्या बात है? हज़रत ने जवाब में फ़रमाया कि भाई हमने फ़त्वे पर अमल किया और उसने तक़्वा पर अमल किया, यह तो तवाज़ोअ़ का जवाब है। मगर इसी तरह का सवाल मौलाना महमूद हसन साहब से किसी ने किया था। हज़रत ने मुहक़्क़िक़ाना जवाब दिया कि अवामुंनास के मफ़ासिद की जैसी उसको ख़बर है, हमको नहीं। हज़रत ने हक़ीक़त को ज़ाहिर फ़रमा दिया। (अल-इफ़ाज़ात)

बाब 19

दस्तूरुल-अमल शादी

हुज़ूर (सल्ल०) के तरीक़े के मुताबिक

शादी करने की ज़रूरत

शरीअत ने निकाह को मसनून क़रार दिया है और रुसूम को इसका जुज़ नहीं क़रार दिया। जनाब रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने इस तक़रीब को करके दिखलाया और क़ुरआन शरीफ़ में है– "लक़द का-न लकुम फ़ी रसूलिल्लाहि उस्वतुन ह-स-न।"

जिसके मानी यह हैं कि हक़ तआला फ़रमाते हैं कि हमने आपकी ज़ाते-मुबारक में अच्छा नमूना दिया है। नमूना देने से क्या ग़रज़ होती है? यही कि उसके मुवाफ़िक़ दूसरी चीज़ तैयार हो।

ख़ूब याद रखिए कि हक़ तआला ने अहकाम नाज़िल किए जो बिल्कुल मुकम्मल क़ानून है और उनका अमली नमूना रसूलुल्लाह (सल्ल०) को बनाया। सो अगर आपके आमाल नूमने के मुवाफ़िक़ है तो सहीह हैं, वरना ग़लत हैं। अगर नमाज़ आपकी हुज़ूर (सल्ल०) की नमाज़ के मुवाफ़िक़ है तो नमाज़ है, वरना कुछ भी नहीं।

इसी तरह मामलात और तर्ज़े मआशिरत को समझ लीजिए। सबमें यही हुक्म है। हक़ तआला ने हमारे पास किसी फ़रिश्ते को रसूल बनाकर नहीं भेजा। इसमें हिक्मत यही है कि अगर फ़रिश्ता आता तो वह हमारे लिए नमूना नहीं बन सकता था। उसको न खाने की ज़रूरत होती है, न पहनने की, न अज़्दवाज (ब्याह-शादी), न मआशिरत की। उन चीज़ों के अहकाम में वह सिर्फ़ यह करता कि हमको पढ़कर सुना देता।

हक़ तआला ने यह नहीं किया बल्कि हमारी जिन्स से पैग़म्बर बनाए कि वे हमारी तरह खाते-पीते भी हैं अज़दवाज व ताल्लुक़ात भी रखते हैं, तमक्कुन व मआशिरत के भी ख़ूगर हैं और उनके साथ किताबें भेजीं ताकि किताब में अहकाम हों। और वह ख़ुद बनफ़्से नफ़ीस उनकी तामील करके दिखलाएँ ताकि हमको सहूलत हो। जितनी बातें इंसान को पेश आती हैं सब आपको पेश आईं। ख़ुद हुज़ूर (सल्ल०) ने बीवियाँ रखीं और अपनी औलाद का निकाह किया। अब आप देख लीजिए कि कौन-सा फ़ेल हमारा नमूने के मुवाफ़िक़ है। कोई तक़रीब ख़ुशी की होती है तो हम नहीं देखते कि (हुज़ूर (सल्ल०) के) दस्तूरुल-अमल में क्या है।

(मुनाज़िअ़तुल-हवा)

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का निकाह और रुख़्सती

निकाह के वक़्त हुज़ूर (सल्ल०) ने एक सहाबी से फ़रमा दिया कि जो कोई मिल जाए उसे बुला लो पहले से कोई एहतिमाम न किया, न उसके लिए मज्मा किया गया और न कोई ख़ास एहतिमाम हुआ। हालांकि हुज़ूर (सल्ल०) अगर चाहते तो आसमान के फ़रिश्तों को भी बुला लेते। आपने सिर्फ़ चन्द आदमियों को बुलाया। उनमें हज़रत अनस (रज़ि०), हज़रत तल्हा (रज़ि०), हज़रत ज़ुबैर (रज़ि०) और एक-दो सहाबी और थे। और यह सुनकर हैरत होगी कि हज़रत अली (रज़ि०) मौजूद न थे। आपकी ग़ैर-मौजूदगी में निकाह मुअल्लक़ कर दिया गया। जब हज़रत अली (रज़ि०) को ख़बर पहुँची तब आपने क़बूल किया। अब रुख़्सती सुनिए, निकाह के बाद उम्मे-ऐमन से फ़रमा दिया कि हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा को पहुँचा दो। वे बुर्क़ा (चादर) पहनाकर, हाथ पकड़कर जाकर पहुँचा आईं। (अल-ग़र्ज़) हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा को उम्मे-ऐमन के हमराह हज़रत अली

(रज़ि०) के यहाँ पहुँचवा दिया। न पालकी थी, न रथ था, न सवारी थी। हज़रत फ़ातिमा अपने पाँव चली गईं।

आपने उम्मत को नमूना दिखा दिया कि यह किया करो। ये सारी बातें क़िस्सा-कहानी हैं या इस वास्ते की गई थीं कि हम लोग सीखें?

साहिबो! यह दोनों जहाँ की शहज़ादी की रुख़सती है जिसमें न धूमधाम, न मयाना-पाल्की, न बारात। हम लोगों को लाज़िम है कि अपने पैग़म्बर सरदारे दो जहाँ (सल्ल०) की पैरवी करें और अपनी इज़्ज़त को हुज़ूर (सल्ल०) की इज़्ज़त से बढ़कर न समझें।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

रुख़सती करते वक़्त मुनासिब वक़्त का लिहाज़ करना चाहिए

(आजकल) रुख़सती के वक़्त माँ-बाप कुछ ख़्याल नहीं करते कि यह वक़्त मुनासिब है या नहीं, जब चाहें बारात के साथ कर देते हैं। चाहे रास्ते में डाकू ही मिल जाएँ। भला लड़केवालों को तो क्या पड़ी है कि इन बातों का ख़्याल करें। मगर लड़कीवालों को तो समझकर रुख़सत करना चाहिए।

अकसर अस्र के वक़्त बारात चलती है और लड़की के माँ-बाप भी ग़ज़ब करते हैं कि उसी वक़्त रुख़सत कर देते हैं। शायद यह समझते हों कि अब हमारी चीज़ नहीं रही वरना हिफ़ाज़त की अब पहले से ज़्यादा ज़रूरत है। क्योंकि ज़ेब व ज़ीनत की हालत में है, ख़ुदा जाने क्या बात पेश आए। जब इंसान दीन छोड़ता है तो अक़्ल भी रुख़सत हो जाती है

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

ब्याह-शादी तो सबसे आसान अमल है

इसके मुताल्लिक़ शरीअत में कितनी राहत की तालीम है, बख़िलाफ़ उन रुसूम के जो हमने ईजाद कर रखी हैं कि उनमें

कितनी मुश्किलात हैं। देखिए निकाह कितना मुख़्तसर है कि कोई चीज़ ऐसी मुख़्तसर नहीं है। सब चीज़ों में पैसा लगता है मगर इसमें एक पैसा भी सर्फ़ नहीं होता। आदमी को रहने के लिए मकान की ज़रूरत होती है उसमें भी पैसा लगता है। खाने-पीने में पैसा लगता है लेकिन निकाह में एक पैसा भी नहीं लगता, क्योंकि निकाह का रुक्न है ईजाब व क़बूल। सिर्फ़ ज़बान से दो लफ़्ज़ कहना है, उसमें क्या लगा।

अगर यह कहो कि निकाह में लगता क्या नहीं? छुहारे तक़सीम होते हैं और मह्‌र में तो पैसा लगता ही है। इसका जवाब यह है कि छुहारे तक़सीम करना वाजिब नहीं। रहा मह्‌र सो अकसर उधार होता है। असल चीज़ जिसकी मफ़र नहीं वह अक़्द है और अक़्दे-निकाह में एक पैसे का भी ख़र्च नहीं।

रहा वलीमा सो वह भी सुन्नत है, वाजिब और फ़र्ज़ नहीं। फिर वह निकाह के बाद का क़िस्सा है और वलीमा भी पहले ज़माने में सुन्नत था और आजकल हमने उसको वाजिब समझ रखा है इस वक़्त जो अकसर रस्मी वलीमा होता है। वह महज़ तफ़ाख़ुर के लिए होता है। उसमें रुपया बिल्कुल बर्बाद ही जाता है। ग़ौर किया जाए तो हमारा ज़्यादातर रुपया तफ़ाख़ुर ही में बर्बाद होता है।

(अल-इत्मामुन नैमतुल इस्लाम, मुल्हिक़ा मुहासिने इस्लाम)

ब्याह शादी में सादगी ही मतलूब है

अहादीस से तो यही साबित होता है कि निकाह निहायत सादा चीज़ है। बाज़ रिवायात में है कि जब हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का निकाह हुआ था तो हज़रत अली (रज़ि०) मज्लिस में मौजूद भी न थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ुत्बा पढ़कर यूँ फ़रमाया था— "अगर अली इस निकाह को मंज़ूर करें!" जब हज़रत अली (रज़ि०) को ख़बर हुई तो उन्होंने फ़रमाया कि मैंने

क़बूल किया। कैसा सादा निकाह है जहाँ दूल्हा भी मौजूद न था।

बाज़ लोग इस सादगी की वजह में यह कह देते हैं कि आपके पास था ही क्या? फ़क़रो-फ़ाक़े की हालत थी। ऐसा समाह रखनेवालों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि आप (सल्ल०) सरवरे कायनात थे, फिर जहां जिब्राईल दरबानी करें वहाँ क्या कमी हो सकती थी। अगर आप चाहते तो मलाइका आते और जन्नत से जोड़े जहेज़ लाते। हज़ूर (सल्ल०) की शान क्या पूछते हो! औलिया अल्लाह अजीब-अजीब शान के हुए हैं कि उनकी मुरादें मुस्तरद नहीं हुईं। क्या हुज़ूर (सल्ल०) ख़्वाहिश करते और वह मुस्तरद होती? हाशा व कल्ला (हरगिज़ नहीं)

(अल-आक़िलातुल-ग़ाफ़िलाह)

शादी का मुख़्तसर निहायत आसान और सादा तरीक़ा

मंगनी में ज़बानी वादा काफ़ी है। न हज्जाम की ज़रूरत न जोड़ा और निशानी और शीरनी की हाजत, और जब दोनों (लड़का-लड़की) निकाह के क़ाबिल हो जाएँ, ज़बानी या बज़रिए ख़त व किताबत कोई वक़्त ठहराकर दुल्हा को बुला लें। एक उसका सरपरस्त और एक ख़िदमत-गुज़ार उसके हमराह काफ़ी है। न बरी की ज़रूरत न बरात की हाजत। निकाह के फ़ौरन या एक-आध रोज़ मेहमान रखकर उसको रुख़्सत कर दें। या अपने घर में उसके सिपुर्द कर दें, न सुसराल के जोड़ों की ज़रूरत, न चौथी बहूड़ों की हाजत और जब चाहें दुल्हनवाले बुला लें और जब मौक़ा हो दूल्हावाले बुला लें अगर तौफ़ीक़ हो तो शुक्रिया में हाजतमंदों को कुछ दे दो।

किसी काम के लिए क़र्ज़ मत दो। अलबत्ता वलीमा मसनून है, वह भी ख़ुलूसे नीयत व इख़्तिसार के साथ न कि फ़ख़्र व इश्तहार के साथ। वरना ऐसा वलीमा भी जायज़ नहीं। हदीस में ऐसे वलीमे को शर्रुत्तआम फ़रमाया गया है। न ऐसा वलीमा

जायज़ न उसका क़बूल करना जायज़। (इस्लाहुर्रुसूम)

सादगी और सहूलत के साथ शादी करने का उमदा नमूना

फ़रमाया कि मियाँ मुहम्मद मज़हर (हज़रत थानवी रह० के सबसे छोटे भाई) की शादी बिल्कुल सादा हुई है। सिर्फ़ एक बेहली थी, उसमें मज़हर और एक मौलवी शब्बीर जो उस वक़्त बच्चे थे साथ थे। मौलवी शब्बीर को इसलिए साथ ले लिया था कि शायद घर में आने-जाने या किसी बात के कहलाने की ज़रूरत हो। वहाँ पहुँचकर मालूम हुआ कि वहाँ भी कोई गड़बड़ नहीं, ख़ास-ख़ास अज़ीज़ों की दावत है जिनकी तादाद 6-7 से ज़्यादा न थी और ये लोग वे थे जो ख़ानदान के थे। मगर ये लोग महज़ इस वजह से ख़फ़ा थे कि रुसूम क्यों नहीं की गई। मुझको जब यह मालूम हुआ तो मैंने लड़कीवालों से कहा कि साफ़ कह दो कि अगर जी चाहे शरीक हो जाएँ वरना अपने घर बैठे रहें। हमें उनके शरीक करने की ज़रूरत नहीं। उन लोगों ने दावत ही क़बूल न की थी मगर मेरा यह सफ़ाई का जवाब सुनकर सब सीधे हो गए और सब हाथ धो-धोकर दस्तरख़्वान पर आकर बैठ गए।

बाद में मालूम हुआ की लड़की की माँ इस इख़्तिसार (और सादगी) से बड़ी शुक्रगुज़ार हुईं और कहने लगीं कि अगर ज़्यादा बखेड़ा होता तो मेरे पास एक सोने का हार था वह भी जाता और क़र्ज़ लेना पड़ता।

ये लड़की की माँ मेरे घर की हक़ीक़ी ख़ाला होती थीं, इसलिए मैं भी उनको उर्फ़न ख़ाला ही कहता था। मैंने उनसे पूछा कि लड़की को किस वक़्त रुख़्सत करेंगी? कहने लगीं कि जल्दी तो हो नहीं सकती, इसलिए कि जल्दी में न तो कुछ खाओगे न ठहरोगे। मैंने कहा कि खाना तो पकाकर साथ करो, जहाँ भूख लगेगी खा लेंगे और ठहरने की कोई ज़रूरत नहीं है। जब उन्होंने फिर अपनी राय का इआदा किया तब मैंने कहा बहुत अच्छा जब

तुम रुख़्सत करोगी हम उसी वक़्त चले जाएंगे, लेकिन यह बात याद रखो कि अगर देर से रुख़्सत किया तो ज़ुहर की नमाज़ का वक़्त रास्ते में हो जाएगा और मैं अपने एहतिमाम में लड़की की नमाज़ क़ज़ा न होने दूंगा तो लड़की को गाड़ी से उतरना पड़ेगा और यह भी तुम समझती हो कि लड़की नई-नवेली होगी और ज़ेवर पहने-ओढ़े होगी। इत्र, तेल, ख़ुश्बू वग़ैरह भी लगा होगा और यह मशहूर है कि कीकर वग़ैरह दरख़्त पर भूतनी (चुड़ेल) वग़ैरह रहा करती हैं। सो अगर कोई भूतनी चिमट गई तो मैं ज़िम्मेदार नहीं। क्योंकि औरतों के मज़ाक़ के मुताबिक़ गुफ़्तुगू थी, समझ में आ गई। फ़ौरन कहने लगीं न भाई मैं नहीं रोकती। जब तुम्हारा जी चाहे जा सकते हो। मैंने कहा, फ़ज्र की नमाज़ के बाद फ़ौरन ही सवार कर दो उन्होंने क़बूल कर लिया।

पैसे बिखेरने और लुटाने की रस्म

अब जब सुबह हुई और चलने का वक़्त हुआ तो एक रस्म है "बिखेर" यानि की दुल्हन को रुख़्सती के वक़्त बस्ती के अंदर-अंदर कुछ रुपये पैसे की बिखेर की जाती है (यानी लुटाए जाते हैं)। मैंने यह किया कि कुछ रुपये मसाकीन को तक़सीम कर दिए और कुछ मस्जिदों में दे दिए। महज़ इस वजह से कि लोग बुख़्ल व दनायत का शुब्हा न करें।

इस सादगी के मुताल्लिक़ यह बात सुनी गई है कि लोग कहते हैं कि शादी उसको कहते हैं कि जिसमें क़ल्ब के अंदर ताज़गी, शेफ़्तगी, इंशिराह मालूम होता है। यह दुनियादारों ने कहा। वाक़ई शरीअत पर अमल करने से एक नूर पैदा होता है।

(अल-इफ़ाज़ातुल-यौमिया)

एक निकाह में हज़रत थानवी (रह०) की सरपरस्ती का क़िस्सा

हम एक शादी में दूल्हा के सरपरस्त बनकर गए थे और यह

पहले से तय हो गया था कि कोई रस्म न होगी। ख़ैर अस्र के बाद निकाह तो हो गया और मग़्रिब के बाद खाना आया तो नाई हाथ धुलाकर मुंतज़िर था कि अब कुछ मिलेगा। मगर कुछ भी न मिला। खाने के बाद फिर मुंतज़िर रहा। आख़िर एक तबाक़ मेरे सामने रखकर (गोया झोली और दामन फैला कर) ज़बान से कहा हुज़ूर हमारा हक़ दीजिए। हमने कहा कि कैसा हक़? हक़्क़े क़ानूनी या हक़्क़े रस्मी? मैंने कहा, अपने आक़ा से कहो, उन्होंने तमाम रस्में बन्द होने को क्यों मंज़ूर करा लिया था? उस वक़्त एक मौलवी साहब भी खाने में मौजूद थे। उन्होंने आहिस्ता से कहा कि यह तो रस्म नहीं है बल्कि हक़्क़े ख़िदमत है। ख़िदमत-गुज़ार को देना अच्छी बात है, मगर मैंने बाआवाज़े बुलन्द कहा कि हक़्क़े ख़िदमत अपने ख़ादिम को दिया जाता है या दुनिया भर के ख़ादिमों को? मेरे नाई ने मेरी ख़िदमत की उसको अगर हम कुछ दें तो उसका हक़ हो सकता है। दूसरे के ख़िदमत-गुज़ार का हम पर क्या हक़ है? उस तक़रीर से मौलवी साहब की आँखें खुल गईं।

सुबह हुई तो फ़र्द ख़र्च के मुताल्लिक़ गुफ़्तुगू हुई। अहले रुसूम में एक फ़र्द होती है कंम्पनियों की जिसमें उनका नेग लिखा हुआ होता है। मगर किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि हमारे सामने पेश करे। मेरे एक दोस्त थे उनके ज़रिए से पेश हुई। उन्होंने कहा कि इसमें क्या राय है। मैंने कहा, वही रात की राय। और मैंने यह भी कहा कि लोगों को शर्म नहीं आती फ़र्द पेश करते हुए, नाई से काम तो ख़ुद अपना कराया, सक़्क़े से पानी भराया और उजरत दें हम?

अपने मेहमान से उजरत दिलाना किस क़द्र ग़ैरत की बात है, मगर इन रस्मों की पाबंदी में अक़्ल तो रुख़सत हुई थी ग़ैरत भी जाती रही।

अब रुख़्सती का वक़्त आया लड़कीवालों ने तक़ाज़ा किया कि पालकी या मयाना लाओ। हम बग़ैर पालकी या डोली के रुख़्सती न करेंगे। मैंने कहा कि हम (इस तरह) रुख़्सती ही नहीं चाहते। साथियों ने कहा कि क्या राय है? मैंने कहा कि राय यही है कि निकाह तो हो ही चुका है, हम अपने घर जाते हैं। तुम ख़ुद दुल्हन को हमारे पीछे-पीछे लाओगे, अब सीधे हो गए।

फिर कहने लगे जहेज़ के लिए छकड़ा लाओ। मैंने कहा, जहेज़ ही नहीं ले जाते। आख़िर छकड़ा भी ख़ुद लाए। औरतें कोसती रहीं; मगर हम मज़्लूम थे, ज़ालिम के कोसने से मज़्लूम का नुक़सान नहीं होता। ग़रज़ ऐसी बरकत का निकाह हुआ कि दोनों तरफ़ का एक पैसा ख़र्च न हुआ (क्योंकि बरकतवाला निकाह वही होता है जिसमें कम-से-कम ख़र्च हो। जैसा कि हदीस में भी आया है)।

उसी दूल्हा के एक दूसरे भाई का निकाह रुसूम के साथ हुआ तो वह क़र्ज़दार हो गया। मैंने कहा, एक निकाह हुआ तो उसमें क़र्ज़ हुआ। अगर दूसरा हुआ तो उसमें ख़त्म ही हो जाएगा। उस क़र्ज़दार की दुल्हन कोसती थी माँ-बाप को भी कि उनका क्या नुक़सान हुआ, रोटी की कमी तो हम पर हो गई। (यानी तंगी हो गई)

अगर मेरी लडकियाँ होतीं तो मैं किस तरह शादी करता

अगर ऐसा इत्तिफ़ाक़ मुझको पड़ा होता तो इस वक़्त ख़्याल यह है कि मैं यूं करता कि इस काम के लिए वतन आने की ज़रूरत न समझता और सफ़र के मसारिफ़ में इतना रुपया ज़ाया न करता। लड़केवालों को लिख देता कि लड़का और एक उसका मख़्दूम सरपरस्त और दो उसके ख़ादिम कुल चार आदमी यहाँ आ जाएँ और उसी मकान में या कोई और अच्छा वसीअ़ मकान किराये पर लेकर उनका क़याम कराता और लड़कियों को अपने

घर का जोड़ा पहनाता और लड़कों (दामाद) को मजबूर करता कि अपने घर का पहनकर आओ। निकाह की मज्लिस में किसी को एहतिमाम करके न बुलाता। मुहल्ले की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिए सबको ले जाता और नमाज़ के बाद कह दिया जाता कि सब साहब ज़रा ठहर जाएं। वही मज्मा एलान व शहादत के लिए काफ़ी होता और ख़ुद या किसी आलिम की वसातत (ज़रिए) से निकाह पढ़ देता और रुपया दो रुपया के ख़ुरमा (छुहारे) तक़सीम कर देता। उसमें मस्जिद में निकाह पढ़ने की भी तामील हो जाती।

वहाँ से मकान पर आकर उसी वक़्त या जिस वक़्त मुतवक़्क़े होता लड़कियों को बिला जहेज़ के उस किराये के मकान में रुख़्सत कर देता और एक मोतबर ख़ादिमा को उसके हमराह कर देता और दूसरे रोज़ किराये के मकान से अपने सुकूनत के मकान पर बुलाता और एक दो रोज़ रखकर फिर उस किराये के मकान में भेज दिया जाता। देखता कि लड़कियाँ मानूस हो चुकी हैं तो लड़कों के साथ उनकी बस्ती को रवाना कर देता।

जहेज़ में पाँच-पाँच जोड़े पचास-पचास रुपये का ज़ेवर और पाँच-पाँच सौ रुपये की जायदाद सहराई देता, बर्तन, पलंग, ख़्वानपोश, बटुए, गोटे, डिब्बे, मिठाई वग़ैरह कुछ न देता और दूल्हा या दुल्हन के किसी अज़ीज़ क़रीब को एक पर्चा (टुकड़ा) न देता और तमाम उम्र मुतफ़र्रिक़ तौर पर लड़कियों को वक़्तन-फ़वक़्तन जो चीज़ देने को मेरा दिल चाहता, न कि बिरादरी व कुंबे अहले उर्फ़ की ख़्वाहिश के मुताबिक़ उनको देता रहता और जायदाद अगर उन बस्तियों में होती उनके इंतिज़ाम का काम उनके सिपुर्द करता और अगर अपने वतन में होती ख़ुद इंतिज़ाम करता और उनको उनके महासिल (आमदनी) शशमाही या सालाना हिसाब के साथ देता रहता।

बाक़ी मैं इससे ज़्यादा नहीं कह सकता। मैं क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं न ज़ोर डालना चाहता हूँ न दख़ल देना पसंद करता हूँ। सिर्फ़ अपने ख़्याल का इज़्हार कर दिया। दूसरों को मजबूर व तंग नहीं करता। अगर कोई शख़्स दर्जे मुबाह तक वुसअत करे तो उसको दिल में बुरा न समझूँगा, गुनाहगार न कहूँगा, शरअन क़ाबिले मलामत न जानूँगा।

(इम्दादुल-फ़तावा)

बाब 20

फ़स्ल (1)

रुख़्सती के बाद ज़ेबाइश व नुमाइश और सजावट का शरई ज़ाबता और उसूली बहस

यह अम्र क़ाबिले तहक़ीक़ है कि कोई शख़्स ज़ीनत ही के लिए और उसी क़सद से किसी चीज़ का इस्तेमाल करे मसलन उमदा लिबास पहने तो यह जायज़ है या नहीं? तो उसका जवाब यह है कि जायज़ है, मगर इत्तलाक़ के साथ नहीं जिससे अहले तफ़ाख़ुर (रियाकार और मुतकब्बिरीन) को गुंजाइश मिल सके बल्कि इसमें तफ़्सील है जिसको मैं मुवारिद से समझा हूँ।

वह तफ़्सील यह है कि उमदा लिबास अपना जी ख़ुश करने के लिए या अपने को ज़िल्लत से बचाने के लिए या दूसरे शख़्स के इकराम के लिए पहने तो जायज़ है। हाँ, उमदा लिबास इस नीयत से पहनना हराम है कि अपनी अज़्मत ज़ाहिर की जाए और दूसरों की नज़र में बड़ाई साबित की जाए।

ख़ुलासा-यह हुआ कि लिबास (वग़ैरह) में चार दर्जे हैं। एक तो ज़रूरत का दर्जा है। दूसरा आसाइश का, तीसरा मानी ज़ीनत का, ये तीन दर्जे तो मुबाह हैं, बल्कि पहला दर्जा वाजिब है और चौथा दर्जा नुमाइश का है। यह हराम है और यह तफ़्सील व हुक्म लिबास ही के साथ ख़ास नहीं बल्कि हर चीज़ में यही चार दर्जे हैं। एक ज़रूरत, दूसरे आसाइश, तीसरे आराइश, चौथे नुमाइश ग़रज़ दूसरों की नज़र में अपनी वक़्अत बढ़ाने को ज़ीनत करना

हराम, बाक़ी नफ़्से ज़ीनत हराम नहीं।

(अत-तबलीग़, क़दीम वाज़, अन-निअ़मुल-मर्ग़ूबह़)

1. (बिल्फ़ाज़े-दीगर) ज़रूरत के भी दर्जे हैं। एक यह कि जिसके बग़ैर काम न चल सके, तो मुबाह क्या वाजिब है।
2. दूसरे यह कि एक चीज़ के बग़ैर काम तो चल सकता है मगर उसके होने से राहत मिलती है, अगर न हो तो तकलीफ़ होगी, गो काम चल जाएगा, ऐसे सामान रखने की भी इजाज़त है।
3. एक सामान इस क़िस्म का है जिसपर कोई काम नहीं अटकता। न उसके बग़ैर तकलीफ़ होगी मगर उसके होने से अपना दिल ख़ुश होगा तो अपना जी ख़ुश करने के वास्ते भी किसी सामान के रखने का बशर्त वुसअत मुज़ायक़ा नहीं, यह भी जायज़ है।
4. एक यह कि दूसरे को दिखाने और उनकी नज़र में बड़ा बनने के लिए कुछ सामान रखा जाए, यह हराम है।

और ज़रूरत व ग़ैर ज़रूरत का तैयार यह है कि जिसके बग़ैर तकलीफ़ हो वह ज़रूरी है और जिसके बग़ैर तकलीफ़ न हो वह ग़ैर ज़रूरी है। अब अगर इस (ग़ैर ज़रूरी) में अपना दिल ख़ुश करने की नीयत हो तो मुबाह है और अगर दूसरों की नज़र में बड़ा बनने की नीयत हो तो हराम है। इस मेयार के मुआफ़िक़ अमल करना चाहिए। (ग़रीबुद-दुनिया, अत-तबलीग़)

नई दुल्हन को ज़रूरत से ज़्यादा शर्म करना

हिन्दुस्तान में ऐसी बुरी रस्म है कि निकाह हो जाने के बावजूद दूल्हा-दुल्हन में पर्दा रह जाता है। हालांकि हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा की रुख़्सती के बाद अगले दिन हुज़ूर (सल्ल०) हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा के पास तशरीफ़ ले गए और उनसे कहा कि थोड़ा पानी पिलाओ। हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाह

अन्हा ख़ुद उठकर एक प्याले में पानी लाईं, फिर हज़रत अली (रज़ि०) से पानी मंगाया। जिससे साफ़ मालूम हुआ कि हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा का पानी लाना हज़रत अली (रज़ि०) के सामने था।

इससे मालूम हुआ कि नई दुल्हन को शर्म में इस क़द्र मुबालग़ा करना कि चलना-फिरना और अपने हाथ से कोई काम करना ऐब समझा जाए, यह भी सुन्नत के ख़िलाफ़ है। ज़रा अपनी दुल्हनों को देखिए कि साल भर मुंह पर हाथ रहते हैं।

(मुनाज़िअ़तुल-हवा, इस्लाहुर्रुसूम)

निकाह के बाद मियाँ-बीवी में अलैहदगी

बाज़ अक़्लमंद लोग रुख़सत के वक़्त शौहर से कहते हैं कि ख़बरदार अभी लड़की से कुछ कहना नहीं। यह बहुत ही वाहियात बात है।

दर्मियमाँ क़अ़रे दरिया तख़्त बन्दम करदा ई
बाज़ मी गोई दामने तरमकुन होशियार बाश

यानी तूने मुझे लकड़ी के तख़्ते से बाँधकर दरिया की गहराई में डाल दिया है और कहता है कि देख होशियार रहना दामन तर न होने पाए। (अज़्लुल जाहिलिया)

निकाह के बाद बीवी से अलग रहना दुशवार होता है। लड़कों की इसमें क्या शिकायत। कभी तुमने भी ऐसा किया था कि ऐसी हालत के बाद अलाहिदा रहते? (रूहुस्सियाम)

फ़स्ल (2)

पहली रात शबे अव्वल में नफ़्ल नमाज़

(शबे ज़ुफ़्फ़ाफ़) नमाज़ पढ़ना तो किसी हदीस में देखा नहीं मगर बाज़ उलमा से सुना है कि पहले दो रकअत शुकराने की पढ़कर अल्लाह तआला का शुक्र करे कि तूने मुझको हराम से

बचाया और हलाल इनायत फ़रमाया। फिर उसके बाद दुआएँ पढ़े (जो आगे आ रही हैं)। पस सुन्नत समझकर नमाज़ न पढ़े, महज़ शुक्र के तौर पर पढ़ने में मुज़ायक़ा नहीं। (इम्दादुल-फ़तावा)

शरीअत ने अक़्ल के फ़त्वे को रद्द करके यह हुक्म दिया है कि निकाह करो और बीवी के सामने हया को अलग करो। हया में ऐसा गुलू मौजूद है कि बीवी शौहर से या शौहर बीवी से भी हया करे। (अन-फ़ासे ईसा)

हया वग़ैरह उस वक़्त तक मतलूब हैं, जब तक कि मूजिबे क़ुर्ब हों और अगर मूजिबे बुअ्द (दूरी का ज़रिआ) होने लगें तो अब उनकी ज़िद मतलूब होगी। बाज़ लोग ग़ल्बा हया की वजह से औरत पर क़ादिर नहीं होते। उनको चाहिए कि हया की तकलीफ़ को कम कर दें और दिल्लगी मज़ाक़ करें। (अन-फ़ासे ईसा)

दस्तूरुल अमल

1. सलाम किया करो इससे मुहब्बत बढ़ती है। जो शख़्स पहले सलाम करता है, उसको ज़्यादा सवाब मिलता है। चलनेवाला (दाख़िल होने वाला) बैठनेवाले को और कम उम्रवाला ज़्यादा उम्रवाले को सलाम करे। मुसाफ़ह करने से दिल साफ़ होता है और गुनाह माफ़ होते हैं। (तालीमुद्दीन)
2. किसी के पास जाओ तो उससे सलाम या कलाम ज़रूर करो। ग़रज़ कि किसी तरह से उसको अपने आने की ख़बर दो, बग़ैर इत्तलाअ़ के (छुपकर) आड़ में ऐसी जगह मत बैठो कि उसको तुम्हारे आने की ख़बर न हो। (आदाबे-ज़िंदगी)
3. जब मिलो तो कुशादा रवी से मिलो, बल्कि तबस्सुम (मुस्करा) कर मिलना मुनासिब है, ताकि वह ख़ुश हो जाए।
4. बीवी से बढ़कर दुनिया में कोई दोस्त नहीं हो सकता। और दोस्तों से बातें करना भी इबादत है क्योंकि क़ल्ब (मोमिन का जी ख़ुश करना) भी इबादत है। (हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

5. हदीस में है कि "बीवी के मुँह में जो एक लुक़्मा शौहर रख-दे तो यह भी सद्क़ा है। इसका भी सवाब मिलता है।

(रफ़उल-इल्तबास)

6. ग़ैरत का मुक़्तज़ा यही है कि औरत की मह्र की माफ़ी क़बूल न करो, बल्कि औरत माफ़ भी कर दे फिर भी अदा कर देना चाहिए क्योंकि यह ग़ैरत की बात है। बिला ज़रूरत औरत का एहसान न ले। (अन-फ़ासे ईसा)

दिल्लगी और मज़ाक़ की ज़रूरत

बाज़ लोग ग़ल्बा हया की वजह से औरत पर क़ादिर नहीं होते। उनको चाहिए कि हया की तकलीफ़ को कम कर दें और दिल्लगी मज़ाक़ करें। (अन-फ़ास ईसा)

जिस मज़ाक़ (यानी मज़ाक़-दिल्लगी) से मक़सूद अपना या मुख़ातिब का इंशिराहे क़ल्ब व रफ़उल क़बाज़ (यानी बे-तकल्लुफ़ बनाना हो) तो वह ऐन मस्लिहत है। (अन-फ़ासे ईसा)

किसी का दिल ख़ुश करने के लिए ख़ुश तबई (हँसी-मज़ाक़ करने का) मुज़ायक़ा नहीं, मगर इसमें दो बातों का लिहाज़ रखो। एक यह कि झूठ न बोलो, दूसरे यह कि उस शख़्स का दिल न दुखाओ। (तालीमुद्दीन)

मर्द को इज़्हारे मुहब्बत करना चाहिए

बाज़ मर्दों को बड़ा शुब्हा होता है कि मर्द तो इज़्हारे मुहब्बत करता है और औरत इज़्हारे मुहब्बत नहीं करती। मगर उसकी वजह यह है कि मर्द के लिए तो इज़्हारे मुहब्बत ज़ीनत है और औरत के लिए ऐब है। उसको हया व शर्म मानेअ़ होती है, गो उसके दिल में सब कुछ होता है। (अल-इफ़ाज़ातुल-यौमिया)

अरब और हिन्दुस्तान के रिवाज का फ़र्क़ और ज़रूरी तंबीह

फ़रमाया, अरब के अंदर रस्म है कि शौहर जब अव्वल शब

(पहली रात) में दुल्हन के पास आता है तो दुल्हन शौहर के आते वक़्त ताज़ीम के लिए खड़ी होती है और सलाम करती है और शौहर अपने ज़ायद कपड़े जो उतारता है उनको लेकर सलीक़े से मौक़े पर रखती है। ख़्वाजा साहब ने अर्ज़ किया कि बहुत अच्छी बात है। फ़रमाया कि वाक़ई अच्छी बात है, मगर हिन्दुस्तान के लिए मैं इसको पसंद नहीं करता, इसलिए कि वहाँ पर तो यह रस्म बे-तकल्लुफ़ी के दर्जे में है और यहाँ पर कज तबई। (यानी तबीअतों में सलामती न होने के सबब से उसका नतीजा आज़ादी व बे-हयाई हो जाएगा जो चीज़ हया का सबब हो उसको बाक़ी रखने को जी चाहता है।)

दुल्हन की पेशानी पर 'क़ुल हुवल्लाह' लिखने की रस्म

बाज़ जगह यह रस्म कि 'क़ुल हुवल्लाह' दुल्हन की पेशानी पर लिखते हैं। 'क़ुल्हु वल्लाह' तो इख़्लास का मज़मून है। दुल्हन से उसको कोई मुनासिबत नहीं मालूम होती। मगर लोग इसी ख़्याल से लिखते हैं कि मियां-बीवी में मुहब्बत व इख़्लास रहे। पस इख़्लास के मानी मुहब्बत के समझे वरना आयात हुब्ब (मुहब्बत वाली आयतें) लिखे। अव्वल तो इख़्लास के मानी मुहब्बत ही ग़लत हैं। अस्मातू इलाहिया में बरकत ज़रूर है, मगर जबकि मुनासिबत हो (मस्लन आयाते हुब्ब) पढ़ ली जाएँ, नीज़ अगर लिखना ही हो तो मुनासिब आयात लिखवाई जाएँ, फिर दुल्हन की पेशानी पर लिखाने के लिए महरम होना भी शर्त है यानी बाज़ लोग नामहरम से लिखवाते हैं। यह हरगिज़ जायज़ नहीं, इसकी इस्लाह भी ज़रूरी है। (अल-इफ़ाज़ातुल यौमिया, दीन व दुनिया)

शबे-ज़ुफ़ाफ़ की मख़्सूस दुआएँ

सुन्नत यह है कि पहले उसके मूए पेशानी (पेशानी के बाल) पकड़कर अल्लाह तआला से बरकत की दुआ करे और बिस्मिल्लाह पढ़कर यह दुआ पढ़े—

اَللّٰهُمَّ اِنِّیْ اَسْئَلُكَ خَیْرَهَا وَخَیْرَ مَا جَبَلْتَ عَلَیْهِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنْ شَرِّهَا وَشَرِّ مَا جَبَلْتَ عَلَیْهِ

और जिस वक़्त सुहबत का इरादा करे तो यह दुआ पढ़े—

بِسْمِ اللّٰهِ اَللّٰهُمَّ جَنِّبْنَا الشَّیْطَانَ وَجَنِّبِ الشَّیْطَانَ مَا رَزَقْتَنَا

पहली दुआ की बरकत यह है कि ज़ौजा (बीवी) हमेशा ताबेअ़ रहेगी, दूसरी दुआ की बरकत यह है कि अगर औलाद होगी तो सालेह होगी और शैतान के ज़रर से महफ़ूज़ रहेगी।

शबे-ज़ुफ़ाफ़ में सुबह की नमाज़ का एहतिमाम

बीवी मियाँ को नमाज़ से नहीं रोकती, लेकिन आप देख लें की शादी करके शबे-ज़ुफ़ाफ़ में कितने लोग नमाज़ की पाबंदी करते हैं। मौजूदा हालत यह है कि निकाह-शादी में दूल्हा-दुलहन का तो क्या कहना सारे बाराती और घरवाले ही बेनमाज़ी हो जाते हैं और उस वक़्त दुल्हन तो बिल्कुल 'मुर्दा बदस्त ज़िंदा' हो जाती है। ऊपर वाले (बड़ी-बूढ़ी औरतें) जिस तरह रखें उस तरह रहना पड़ता है और उनकी दीनदारी की यह हालत होती है कि दुल्हन से पर्दे में वह काम तो करा देंगी जो हद से ज़्यादा बे-हयाई के हैं। यह सब काम तो होंगे, लेकिन जब नमाज़ का वक़्त आएगा तो वह ख़िलाफ़े हया है। नमाज़ कैसे पढ़वाएँ और ख़ुद दुल्हन बोल भी नहीं सकती और अगर कोई दुल्हन नमाज़ का नाम ले और पानी माँगे तो बूढ़ी औरतें काएँ-काएँ करके उसके पीछे पड़ जाती हैं।

लेकिन अगर क़ल्ब में नमाज़ का दाई और फ़िक्र हो तो वह नमाज़ी आदमी को नमाज़ के वक़्त बेचैन कर देता है। बग़ैर नमाज़ के उसको चैन ही नहीं आता ख़्वाह कुछ भी हो जाए।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

शबे-अव्वल में बाज़ औरतों की बे-हयाई

पहली रात में जब दूल्हा-दुल्हन तनहाई में होते हैं तो बाज़ औरतें कान लगाती-फिरती हैं। यह बड़ी बेशर्मी की बात है।

शब का वक़्त बेहया का वास्ता होता है, जिसमें बेहया औरतें झांकती-ताकती हैं और एक हदीस के मज़्मून के मुताबिक़ लानत के दायरे में दाख़िल होती हैं।

सुबह के वक़्त बे-हयाई होती है कि शबे ख़्वाबी (सोनेवाला) बिस्तर चादर वग़ैरह देखते हैं। किसी का राज़ मालूम करना मुतलक़न हराम है। बिलख़ुसूस ऐसी बे-हयाई की बात की शोहरत करना कि सब उसको जानते हैं। किस क़द्र बे-ग़ैरती की बात है। मगर अफ़सोस है कि ऐन वक़्त पर किसी को नागवार नहीं मालूम होता। दूल्हा से बाज़ बातें बे-हयाई की पूछी जाती हैं। जिसका गुनाह और बे-ग़ैरती होना मुहताजे बयान नहीं।

अव्वल शब में बाज़ इलाक़ों में (ख़ुसूसन देहातों में) तो औरतें कान लगाती-फिरती हैं। क्योंकि यहाँ पर यह भी रस्म है कि पहली रात में दुल्हन दूल्हा से नहीं बोलती। अगर कोई बोली तो सुबह चर्चा होता है कि ऐसी बेशर्म है कि सारी रात मियाँ से बोलती रही। बाज़ रस्में (और बातें) तो ऐसी हैं कि उनका ज़िक्र भी नहीं किया जा सकता। (अत-तबलीग़)

हज़रत सय्यद साहब और मौलाना अब्दुल हई साहब का वाक़िआ

फ़रमाया कि जब हज़रत सय्यिद साहब बरेलवी का अक़्द हो गया (यानी शादी हो गई) तो आपने रात को घर में रहने की इजाज़त चाही। क्योंकि शादी से पहले आप बाहर ही सोया करते थे। रात ख़त्म होने के बाद सुबह को हज़रत को ग़ुस्ल करने में ज़रा देर हो गई और जमाअत की दूसरी रकअत में आकर शामिल

हुए। नमाज़ ख़त्म होने के बाद मौलाना अब्दुल हई साहब रहमतुल्लाह अलैहि ने बयान फ़रमाया कि लोग इत्तबाऐ-सुन्नत का बड़ा दावा करते हैं और तकबीरे ऊला तो अलग रही नमाज़ की रकअतें तक छोड़ते हैं। क्या और सवेरे जल्दी गुस्ल करने का इंतिज़ाम नहीं हो सकता था? इसपर सय्यद साहब ने मौलाना अब्दुल हई साहब (रह०) से, जो कि सय्यद साहब के मुरीद थे, निहायत नर्मी से फ़रमाया कि मौलवी साहब आइंदा ऐसा नहीं होगा, मुझसे बड़ी कोताही हुई।

हज़रत थानवी (रह०) ने फ़रमाया कि मेरी राय में जब इसरार करता हुआ देखे तब अदब से कह दे। और अगर नाज़ुक मिज़ाज हो तो न कहे कि बुरा मानेगा।

दावते वलीमा

वलीमे के फ़वाइद व हुदूद

एक जदीद नेमत का हासिल होना इज़्हार व शुक्रे सुरूर व ख़ुशी का सबब है और आदमी को माल ख़र्च करने पर अमादा करता है और इस ख़्वाहिश की पैरवी करने से सख़ावत की आदत व ख़सलत पैदा होती है और बुख़्ल की आदत जाती रहती है। इसके अलावा बहुत से फ़वाइद हैं। इससे बीवी और उसके कुंबे के साथ भलाई और हुस्ने सुलूक पाया जाता है, क्योंकि उसके माल का ख़र्च करना और लोगों को उसके लिए जमा करना इस बात की दलील है कि ख़ाविंद के नज़दीक बीवी की वक़्अत है।

इसी वजह से आंहज़रत (सल्ल०) ने इसकी तरफ़ रग़बत और हिर्स दिलाई और ख़ुद भी उसको अमल में लाए और आँहज़रत (सल्ल०) ने वलीमे की भी कोई हद मुक़र्रर नहीं की, मगर औसत दर्जे की की है।

और आप (सल्ल०) ने हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अन्हा के वलीमे में लोगों को मलीदा खिलाया था और आपने अपनी बाज़ बीवियों का वलीमा दो मुद (तक़रीबन एक सेर) जौ से भी किया है और आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, जब तुममें से किसी को वलीमा मसनून में बुलाया जाए तो चला आए।

(अल-मसालिहुल अक़्लिया, स०-211)

वलीमे का मसनून तरीक़ा

वलीमे का मसनून तरीक़ा यह है कि बिला तकल्लुफ़ व बिला तफ़ाख़ुर (बग़ैर फ़ख़्र के) इख़्तिसार के साथ जिस क़द्र जो मयस्सर हो जाए अपने ख़ास लोगों को खिलाए। (इस्लाहुर्रुसूम)

मसनून वलीमे की हुदूद व शराइत

वलीमा उसी हद तक मसनून है जिसको इस्लाम ने मुतय्यन कर दिया है। (1) जिसमें गुर्बा भी हों (2) और हस्बे ताक़त (अपनी हैसियत के मुताबिक़) हो (3) सूदी क़र्ज़ से न किया गया हो (4) रिया और नामवरी का दख़ल न हो (5) तकल्लुफ़ात न हों (6) ख़ालिसन अल्लाह की खुशनूदी के लिए हो। ऐसा वलीमा ही मसनून है।

हुज़ूर (सल्ल०) का वलीमा

हज़रत इमाम रज़ियल्लाहु तआला अन्हु का वलीमा क़दरे जौ का खाना था और ज़ैनब बिन्ते जहश (रज़ि०) के वलीमे में एक बकरी ज़िबह की गई थी और गोश्त-रोटी लोगों को खिलाई गई थी और हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अन्हा का वलीमा (इस तरह हुआ था कि) जो कुछ सहाबा (रज़ि०) के पास था सब जमा कर लिया गया और साथ बैठ कर खा लिया गया था। हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा (अपने वलीमे की बाबत फ़रमाती हैं कि) न ऊँट ज़िबह हुआ न बकरी, साद-बिन-उबादा के घर से दूध का एक प्याला आया था, बस वही वलीमा था। (इस्लाहुर्रुसूम)

हज़रत अली (रज़ि०) का वलीमा

हज़रत अली (रज़ि०) ने वलीमा किया और वलीमे में यह सामान था— चन्द साअ़ जौ (जो साढ़े तीन सेर के क़रीब होता है) और कुछ ख़ुरमा और कुछ मलीदा। (इस्लाहुर्रुसूम)

दावत हलाल माल से करो, अगरचे दाल-रोटी हो

दावत में इसकी हमेशा रियाअत करो कि हलाल खाना खिलाओ। ख़ुद हराम खाओ तो खाओ, दूसरे को तो न खिलाओ। देखो हराम खाने से दिल में ज़ुल्मत (तारीकी) होती है और अहलुल्लाह को पता भी चल जाता है और उनको सख़्त तकलीफ़

होती है। हत्ताकि कभी क़य हो जाती है। जैसे मौलाना ज़फ़र हुसैन साहब कांधलवी की मशहूर करामत थी कि मौलाना को मुश्तबह खाना कभी हज़्म नहीं हुआ, उसी वक़्त निकल जाता। वरना जुल्मत और परेशानी दिल को तो ज़रूर होती।

खाना तो ऐसा होना चाहिए कि जिसमें (हराम का शुब्हा) न हो, क्योंकि दावत वाजिब तो है नहीं, मुस्तहब है और हराम खाना खिलाना हराम है। तो जिसके पास हलाल खाना न हो उसको किसी की दावत नहीं करनी चाहिए और इसकी ज़रूरत ही क्या है कि खाना मुरग्ग़न (बिरयानी वग़ैरह) खिलाओ। सादा खिलाओ, मगर हलाल हो। (ताज़ीमुश-शआइर, मुल्हिक़ा, सुन्नते इब्राहीम)

ज़िल्लत और बदनामी के डर से मेहमान-नवाज़ी करने का हुक्म

किसी ने अर्ज़ किया कि ख़ुलूस के ख़िलाफ़ महज़ तकलीफ़ की वजह से किसी की मेहमानी वग़ैरह करना कैसा है? फ़रमाया, तहसील जाह (महज़ इज़्ज़त और बड़ाई) के लिए तो हराम है और अगर ज़िल्लत की दिफ़ाअ़ (मिटाने) के लिए हो तो मुज़ायक़ा नहीं, मगर शर्त यह है कि तहम्मुल (हैसियत) से ज़्यादा न हो कि मदयून या मक़रूज़ हो जाए। (हुस्नुल अज़ीज़)

वलीमे की एक आसान सूरत

अब वलीमे का क़िस्सा सुनिए। मैंने किसी की दावत नहीं की। खाना पकवाकर घरों में भेज दिया। एक औरत ने खाना वापस कर दिया यह कहकर कि यह कैसा वलीमा है। मैंने कहा, नहीं क़बूल करतीं, उनकी क़िस्मत, जाने दो। उनका ख़्याल यह था कि यह मनाएंगे, ख़ुशामद करेंगे। मगर हमें ज़रूरत ही क्या थी, घर से खिलाएँ और उल्टी ख़ुशामद करें।

सुबह को वही बीबी आईं और कहने लगीं कि रात का खाना लाओ। मैंने कहा कि वह तो रात ही को ख़त्म हो गया था। यह

सुनकर वह बड़ी दिलगीर और (रंजीदा) हुई कि मेरी ऐसी क़िस्मत कहाँ थी कि ऐसी बरकात का खाना नसीब होता। इन दुनियादारों का दिमाग़ यूँ ही दुरुस्त होता है। अहले दीन को क़दरे इस्तग़ना बरतना चाहिए। उनको जितना ज़्यादा चिमटो उतना ही ज़्यादा ऐंठ-मरोड़ करते हैं। (अल-इफ़ाज़ातुल यौमिया)

नाजायज़ वलीमा

वलीमा मसनून है वह भी ख़ुलूसे नीयत व इख़्तिसार के साथ; न कि फ़ख़ व इश्तहार के साथ। वरना ऐसा वलीमा भी जायज़ नहीं। हदीस में ऐसे वलीमे को 'शर्रुत-तआ़म' फ़रमाया गया है। न ऐसा वलीमा जायज़ है और न उसका क़बूल करना जायज़ है। इससे मालूम हो गया होगा कि बिरादरी को अकसर खाने जो खिलाए जाते हैं उनमें के कुछ खाने जायज़ हैं तो कुछ बिलकुल नाजायज़। दीनदार को चाहिए कि नाजायज़ रस्मों के साथ खाने को न खुद करे और जिस तक़रीब में ये रस्में हों, हरगिज़ वहाँ शरीक न हो। बल्कि साफ़ इंकार कर दे। बिरादरी कुंबे की रज़ामंदी अल्लाह तआ़ला की नाराज़गी के मुक़ाबले में कुछ काम न आएगी। (इस्लाहुर्रुसूम)

बदतरीन वलीमा

वलीमा सुन्नत है, लेकिन बाज़ सूरतों में उसकी मुमानिअत भी है, चुनांचे रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़रमाते हैं–

شر الطعام الوليمة يدعى لها الاغنياء ويترك لها الفقراء

"यानी खानों में बुरा खाना उस वलीमे का है जिसमें उमरा को बुलाया जाए और फ़ुक़रा (ग़रीबों) को छोड़ दिया जाए"।

वलीमा सुन्नत है, लेकिन इस आरिज़ की वजह से शर (बुरा) हो गया। अफ़सोस आजकल अकसर वलीमा इसी क़िस्म के होते हैं, जिनमें महज़ बिरादरी के मुअ़ज़्ज़ज़ीन को बुलाया जाता है और

गुर्बा को नहीं पूछा जाता। बल्कि उस जगह से निकाल दिया जाता है, हालांकि जिन फ़ुक़रा को वलीमे से निकाला जाता है, उनकी निस्बत रसूलुल्लाह (सल्ल०) का इर्शाद है—

تنصرون وترزقون الابضعفاء کم

"यानी तुम्हारी जो मदद की जाती है और तुम्हें जो रिज़्क़ दिया जाता है वह फ़ुक़रा व ज़ुअफ़ा की वजह से दिया जाता है।"

पस निहायत बे-हयाई है कि जिनकी वजह से यह रिज़्क़ दिया गया है, उन्हें उस रिज़्क़ से धक्के दिए जाएँ। एक हदीस में रसूलुल्लाह (सल्ल०) फ़रमाते हैं, अगर मख़्लूक़ में ऐसे बूढ़े न होते जिनकी कमरें झुक गई हैं और बहाइम (जानवर) न होते और शीर-ख़्वार बच्चे न होते तो तुम पर अज़ाब की बारिश होती। मालूम हुआ कि अज़ाबे ख़ुदावंदी से बूढ़ों और बच्चों और बहाइम (जानवरों) वग़ैरह की वजह से बचे हुए हैं। (सुन्नते इब्राहीम)

बदतरीन और नाजायज़ वलीमे में शिरकत करना जायज़ नहीं

एक हदीस में शिरकत करनेवालों के लिए भी साफ़ मुमानियत वारिद है—

نہی رسول اللہ صلی اللہ علیہ وآلہ وسلم عن طعام المتبارئین ان یؤکل

(رواہ ابوداؤد مرفوعا)

"यानी रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने ऐसे दो शख़्सों का खाना खाने से मना फ़रमाया है जो बाहम (आपसी) फ़ख़्र के लिए खाना खिलाते हैं। यह खाना नाजायज़ है।"

(अस्बाबुल-ग़ाफ़िला, मुल्हिक़ा, दीन व दुनिया)

जितने लोगों की दावत है उससे ज़्यादा लोगों को लेकर पहुँच जाना जायज़ नहीं

आजकल लोग क्या करते हैं कि दावत में अपने साथ बग़ैर

बुलाए दो-दो और तीन-तीन आदमी साथ ले जाते हैं और अपने तक़वे के लिए मेज़बान से पूछ लेते हैं कि भाई हमारे साथ दो और हैं या तीन और हैं। और दलील पकड़ लेते हैं कि इस हदीस से कि एक सहाबी ने हुज़ूर (सल्ल०) की दावत की रास्ते में एक आदमी बातें करता हुआ साथ हो लिया। जब मेज़बान के दरवाज़े पर पहुँचे तो मेज़बान से दर्याफ़्त किया कि एक आदमी मेरे साथ ज़्यादा है, कहो, तो आएँ वरना लौट जाएँ। मेज़बान ने बख़ुशी मंज़ूर कर लिया।

लोग इस हदीस से तमस्सुक करते हैं। हालांकि यह क़यास मअ़ल फ़ारिक़ है। जहाँ यह देखा कि हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने साथी के लिए पूछ लिया था, यह भी तो देखा होता कि पूछने से पहले हुज़ूर (सल्ल०) ने उनमें क्या मज़ाक़ (और कैसा बे-तकल्लुफ़ मज़ाक़) पैदा कर दिया था। वह मज़ाक़ आज़ादी का था।

मैं एक नज़ीर इस बात की बयान करता हूँ कि हुज़ूर (सल्ल०) ने सहाबा (रज़ि०) में आज़ादी का मज़ाक़ किस तरह पैदा कर दिया था। वह इतनी बड़ी नज़ीर है कि जिसके क़रीब-क़रीब भी आजकल नहीं मिल सकती। वह यह है—

मुस्लिम शरीफ़ में है कि एक फ़ारसी था। शोरबा (सालन) निहायत अच्छा पकाता था। एक दिन हुज़ूर (सल्ल०) के दरबार में हाज़िर होकर अर्ज़ किया कि आज मैंने बहुत अच्छा शोरबा पकाया है, नोश फ़रमा लीजिए। हुज़ूर (सल्ल०) ने इर्शाद फ़रमाया कि इस शर्त के साथ कि हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा भी शरीक होंगी। वह कहता है कि नहीं। ग़ौर कीजिए, हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा हुज़ूर (सल्ल०) की महबूबा बीवी हैं, उनके लिए भी किस आज़ादी के साथ इंकार कर दिया। यह मज़ाक (और मिज़ाज) किसका पैदा किया हुआ था? हुज़ूर (सल्ल०) ही का। उसी मज़ाक़ के भरोसे पर हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने मेज़बान से

अपने साथी के लिए पूछा था और हुज़ूर (सल्ल०) को पूरा इत्मिनान था कि अगर जी चाहेगा तो मंज़ूर कर लेगा वरना साफ़ इंकार कर देगा। आजकल यह बात कहाँ।

पस जो शख़्स हमसे मग़लूब हो और जिसके बारे में यक़ीन न हो कि अगर जी न चाहा तो कुछ लिहाज़ न करेगा और आज़ादी से इंकार कर देगा, उससे इस तरह पूछना कब जायज़ है? और अगर ऐसे पूछने पर वह इजाज़त भी दे दे तो वह इजाज़त शरीअत के नज़दीक हरगिज़ मोतबर नहीं, न उस पर अमल जायज़ है।

(हुस्नुल-अज़ीज़)

जितनों की दावत हो उससे ज़्यादा या अपने साथ बच्चों वग़ैरह को ले जाना जायज़ नहीं

दावत तो हो कम आदमियों की और आएँ ज़्यादा, यह मर्ज़ भी कुछ आम-सा हो रहा है कि अकसर लोग शादी ब्याह में इसकी परवाह नहीं करते, ख़्वाह अहले-ख़ाना के यहाँ इतना सामान हो या न हो। एक ज़रीफ़ आदमी थे। उन्होंने जो देखा कि शादी-ब्याह वग़ैरह आम दावतों में एक-एक आदमी दो-दो को ज़रूर साथ ले जाते हैं। उन्होंने क्या दिल्लगी की कि एक दफ़ा जो दावत में गए तो एक बछड़े (गाय के बच्चे) को भी साथ ले गए और जब खाना रखा जाने लगा तो उन्होंने बछड़े के हिस्से की भी पलेट रखवाई। लोगों ने ताज्जुब से पूछा कि यह क्या हरकत है? उन्होंने कहा भाई और लोग तो अपनी औलाद लाते हैं। मेरी कोई औलाद नहीं। मैं इसको अज़ीज़ रखता हूँ, मैं इसको लाया हूँ। ग़रज़ सब शर्मिंदा हुए और उस रस्म को मौक़ूफ़ किया गया।

हदीस शरीफ़ में है कि एक दफ़ा आँहज़रत (सल्ल०) के साथ दावत में एक आदमी बिला दावत के चले गए। आपने मकान पर पहुँचकर साहिबे ख़ाना से साफ़ फ़रमाया कि यह एक आदमी हमारे साथ हो लिया है; अगर तुम्हारी इजाज़त हो तो आए, वरना

चला जाए? साहिबे ख़ाना ने उसको इजाज़त दे दी और वह शरीक हो गया।

रहा यह शुब्हा कि शायद आँहज़रत (सल्ल०) के लिहाज़ से उसने इजाज़त दे दी हो। उसका जवाब यह है कि ऐसे उमूर में रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने इस क़द्र आज़ादी दे रखी थी कि जिसका जी चाहता था क़बूल करता था और जिसका जी चाहता था इंकार कर देता था। चुनाँचे हज़रत बुरैदा रज़ियल्लाहु अन्हा का क़िस्सा मशहूर है कि हज़रत बुरैदा रज़ियल्लाहु अन्हा चूंकि जानती थीं कि आँहज़रत (सल्ल०) सिफ़ारिश में बोझ नहीं डालते इसी लिए उन्होंने पूछा कि आप हुक्म फ़रमाते हैं या सिफ़ारिश। आँहज़रत (सल्ल०) ने फ़रमाया कि हुक्म नहीं देता, सिफ़ारिश करता हूँ। इस पर बुरैदा रज़ियल्लाहु अन्हा ने इंकार कर दिया। चूंकि मालूम था कि आप इससे नाख़ुश न होंगे, उन्होंने साफ़ इंकार कर दिया।

(हुक़ूक़ व फ़राइज़)

सूदखोर और बिद्आत व रुसूम करनेवाले की दावत का हुक्म

सवाल : इस मुद्दे पर अकसर लोग सूद लेते हैं और वे लोग काश्त भी करते हैं। बाज़ के यहाँ आधी आमदनी हलाल और आधी हराम और कहीं आधी से ज़्यादा हलाल है और आधी से कम हराम, और बाज़ जगह इसका उलट।

उन लोगों के मकान में पर्दा भी नहीं और मुरव्वजा मीलाद वग़ैरह की मज्लिसें भी करते हैं। ऐसे लोगों की दावत क़बूल करना दुरुस्त है या नहीं। लेकिन अकसर ऐसी मज्लिसों में जाने से बाज़ लोगों की इस्लाह भी होती है।

जवाब : बे-पर्दगी और मुरव्वजा मज्लिस मीलाद और तमाम मआसी और बिद्आत को अमवाल की हलाल व हुरमत (यानी उन बातों को माल के हराम व हलाल होने) में कुछ दख़ल नहीं।

पस इस बिना पर कि दावत का रद्द करना (क़बूल न करना) बे-असल है। अलबत्ता अगर दावत रद्द करने से मक़सूद जज़र (तंबीह) व इस्लाह का हो तो रद्द कर दें और अगर क़बूल करने में तालीफ़े क़ल्ब (उनके क़रीब होने) और नसीहत के क़बूल करने की उम्मीद हो तो क़बूल करना ऊला है।

अलबत्ता सूद के इख़्तलात को हुरमत में असर है। अगर निस्फ़ या उससे ज़्यादा सूद है तो सब हराम है और अगर निस्फ़ से कम है तो हलाल है। (इम्दादुल-फ़तावा)

जिसकी अकसर आमदनी हराम की हो उसकी दावत क़बूल करने की जायज़ सूरत

सवाल : जिसका अकसर माल या बराबर माल हराम हो और वह यह ज़ाहिर करे कि मैं अपने हलाल माल से मेहमानी (दावत) या हदिया देता हूँ, तो बग़ैर किसी शहादत व तसदीक़ के महज़ उसका बयान क़ाबिले एतिबार होगा या नहीं?

जवाब : अगर क़ल्ब उसके तसदीक़ (सच्चाई) की शहादत दे तो अमल करना जायज़ है, वरना नहीं। अलबत्ता अगर वे रिश्वत से खिलाएँ तो नर्मी से उज़्र कर दिया जाए।

فی خبر الفاسق بنجاسة الماء وخبر المستور ثم یعمل بغالب الظن

शुब्हा की दावत का हुक्म

शुब्हा का माल और शुब्हा की दावत यानी जहाँ हराम आमदनी का शुब्हा हो कभी नहीं लेनी चाहिए ख़ुसूसन जहाँ दावत क़ुबूल करने में इल्म की तौहीन व ज़िल्लत होती हो वहाँ तो हरगिज़ न लेनी चाहिए। (अन-फ़ासे-ईसा)

लेकिन भरे मज्मे मे दाई (दावत देनेवाले) को इस तरह ज़लील करना (मसलन यह पूछे कि दूध कहाँ से आया, गोश्त किस तरह लिया? यह 'तक़्वा' का हैज़ा है) गुलू और दूसरे को ज़लील करना है जो कि नाजायज़ है। (अन-फ़ासे-ईसा)

जिसकी आमदनी पर इत्मिनान न हो और शुब्हा क़वी हो तो क्या करना चाहिए

अगर किसी शख़्स (की आमदनी) पर इत्मिनान न हो तो या तो उसकी दावत ही मंज़ूर न करे। किसी बहाने से उज़्र कर दे, लेकिन यह न कहे कि आपकी आमदनी हराम है इसलिए दावत क़बूल नहीं कर सकता। क्योंकि इस उनवान से उसकी दिलशिकनी होगी (और फ़ित्ना होगा)।

और अगर दावत देनेवाले की आमदनी के हराम होने का शुब्हा क़वी हो तो बेहतरीन सूरत यह है कि मज्मे के सामने तो बिला शर्त क़बूल करे। फिर तंहाई में ले जाकर उनसे कह दे कि ज़रा खाने में इसकी रिआयत रखी जाए कि तमाम सामान (इंतिज़ाम) तंख़्वाह की (यानी हलाल की) रक़म से किया जाए।

(अन-फ़ासे-ईसा)

दावत में शरीक करने के चन्द ज़रूरी अहकाम

1. ज़्यादा तहक़ीक़ व तफ़्तीश और खोद-कुरेद की ज़रूरत नहीं; मगर जिन लोगों के यहाँ बतने ग़ालिब अकसर आमदनी हराम है, की दावत क़बूल करना जायज़ नहीं। जैसे रिश्वत की आमदनी, सो ऐसे लोगों की दावत क़बूल न करे।
   हाँ, अगर ग़ालिब (अकसर) माल हलाल हो तो जायज़ है लेकिन अगर ज़जर के लिए न खाए तो बेहतर है।
2. अगर मासियत के मज्मे में दावत हो तो क़बूल न करे और अगर उसके जाने के बाद मासियत का फ़ेल शुरू हो जाए, मसूलन राग-बाजा, जो अकसर शादियों में होता है, तो अगर ख़ास उस जगह पर है जहाँ पर यह बैठा हुआ है तो छोड़कर चला आए और अगर फ़ासले से है तो अगर यह शख़्स मुक़्तदाए दीन है तब भी उसको वहाँ से उठ आना चाहिए और अगर मुक़्तदाए दीन नहीं है तो ख़ैर खाकर चला आए।

(हुक़ूक़ुल मआशिरत)

ग़रीबों की दावत में भी शिरकत करना चाहिए

बाज़ आदमी तकब्बुर की वजह से ग़रीब की दावत क़बूल नहीं करते। यह तकब्बुर मज़्मूम और क़बीह है। एक हिकायत याद आई। एक बेचारे ग़रीब ने एक मौलवी साहब की दावत की। मौलवी साहब उसके साथ दावत खाने जा रहे थे। रास्ते में एक रईस साहब ने पूछा कि मौलवी साहब कहाँ तशरीफ़ ले चले? मौलवी साहब ने जवाब दिया कि इस सक़्क़े ने दावत की है, इसके यहाँ जा रहा हूँ। रईस साहब मलामत करने लगे कि मौलवी साहब आपने तो बिल्कुल ही बात डुबो दी और ऐसी ज़िल्लत इख़्तियार की (कि सक़्क़े के यहाँ भी दावत खाने को चल दिए) मौलवी साहब ने एक लतीफ़ा किया। उस सक़्क़े से फ़रमाया कि भाई अगर उनको भी दावत में ले चलो तो चलता हूँ वरना मैं भी नहीं चलता। अब वह सक़्क़ा अमीर साहब के पीछे पड़ गया, मिन्नत व समाजत करने लगा। पहले तो उज़्र किए, मगर ख़ुशामद अजीब चीज़ है फिर और लोग भी जमा हो गए और मजबूर करने लगे। लामुहाला जाना पड़ा। वहाँ जाकर देखा कि ग़रीब लोग जिस ताज़ीम व तकरीम और इज़्ज़त से पेश आते हैं वह अमीरों और नवाबों के यहाँ ख़्वाब में भी नहीं दिखाई देती। तो साहब क़ायल हो गए कि वाक़ई जो राहत इज़्ज़त और मुहब्बत ग़रीबों से मिलने में है। वह अमीरों से मिलने में क़ियामत तक नहीं। इसलिए ग़रीब लोग दावत करें तो साहिबे सरवत (मालदार शख़्स) को जाह व तकब्बुर की वजह से इंकार नहीं करना चाहिए।

(हुक़ूक़ व फ़राइज़)

दावत क़बूल करने में कोई मुबाह शर्त लगाना

हदीस में है कि फ़ारस के रहनेवाले एक शख़्स ने हुज़ूर (सल्ल०) की दावत की। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, मैं और

आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा दोनों चलेंगे। फ़ारसी ने कहा, नहीं (यानी हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा नहीं)। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि नहीं (यानी मैं भी नहीं जाता। इसी तरह तीन बार फ़रमाया)। फिर बाद में उसने आपकी शर्त को मंज़ूर कर लिया। पस आप (सल्ल०) और हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा दोनों आगे-पीछे होते हुए चले। (मुस्लिम, बरिवायत अनस)

फ़ायदा

इस हदीस में इस बात पर दलालत है कि अगर दावत की मंज़ूरी को किसी जायज़ शर्त से मशरूत करें तो यह अम्र न मुसलमान के हक़ के मनाफ़ी है और न हुस्ने अख़्लाक़ के।

जैसा कि आपने यह शर्त लगाई कि अगर हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा की भी दावत करो तो मैं भी मंज़ूर करता हूँ और उसी फ़ारसी का मंज़ूर न करना शायद इसी वजह से हो कि खाना एक ही शख़्स को काफ़ी होगा, ज़्यादा न होगा। उसने चाहा कि हुज़ूर (सल्ल०) शिकम-सैर यानी ख़ूब सैर होकर खा लें, फिर आख़िर में मंज़ूर कर लेना इस ख़्याल से हो कि ततीबे क़ल्ब को ख़ुश करना आपके शबअ़ (यानी सैराब होने) से अहम है, और उस वक़्त तक हिजाब नाज़िल न हुआ होगा।

(अत-तशर्रुफ़, मारफ़त अहादीस, अत-तसव्वुफ़)

शादी व दावत में ग़रीबों के तकब्बुर और नख़रे

बाज़ लोगों को ख़ब्त होता है कि वे अपने ग़रीब और मफ़्लूकुल-हाल होने पर फ़ख़्र किया करते हैं। और अमीरी (मालदारी) में ऐब निकाला करते हैं। अमीर आदमी अगर फ़ख़्र करे तो एक हद तक बजा भी है, क्योंकि उसके पास फ़ख़्र का सामान मौजूद है। और ग़रीब आदमी जिसके पास न खाने को टुकड़ा, न पहनने को लंगोटा, वह किस चीज़ पर फ़ख़्र करे। फिर लुत्फ़ यह कि यह फ़ख़्र क़ौलन नहीं, बल्कि अमल में भी इसका

असर ज़ाहिर होता है।

चुनांचे कभी शादी वग़ैरह का मौक़ा होता है तो हमने उन ग़रीबों ही को ज़्यादा बैठते हुए देखा है और उन्हीं को सबसे ज़्यादा नख़रे और नाज़ सूझते हैं। और उसकी यह भी वजह होती है कि वह समझता है कि अगर मैं ऐसा न करूँ तो लोग मुझे ज़लील समझेंगे और यह ख़्याल करेंगे कि यह शख़्स हमारी दावत का मुंतज़िर ही बैठा था।

इसी तरह उन ग़रीबों का एक और मक़ूला मशहूर है। कहते हैं कि कोई माल में मस्त है, कोई खाल में मस्त है। हमारी समझ में नहीं आता है कि खाल में मस्त होने के क्या मानी हैं। लेकिन ख़ैर उन्होंने इतना तो इक़रार किया कि हममें अक़्ल नहीं क्योंकि अपने को मस्त कहा और मस्ती अक़्ल के ख़िलाफ़ होती है और अगर अक़्ल होती तो ऐसी हरकत ही क्यों करते। हदीस में आया है कि ख़ुदा तआला को तीन आदमियों से सख़्त बुग्ज़ है। (जिनमें) एक वह शख़्स है जो कि ग़रीब हो और तकब्बुर करे। गोया हुज़ूर (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि "ऐ शख़्स तेरे पास है क्या चीज़ कि जिस पर तू तकब्बुर करता है।" (आदाबे-इंसानियत)

फ़स्ल (1)

तअद्दुदे-अज़वाज (कई शादियाँ) करने का बयान

तअद्दुदे-अज़वाज का मुहर्रिक

तक़वा एक ऐसी प्यारी चीज़ है कि उसका ख़्याल हर इंसान को सब बातों से मुक़द्दम रखना चाहिए। क़ुदरत ने बाज़ आदमियों की निस्बत बाज़ आदमियों को ज़्यादा क़वी शहवत बनाया है और ऐसे आदमियों के लिए एक औरत काफ़ी नहीं हो सकती और अगर उनको दूसरा या तीसरा या चौथा निकाह करने से रोका जाए तो उसका नतीजा यह होगा कि वे तक़वे को छोड़कर बदकारी में मुब्तला हो जाएँगे। और ज़िना ऐसी बदकारी है जो इंसान के दिल से हर पाकीज़गी और तहारत का ख़्याल दूर कर देती है और उसमें एक ख़तरनाक ज़हर पैदा कर देती है। इसलिए उन लोगों के लिए जो क़वी शहवत (बहुत ज़्यादा शहवतवाले) हैं ज़रूर ऐसा कोई इलाज होना चाहिए जिससे वे ज़िना जैसी सियाहकारी में पड़ने से बचे रहें। (अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

तअद्दुदे-अज़वाज की एक और मस्लिहत

तअद्दुदे-अज़वाज के रोकने से बाज़ औक़ात निकाह की ग़रज़ (यानी नस्ले-इंसानी की बक़ा) हासिल नहीं हो सकती। मसलन अगर औरत बाँझ है और उसका बाँझपन नाक़ाबिले इलाज हो तो तअद्दुदे-अज़वाज की मुमानिअत की सूरत में क़तए-नस्ल लाज़िम आएगा। बाँझपन की यह बीमारी औरतों में बहुत ज़्यादा पाई जाती है इसलिए औलाद के लिए तअद्दुदे-अज़वाज के सिवा कोई

राह नहीं, जिससे यह कमी पूरी हो सके। बक़ाए-नस्ल का ज़रिआ सिर्फ़ यही है कि ऐसी हालत में मर्द को निकाहे सानी की इजाज़त दी जाए।
(अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

अगर औरत को कोई ऐसी बीमारी लाहिक़ हो जाए जो उसको हमेशा के लिए या बड़े-बड़े वक़्फ़ों के लिए नाक़ाबिल कर दे। यानी इस क़ाबिल न रहने दे कि ख़ाविंद उससे (ख़ुसूसी) ताल्लुक़ात क़ायम कर सके तो कोई वजह नहीं कि मर्द निकाह की असली ग़रज़ को दूसरे निकाह से न पूरा करे।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

हज़रत हाजी साहब ने आख़िरी उम्र में निकाह (सानी) किया था। उसकी वजह यह थी कि हज़रत पीरानी साहिबा (पहली बीवी) नाबीना हो गई थीं। ये बीबी हज़रत की भी ख़िदमत करती थीं और पीरानी साहिबा की भी। इन वाक़िआत से पता चलता है कि शादी महज़ शहवत के लिए थोड़ी की जाती है और भी मस्लिहतें और हिक्मतें हैं। (हक़ूक़ुज़-ज़ौजैन)

दूसरी शादी के जवाज़ में मर्द-औरत दोनों की मस्लिहत है

हर मुल्क में मर्दों की बनिस्बत औरतों के क़ुवा (आज़ा) बुढ़ापे से जल्दी मुतास्सिर होते हैं। पस जहाँ मर्द के क़ुवा बिल्कुल महफ़ूज़ हों जैसा कि अकसर हालात में होते हैं और औरत बूढ़ी और नाक़ाबिले-शहवत हो, दूसरी औरत से निकाह करना मर्द के लिए ऐसा ही ज़रूरी हो जाता है जैसा कि पहले किसी वक़्त पहली औरत से निकाह करना ज़रूरी था।

जो क़ानून तअद्दुदे-अज़्वाज (कई बीवियों के करने से) रोकता है वह मर्दों को, जिनके क़ुवा ख़ुशक़िस्मती से बुढ़ापे की उम्र तक महफ़ूज़ रहें, यह राह बताता है कि वह उन क़ुवा के तक़ाज़े को ज़िना के ज़रिए से पूरा करें।

क़ुदरत ने औरतों को वे सामान दिए हैं कि जो मर्द के लिए

बाइसे कशिश हैं और मर्द-औरत के ताल्लुक़ात में उन असबाब की मौजूदगी एक निहायत ज़रूरी अम्र है और सिर्फ़ उसी सूरत में निकाह बाबरकत हो सकता है कि औरत में ऐसे सामाने कशिश मौजूद हों। और अगर औरत में ऐसे सामान मौजूद न हों या किसी तरह से जाते रहें तो मर्द का औरत से वह ताल्लुक़ नहीं हो सकता। ऐसी सूरत में अगर ख़ाविंद को दूसरी शादी की इजाज़त न दी जाए तो या तो वह कोशिश करेगा कि किसी तरह से इस औरत से नजात हासिल करे, और अगर यह मुमकिन न होगा तो बदकारी में मुब्तला होगा और नाजायज़ ताल्लुक़ात पैदा करेगा।

क्योंकि जब औरत की रिफ़ाक़त से उसे वह ख़ुशी हासिल न हो सके जिसके हासिल होने का तक़ाज़ा इंसानी फ़ितरत करती है तो मजबूरन उस ख़ुशी के हासिल करने के लिए वह और ज़रिए तलाश करेगा। (अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

तअद्दुदे-अज़वाज की ज़रूरत

औरत हर वक़्त इस क़ाबिल नहीं होती कि ख़ाविंद उससे हमबिस्तर हो सके। क्योंकि अव्वल तो लाज़मी तौर पर एक महीने में कुछ दिन ऐसे आते हैं, यानी अय्यामे-हैज़, जिनमें मर्द को उससे परहेज़ करना चाहिए। दूसरे अय्यामे हमल औरत के लिए ऐसे हैं, ख़ुसूसन उसके पिछले महीने जिनमें औरत को अपने और अपने बच्चे की सेहत के लिए ज़रूरी है कि वह मर्द की सुहबत से परहेज़ करे और यह सूरत कई माह तक रहती है। फिर जब वज़अ़ हमल होता है तो फिर भी कुछ मुद्दत तक औरत को मर्द की सुहबत से परहेज़ करना लाज़मी है। अब उन औक़ात में औरत के लिए तो यह क़ुदरती मौक़े वाक़े हो जाते हैं, मगर ख़ाविंद के लिए कोई अम्र मानेअ नहीं होता, तो अब अगर किसी मर्द को शहवत का ग़ल्बा इन औक़ात में हो तो सिवाए तअद्दुद (दूसरी बीवियों के) उसका क्या इलाज है। अगर उन औक़ात में

या इस क़िस्म के दूसरे वक़्फ़ों में दूसरी औरत से निकाह की इजाज़त न दी जाए तो फिर उस ख़्वाहिश को पूरा करने के लिए वे ज़रूर नाजायज़ ज़रिए इस्तेमाल करेंगे।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

तअद्दुदे-अज़वाज अक़्ली नुक़्त-ए-नज़र से तारीख़ की रौशनी में

ख़ुद औरतों को बाज़ वक़्त ऐसी मजबूरियाँ आ पड़ती हैं कि अगर उनके लिए यह राह खुली न रखी जाए कि वे ऐसे मर्दों से निकाह कर लें, जिनके घरों में पहले से औरतें मौजूद हैं, तो उसका नतीजा बदकारी होगा। क्योंकि हर साल दुनिया के किसी न किसी हिस्से में लाखों मर्दों की जानें लड़ाइयों में तल्फ़ हो जाती हैं और औरतें बिल्कुल महफ़ूज़ रहती हैं। इस तरह वाक़िआत हमेशा पैदा होते रहते हैं, और जब तक दुनिया में मुख़्तलिफ़ क़ौमें आबाद हैं, ऐसे वाक़िआत हमेशा पैदा होते रहेंगे जिसके नतीजे में हमेशा मर्दों की तादाद में कमी होकर औरतों की तादाद बढ़ती जाएगी। अब ये औरतें जो मर्दों की तादाद से ज़्यादा होंगी उनके लिए क्या सोचा गया है। तअद्दुदे-अज़वाज की मुमानिअत की सूरत में उनका क्या हाल होगा? क्या उनको यही जवाब न मिलेगा कि जिसके दिल में मर्द की वह ख़्वाहिश पैदा हो जो क़ुदरत ने इंसानी फ़ितरत में रखी है, वह नाजायज़ तरीक़ों से उसको पूरा करे? और यह इनसानी समाज के लिए एक बहुत बड़ी ख़राबी होगी। लिहाज़ा तअद्दुदे-अज़वाज के सिवा कोई ऐसी राह नहीं जो इन ज़रूरियात को पूरा कर सके।

बरतानिया कलाँ में बोयरों की जंग से पहले बारह लाख, अठत्तर हज़ार, तीन सौ पचास औरतें ऐसी थीं जिनको एक बीवी वाले क़ायदे की रू से कोई मर्द मुहय्या नहीं हो सकता था।

फ्रांस में 1900 ई० की मर्दुम-शुमारी में हर हज़ार मर्द के लिए एक हज़ार बत्तीस औरतें मौजूद थीं, गोया कुल आबादी में आठ लाख, सतासी हज़ार, छः सौ अड़तालीस औरतें ऐसी थीं जिनसे शादी करनेवाला कोई मर्द न था।

स्वीडन में 1901 ई० की मर्दुम-शुमारी में एक लाख बाइस हज़ार आठ सौ सत्तर औरतें और हस्पानिया में 1890 ई० में चार लाख, सत्तावन हज़ार, दो सौ आठ औरतें और ऑस्ट्रेलिया में 1890 ई० में छः लाख, चवालीस हज़ार सात सौ छियानवे औरतें मर्दों से ज़्यादा थीं।

अब हम सवाल करते हैं कि जो क़वानीन इंसान की ज़रूरियात के लिए तजवीज़ किए जाते हैं, वे इंसान की ज़रूरियात के मुताबिक़ भी होने चाहिएँ या नहीं? इसपर फ़ख़्र करना तो आसान है कि हम तअद्दुदे- अज़्वाज को बुरा समझते हैं, मगर यह बता दिया जाए कि कम-से-कम उन चालीस लाख औरतों के लिए कौन-सा क़ानून तजवीज़ किया गया है। क्योंकि एक बीवी के क़ायदे की रू से यूरोप में तो उनको ख़ाविंद मिल नहीं सकते।

आपका वह क़ानून जो तअद्दुदे-अज़्वाज को मना करता है, उन चालीस लाख औरतों को यह कहता है कि अपनी फ़ितरत के ख़िलाफ़ चलें और उनके दिलों में मर्दों की कभी ख़्वाहिश पैदा न हो। लेकिन यह नामुमकिन है। पस नतीजा यह होगा कि वह नाजायज़ तरीक़ा इख़्तियार करेंगी। ज़िना की कसरत होगी। यह महज़ ख़याल नहीं, वाक़ई अम्र है और यह सब तअद्दुदे-अज़्वाज की मुख़ालिफ़त का नतीजा है।

सिर्फ़ चार तक बीवियाँ रखने की इजाज़त क्यों

अब रही यह बात कि चार से ज़्यादा औरतें निकाह में लाना क्यों नाजायज़ है? तो ग़ौर करने से मालूम होता है कि यह ज़रूरी था कि बीवियाँ करने की एक ख़ास हद रखी जाती। वरना अगर

हद मुक़र्रर न होती तो लोग हद्दे-एतिदाल से निकलकर सैंकड़ों बीवियाँ करने की नौबत में पहुँच जाते और ऐसा करने से उन बीवियों पर और ख़ुद अपनी जानों पर ज़ुल्म और बे-एतिदालियाँ करते। चूँकि ज़रूरत चार से पूरी हो जाती है, इसलिए ज़्यादा को नाजायज़ क़रार दिया गया। यह चार की तदाद मर्द की हदे-क़ुव्वत के मुताबिक़ भी है। (अल-मसालिहुल अक़्लिया)

चार निकाह से मुतजाविज़ न होने की एक हिक्मत यह भी है कि औरत का फ़ी नफ़्सिही हक़ क़ज़ा व तुहूर (ख़्वाहिश पूरी करना) और निकाह की असली मस्लिहत (यानी औलाद हासिल करना जो हमल क़रार पाने पर मौक़ूफ़ है) वह भी इस बात का मुक़्तज़ा है कि कम से कम हर तुहूर में एक बार हमबिस्तरी हो जाया करे। और सहीहुल मिज़ाज औरत को हर माह में एक बार हैज़ होकर तुहूर होता है। यह तो औरत की हालत है और मुतवस्सित क़ुव्वत का मर्द एक हफ़्ते में एक बार सुहबत करने से सेहत को महफ़ूज़ रख सकता है। यानी एक माह में चार बार क़ुरबत कर सकता है। पस इस तरह से अगर चार औरतें होंगी तो हर औरत से एक तुहूर में एक बार सुहबत होगी और इससे ज़्यादा मुंकूहात में या तो मर्द पर ज़्यादा ताब होकर उसमें क़ुव्वत तौलीद (पैदाइश की क़ुव्वत) न रहेगी और या औरत का हक़ अदा न होगा और चूंकि क़ानून आम होता है, इसलिए किसी ख़ास मर्द का ज़्यादा क़वी होना उस हिकमत में मुख़िल नहीं हो सकता। अलबत्ता हुज़ूर (सल्ल०) में चूँकि क़ुव्वत भी ज़्यादा थी और आपको आम क़वानीन से मुमताज़ करके बहुत-सी ख़ुसूसियात भी अता की गई हैं इसलिए इस हुक्म में आपको एक ख़ास इम्तियाज़ अता फ़रमाया। (बवादिरुन नवारिद)

तअद्दुदे-अज़्वाज (कई बीवियाँ) रखने की बिला क़बाहत शरअन इजाज़त है

इसकी क़बाहत बिला कराहत के मंसूसे-क़तई (क़ुरआन से साबित) है और सलफ़ में बिला नकीर राइज था। इसमें कराहत या हुरमत का एतिक़ाद या दावा और इसकी बिना पर आयाते क़ुरआनिया में तह्रीफ़ करना सरासर इल्हाद व बद-दीनी है। असल अमल (तअद्दुदे-अज़्वाज) में कराहत या नापसंदीदगी का शुब्हा भी नहीं और न ही उसकी सेहत अदल के साथ मुफ़ीद है, बल्कि अगर अदम अदल (इंसाफ़ न हो सकने) का यक़ीन भी हो तब भी (निकाह) की सेहत और निफ़ाज़ यक़ीनी है। बाज़ क़ौमों ने यूरोप की देखा-देखी दावा किया है कि एक औरत से ज़्यादा दूसरी, तीसरी, चौथी औरत से निकाह जायज़ नहीं और उसका मंशा महज़ अहले यूरोप की आरा और ख़्वाहिश का इस्तहसान (अच्छा समझना) है। और इस दावे को ज़बरदस्ती क़ुरआन में भी ठूँस दिया कि दो जगह से दो आयतें लीं और हर एक के मानी में तहरीफ़ की। इस तरह से अपना मतलब पूरा किया (लेकिन यह तहरीफ़) सरासर इल्हाद व बद-दीनी है।

(इस्लाहे-इंक़लाब, स०, 27-29)

फ़स्ल (2)

तअद्दुदे-अज़्वाज की मुमानियत

बाज़ अवारिज़ की वजह से कई बीवियाँ करने की शरई मुमानिअत

अलबत्ता जब ग़ालिब एहतिमाल अदमे-अदल (इंसाफ़ न कर सकने) का हो तो उस वक़्त बावजूद फ़ी नफ़्सिही उसके (जायज़) और पसंदीदा होने के ख़ास उस आरिज़ की वजह से उस तअद्दुद

से मना किया जाएगा। जिसकी दलील यह है—

فَإِنْ خِفْتُمْ أَلَّا تَعْدِلُوا فَوَاحِدَةً

यानी अगर तुमको इसका एहतिमाल हो कि अदल न रख सकोगे तो फिर एक ही पर बस (अयज़न, स०, 27)

औरतों की बे-एतिदाली की वजह से दूसरी बीवी करने की नापसंदीदगी

(अगर मर्द से बे-इंसाफ़ी का ख़दशा न हो) लेकिन ख़ुद औरतों की बे-एतिदालियों का अंदेशा हो तो उस वक़्त तअद्दुद (कई बीवियाँ करने) से शरई मुमानिअत तो नहीं होगी, लेकिन क़वाइदे शरीआ के मुताबिक़ एक ही (औरत) पर किफ़ायत करने का मशवरा दिया जाएगा और यह मशवरा भी शरई होगा, जिस तरह हुज़ूर (सल्ल०) ने हज़रत जाबिर (रज़ि०) को यह मश्वरा दिया था—

هلا بكرا تلاعبها وتلاعبك

"यानी क्या कोई कुँवारी नहीं थी कि तुम उससे जी बहलाते और वह तुमसे जी बहलाती।" (इस्लाहे-इंक़िलाब, स०, 28)

महज़ हवसनाकी और ऐशपरस्ती की वजह से कई बीवियाँ करने की मज़म्मत

बाज़ लोग बावजूद ज़रूरत न होने के हवसनाकी की वजह से कई-कई औरतें निकाह में जमा कर लेते हैं और उनमें अदल क इंसाफ का ख़याल नहीं रखते। अदल न रखने की सूरत में मर्द पर शरीअत की मुख़ालिफ़त का इल्ज़ाम (और नुक़सान) ज़ाहिर है जिससे बचना लाज़िम है। और जहाँ ग़ालिब गुमान इंसाफ़ न हो सकने का हो वहाँ तो तअद्दुदे- अज़्वाज (एक से ज़्यादा बीवी) से इस बिना पर कि नाजायज़ का मुक़द्दमा नाजायज़ होता है उस तअद्दुद से भी एहतराज़ वाजिब होगा। (इस्लाहे-इंक़िलाब, स०, 27)

अदल पर क़ुदरत के बावजूद बग़ैर ज़रूरत के दूसरी बीवी करने की मज़म्मत

और अदल रखने की सूरत में मर्द पर यह इल्ज़ाम तो नहीं, लेकिन परेशानी में तो पड़ गया। जिसके पड़ जाने से बाज़ औक़ात दीन में ख़लल पड़ने लगता है और बाज़ औक़ात सेहत व आफ़ियत में (ख़लल पड़ने लगता है) और उसके वास्ते से कभी दीन में भी ख़राबी आ जाती है। जहाँ उसका ज़न ग़ालिब हो (यानी कई बीवियाँ करने और उनमें इंसाफ़ करने की वजह से ख़ुद उसकी परेशानी में पड़ जाने और दीन में ख़राबी आ जाने का ज़न ग़ालिब हो) ऐसी परेशानी से बचना ज़रूरी है और परेशानी के असबाब से भी बचना होगा और वह तअद्दुदे-अज़वाज (कई बीवियाँ करना) है।

अगर यह बचने का लज़ूम वाजिबे-शरई न भी होता तब भी अक़्ल का मुक़्तज़ा तो ज़रूरी है। क्योंकि बिला वजह परेशानी मोल लेना अक़्ल के ख़िलाफ़ है। (अयज़न, स०, 27, जि०, 2)

फ़स्ल (3)

तअद्दुदे-अज़वाज की दुशवारियाँ

दो बीवियों में निबाह हुकूमत करने से ज़्यादा मुश्किल है। इसकी तफ़्सील यह है कि आदमी किसी पर हाकिम ही न हो या हुकूमत से इस्तिफ़ा दे दे, उसको इस सिफ़त के इस्तेमाल की ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

दूसरे यह कि ऐसे लोगों पर हाकिम हो जिनके साथ अदल व इंसाफ़ करने में सियासत व ज़ाबते का बर्ताव कर सके, यह भी आसान है। इसलिए कि उस शख़्स को सिर्फ़ एक हुकूमत का हक़ अदा करना पड़ता है जिसमें कोई चीज़ रोकनेवाली नहीं।

बख़िलाफ़ ऐसे शख़्स के जिसकी कई बीवियाँ हों कि उसके मातहत ऐसे दो महकूम हैं जो उसके महबूब हैं और महबूब भी कैसे कि जिनके दर्मियान अदल व इंसाफ़ करना उसी हालत के साथ ख़ास नहीं कि जब उनमें झगड़ा हो बल्कि अगर वे ख़ुद झगड़ें तब भी उस हाकिम पर हर वक़्त के बरतावे में उनमें बराबरी रखना वाजिब है। फिर अगर झगड़ा होता है तब उस वक़्त यह कशा-कशी होगी कि अगर उनकी महकूमियत के हक़ अदा करता है तो महबूबियत के हक़ फ़ौत होते हैं। लिहाज़ा उन दोनों का जमा करना दो मुतज़ाद शै (आग-पानी) के जमा करने से कम नहीं। और निहायत ही अक़्लमंदी की उसमें ज़रूरत है। कोई करके देखे तो मालूम हो। इसमें अगर हुकूमत से सुबुकदोश होना चाहे तो वह इसलिए मुश्किल है कि हक़ीक़ते ज़ौजियत को ख़त्म करना है (यानी तलाक़ देना है), उसको शरीअत मबग़ूज़ ठहरा रही है।

फिर उस (हुकूमत) के इज्लास का कोई वक़्त मुतय्यन नहीं, हर वक़्त उसके लिए आमादा रहना पड़ता है। फिर इस्तिग़ासा का इंतिज़ार करना ख़ुद दस्तअंदाज़ी लाज़िम है........ जिस तरह क़ज़ा का (ओहदा) यानी हुकूमत के क़बूल करने में हदीस में निहायत दर्जे की तहदीद (धमकी) है, यह भी उससे कम नहीं बल्कि मैंने जो कुछ ऊपर बयान किया उससे तो यह मालूम हो गया होगा कि बाज़ एतिबार से यह क़ज़ा से भी ज़्यादा सख़्त है। जब उससे तहज़ीर (डरने और बचने) का हुक्म है तो इसकी जुर्अत करना कब ज़ेबा है। (इस्लाहे-इंक़िलाब, स०, 90-77)

कई बीवियाँ करने की नज़ाकत और हज़रत थानवी (रह०) का तजरिबा

मुतअद्दिद बीवियों के हुक़ूक़ इस क़द्र नाज़ुक हैं कि हर एक का न वहाँ ज़ेहन पहुँच सकता है और न उनकी रिआयत का

हौसला हो सकता है। चुनांचे बावजूद यह कि रात को रहने और लिबास और खाने-पीने में बराबरी का होना सब जानते हैं। मगर इसका भी एहतिमाम नहीं होता। बाक़ी उन मसाइल का तो कौन ख़याल करता है, जिसको फ़ुक़्हा ने लिखा है कि अगर एक बीबी के पास मग़रिब के बाद आ जाता है और दूसरी के पास ईशा के बाद तो उसने अद्ल के ख़िलाफ़ किया।

और लिखा है कि हर एक की बारी में दूसरी से सुहबत जायज़ नहीं, अगरचे दिन ही हो और लिखा है कि हर एक की बारी में दूसरी के पास जाना भी न चाहिए अगर मर्द बीमार हो गया और उस वजह से दूसरी के पास नहीं जा सका, इसलिए एक ही के पास रहा तो सेहत के बाद उतनी मुद्दत तक दूसरी के पास रहना होगा। लेने-देने में बराबरी करने की जुज़यात भी इस क़द्र दक़ीक़ हैं कि उनकी रिआयत करना हर शख़्स के बस का काम नहीं।

मुझको इस क़द्र दुशवारियाँ इसमें पेश आई हैं कि अगर इल्मे-दीन और हुस्ने-तदबीर हक़ तआला न अता फ़रमाते तो ज़ुल्म से बचना मुश्किल था। सो ज़ाहिर है कि इस मिक़दार में इल्म और इस क़दर एहतिमाम का आम होना बहुत मुश्किल है। नीज़ हर शख़्स को नफ़्स का मुक़ाबला करना भी मुश्किल काम है (ऐसे हालात में) अब तअद्दुद अज़वाज (कई बीवियां रखना) बजुज़ इसके कि हक़ ज़ाया करके गुनाहगार हों और क्या नतीजा हो सकता है।

ये (मज़्कूरा बाला) हुक़ूक़ तो वाजिब थे; बाज़ हुक़ूक़ मुरव्वत के होते हैं। गो वाजिब नहीं होते मगर उनकी रिआयत न करने से दिल-शिकनी होती है। जो रिफ़ाक़त के हुक़ूक़ के ख़िलाफ़ हैं उनकी रिआयत और भी दक़ीक़ है। ग़र्ज़ कोई शख़्स वाक़िआत व मामलात के अहकाम उलमा से पूछे और फिर अमल करे तो नानी

याद आ जाएगी और तअद्दुद अज़्वाज से तौबा कर लेगा।

(इस्लाहे-इंक़िलाब, स०, 84)

बग़ैर सख़्त मजबूरी के दूसरी शादी करने का अंजाम

मौजूदा हालात में बग़ैर सख़्त मजबूरी के दूसरा निकाह हरगिज़ न करना चाहिए और मजबूरी का फ़ैसला नफ़्स से न कराना चाहिए बल्कि अक़्ल से कराना चाहिए और उक़्ला के मश्वरे से कराना चाहिए।

पुख़्तगी-ए-सिन (उम्र ढल जाने के बाद) दूसरा निकाह करना पहली मंकूहा को बेफ़िक्र हो जाने के बाद उसको फ़िक्र में डालना है और जिहालत तो उसका लाज़मी हाल है। वह अपना रंग लाएगी और उस रंग के छींटे से न नाकिह (निकाह करनेवाला मर्द) बचेगा न मंकूहा-सानिया (दूसरी बीवी) बचेगी। ख़्वाह-मख़्वाह ग़म के दरिया बल्कि ख़ून के दरिया में सब ग़ोते लगाएंगे, ख़ुसूसन जबकि मर्द आलिमे-दीन और मुतहम्मिल भी न हो। इल्म न होने से तो वह अदल की हुदूद को न समझेगा और तहम्मुल (बरदाश्त का माद्दा) न होने से उन हुदूद की हिफ़ाज़त न कर सकेगा। इस वजह से वह ज़रूर ज़ुल्म में मुब्तला होगा। चुनांचे अमूमन कई बीवियों वाले लोग ज़ुल्म व सितम के मआसी (गुनाह) में मुब्तला होते हैं। (अयज़न, सफ़हा, 83, जि०, 2)

दो शादी करना पुलसिरात पर क़दम रखना और अपने को ख़तरे में डालना है

मुझे दूसरी बीवी करने में बहुत सारी मस्लिहतें ज़ाहिर हुईं। मगर यह मस्लिहतें ऐसी हैं जैसे जन्नत के रास्ते में पुलसिरात हो। बाल से ज़्यादा बारीक, तलवार से ज़्यादा तेज़। जिसको तय करना सहल काम नहीं और जो तय न कर सका, वह सीधा जहन्नम में पहुँचा। इसलिए ऐसे पुल पर ख़ुद चढ़ने का इरादा ही न करे।

इन ख़तरात और हलाकत के मौक़ों को पार करने के लिए जिन असबाब की ज़रूरत है ये अरज़ाँ (सस्ते) नहीं हैं। दीन कामिल, अक़्ल, कामिल, नूर बातिन, रियाज़त से नफ़्स की इस्लाह कर चुकना (ये सब उसके लिए ज़रूरी हैं)।

चूंकि इन सबका जमा होना शाज़ है। इसलिए तअद्दुदे-अज़वाज (कई बीवी के चक्कर में पड़ना) अपनी दुनिया को तल्ख़ और बर्बाद करना है या आख़िरत और दीन को तबाह करना है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब, स०, 90)

हज़रत थानवी (रह०) की वसीयत और एक तजुर्बेकार का मशवरा

किसी को यह वहम न हो कि ख़ुद क्यों इस मश्वरे के ख़िलाफ़ किया। (हज़रत थानवी (रह०) की दो बीवियाँ थीं) बात यह है कि ख़िलाफ़ करने ही से यह मश्वरा समझ में आया है। इस फ़ेल से मुझे तजुर्बा हो गया है और तजुर्बेकार का क़ौल ज़्यादा मानने के क़ाबिल है। मैं अपने तजुर्बे की मदद से अपने भाइयों और अहबाब को इस तअद्दुदे-अज़वाज से (कई बीवियां करने से) मना करता हूँ। अगर मैं इस तअद्दुद को इख़्तियार न करता तो मेरे इस मना करने की ज़्यादा वक़्अत आप लोग न करते।

लेकिन अब इस मुमानिअत की ख़ास वक़अत होगी। लिहाज़ा इस मुमानिअत पर अमल करना चाहिए। मगर साथ ही अहकामे शरीआ में तहरीफ़ न की जाए। शरई हुक्म तो यही है कि तअद्दुदे-अज़वाज में निकाह तो मुंअक़द हर हाल में हो जाता है ख़्वाह अद्ल हो या न हो लेकिन अदल न करने के वक़्त गुनाह होगा।

(मल्फ़ूज़ात, स०, 141)

निकाहे-सानी किसको करना चाहिए

फ़रमाया : एक शख़्स ने मुझसे अक़्दे-सानी के मुताल्लिक़ मश्वरा किया तो मैंने कहा कि तुम्हारे पास कितने मकान हैं?

उसने कहा कि एक है। मैंने कहा कि तुम्हारे लिए मुनासिब नहीं है। उन्होंने कहा कि कितने मकान होने चाहिएं? मैंने कहा कि तीन होने चाहिएँ। उन्होंने कहा तीन किस लिए? मैंने कहा कि तीन इसलिए होने चाहिएँ कि दो मकान तो दो बीवियों के रहने के लिए हों और तीसरा मकान इसलिए कि जब उन दोनों से इख़्तलाफ़ हो जाए तो आप उस तीसरे मकान में उन दोनों से अलग रहें। क्योंकि जब तुम रूठोगे तो कहाँ रहोगे! वे यह सुनकर रह गए। (मल्फ़ूज़ात, स०, 141)

फ़स्ल (4)

एक ही बीवी पर इक्तफ़ा करे अगरचे नापसंद हो

बेहतर तरीक़ा यही है कि तअद्दुद (कई बीवी) को इख़्तियार न किया जाए एक ही पर क़नाअत की जाए, अगरचे नापसंद हो।

فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِنَّ خَيْرًا كَثِيْرًا (نساء)

"और अगर वह तुमको नापसंद हो तो मुमकिन है कि तुम एक शै को नापसंद करते हो और अल्लाह तआला ने उसके अंदर कोई बड़ी मुंफ़अत रख दी हो।"

(इस्लाहे-इंक़िलाब, स०, 85)

पहली बीवी के औलाद न होने की वजह से दूसरी शादी करना

बाज़ लोग महज़ इतनी बात पर कि औलाद नहीं होती दूसरा निकाह कर लेते हैं। हालांकि दूसरा निकाह करना इस ज़माने में अकसर हालात में ज़्यादती है। क्योंकि शरई क़ानून यह है कि "अगर मुतअद्दिद बीवियों में अदल न हो सकने का अंदेशा हो तो

सिर्फ़ एक औरत से निकाह करो।"

और ज़ाहिर है कि आजकल तबीअतों की ख़ुसूसियात से अद्ल हो नहीं सकता। हमने तो किसी मौलवी को भी नहीं देखा जो दो बीवियों में पूरा-पूरा अद्ल करता हो। दुनियादार तो क्या करेंगे। बस होता यह है कि दूसरा निकाह करके पहली को मुअल्लक़ छोड़ देते हैं। जिसकी वजह यह है कि आजकल तबीअतों में इंसाफ़ व रहम का माद्दा बहुत कम है। तो आजकल के हालात के एतिबार से तो अद्ल क़रीब-क़रीब क़ुदरत से ख़ारिज है। फिर जिस ग़रज़ के लिए दूसरा निकाह किया जाता है, उसका क्या भरोसा है कि दूसरे निकाह से वह (औलाद) हासिल हो ही जाएगी। मुमकिन है कि उससे भी औलाद न हो तो फिर क्या कर लोगे? बल्कि मैंने यह देखा है कि एक शख़्स ने अपनी बीवी को बाँझ समझकर दूसरा निकाह किया और निकाह के बाद ही पहली बीवी के औलाद हो गई तो ख़्वाह-मख़्वाह एक मोहतमिल अम्र के लिए अपने को अद्ल की मुसीबत में गिरफ़्तार करना अच्छा नहीं। और जो अद्ल न हो सका तो फिर दुनिया व आख़िरत की मुसीबत सर पर रही।

लोग ज़्यादातर औलाद की तमन्ना के लिए ऐसा करते हैं और औलाद की तमन्ना इसलिए होती है कि नाम बाक़ी रहे। तो नाम की हक़ीक़त सुन लीजिए कि एक मज्मेअ में जाकर ज़रा लोगों से पूछिए तो परदादा का नाम। बहुतों को न मालूम होगा। जब ख़ुद औलाद ही को परदादा का नाम नहीं मालूम तो दूसरों को ख़ाक मालूम होगा, तो बतलाइए नाम कहाँ बाक़ी रहा। औलाद से नाम नहीं चला करता, बल्कि औलाद नालायक़ हुई तो उल्टी बदनामी होती है और अगर नाम चला भी तो नाम चलना क्या चीज़ है, जिसकी तमन्ना की जाए? दुनिया की हालत को देखकर तसल्ली कर लिया करें कि जिनके औलाद हैं वे किस मुसीबत में गिरफ़्तार हैं। अगर इससे भी तसल्ली न हो तो यह समझ ले कि जो ख़ुदा

को मंज़ूर है वही मेरे वास्ते ख़ैर है। न मालूम औलाद होती तो कैसी होती और अगर यह भी न कर सके तो कम से कम यह तो समझे कि औलाद न होने में बीवी की क्या ख़ता है।

(हुक़ूक़ुज़-ज़ौजैन, स०, 38, वाज़ हुक़ूक़ुल-हैयत)

फ़स्ल (5)

दो बीवियों के हुक़ूक़ और अदल व इंसाफ़ से मुताल्लिक़ ज़रूरी मसाइल

मसअला नं० 1 :– दूसरा निकाह बिला ज़रूरत दूसरी ज़ौज से न करे, अगरचे अद्ल (इंसाफ़) की उम्मीद हो। क्योंकि इस ज़माने में दूसरा निकाह करने में अकसर हालात में ज़्यादती है और अगर इस ख़्याल से (दूसरे निकाह को) तर्क कर देगा कि पहली बीवी को ग़म न हो तो सवाब होगा (फ़तावा आलमगीरी) और अगर अद्ल (इंसाफ़) की उम्मींद न हो तो दूसरा निकाह करना बिल्कुल गुनाह है।

فَاِنْ خِفْتُمْ اَنْ لَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً

"पस अगर तुमको अंदेशा हो कि अद्ल न कर सकोगे तो फिर एक ही बीवी पर इक्तिफ़ा करो।" (हुक़ूक़ुल-हैयत)

अद्ल वाजिब व मुस्तहब के हुदूद और तबर्रुआत में अद्ल का हुक्म

मसअला नं० 2 :– नफ़क़ा देने और बग़रज़ तालीफ़ व उन्स (यानी दिलजोई के लिए) रात गुज़ारने में (दोनों बीवियों में इंसाफ़ और बराबरी करना) वाजिब है और हमबिस्तरी में नहीं।

मसअला नं० 3 :– लेकिन अगर हमबिस्तरी, बोसकिनार वग़ैरह में बराबरी करे तो मुस्तहब है, गो वाजिब नहीं।

मसअला नं० 4 :– और वाजिब न होना उस वक़्त तो मुत्तफ़िक़ अलैहि है जबकि रग़बत और निशात न हो। इस सूरत में वह माज़ूर होगा। लेकिन अगर रग़बत व निशात है गो दूसरी तरफ़ ज़्यादा है और उसकी तरफ़ कम है तो इस सूरत में एक क़ौल यह है कि इसमें भी बराबरी वाजिब है। (शामी)

मसअला नं० 5 :– बाक़ी तबर्रुआत व तहाइफ़ यानी ज़ायद लेन-देन और दिए तोहफ़े जोड़े वग़ैरह जो लाज़िम नहीं हैं उनमें भी अद्ले बराबरी वाजिब है। हन्फ़िया का यही क़ौल है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

हन्फ़िया के यहाँ ज़ौजैन (मियाँ-बीवी) में तबर्रुआत (किसी के साथ एहसान करने में) अद्ल वाजिब है और दूसरे उलमा के नज़दीक सिर्फ़ वाजिबात (नफ़्क़ा वाजिब वग़ैरह में) अद्ल वाजिब है। हन्फ़िया के यहाँ इसमें तंगी है। (हुस्नुल-अज़ीज़)

इब्ने बतूल मालिकी ने भी (पूरे वसूक़ से) ग़ैर वाजिब कहा है (लेकिन) इब्ने बतूल का इस्तदलाल मख़्दूश है, और ज़ाहिर है इत्तलाक़ व दलाइल से वजूब ही (मालूम होता) है।

(इस्लाहे-इंक़िलाब)

सफ़र में ले जाने से मुसावात लाज़िम नहीं, क़ुरआ-अंदाज़ी करना बेहतर है

मसअला नं० 6 :– शब-बाशी (रात गुज़ारने) में बराबरी का हुक्म हज़र में है (यानी वतन या इक़ामत की हालत में) और सफ़र में इख़्तियार है, जिसको चाहे साथ ले जाए। लेकिन शिकायत करने के लिए क़ुरआ डाल लेना अफ़ज़ल है और हालते-क़ियाम का हुक्म मिस्ले हज़र के हुक्म के होगा।

मसअला नं० 7 :– यह शब बाशी (रात गुज़ारने) की बराबरी उस शख़्स के लिए है जो रात में ख़ाली हो और जिसकी रात ही

की नौकरी हो जैसे चौकीदार वग़ैरह तो उसका दिन रात के हुक्म में है।

(दुर्रे-मुख़्तार)

हर बीवी को अलग मकान देना वाजिब है

मस्अला नं० 8 :– मकान में जो बराबरी वाजिब है, उसका मतलब यह है कि हर एक को अलग घर देना चाहिए। जबरन दोनों को एक घर में रखना जायज़ नहीं। अलबत्ता अगर दोनों रज़ामंद हों तो उनकी रज़ामंदी तक जायज़ है।

मस्अला नं० 9 :– जिस शख़्स पर रात में अद्ल करना वाजिब है एक की शब में (रात की बारी में) दूसरी को शरीक करना दुरुस्त नहीं। यानी एक की शब में दूसरी के पास न जाए।

मस्अला नं० 10 :– यह भी दुरुस्त नहीं कि एक के पास मग़्रिब के बाद जाए और दूसरी के पास ईशा के बाद, बल्कि इसमें भी बराबरी होनी चाहिए।

(शामी)

मस्अला नं० 12 :– लेकिन इन तीनों मस्अलों में अगर (एक बीवी की) इजाज़त व रज़ामंदी हो तो दुरुस्त है।

मस्अला नं० 13 :– और जिस तरह रज़ामंदी से थोड़ी रात दोनों के पास रहना दुरुस्त है इसी तरह दोनों की बारी का दौरा ख़त्म करके ऐसा करे, फिर जिस तरह चाहे बारी मुक़र्रर करे। यह भी दुरुस्त है।

(शामी)

मस्अला नं० 15 :– यानी किसी ज़रूरत से सिर्फ़ एक ही जगह (यानी एक ही बीवी के पास) जाए तब भी दुरुस्त है।

मस्अला नं० 16 :– उस रोज़ जिसकी बारी न हो उससे दिन में सुहबत दुरुस्त नहीं।

मस्अला नं० 17 :– बारी की मिक़दार करना मर्दों की राय पर है लेकिन वह मिक़दार इतनी तवील न हो कि दूसरी बीवी को इंतिज़ार से तकलीफ़ होने लगे। मसलन एक-एक साल। (शामी)

मस्अला नं० 18 :– अगर बीमारी की वजह से एक ही घर

में ज़्यादा रहा तो सेहत के बाद उतने ही रोज़ दूसरी के घर में रहना चाहिए। (शामी)

मस्अला नं० 19 :– इसी तरह अगर एक बीवी सख़्त बीमार हो गई तो उसकी ज़रूरत से उसके घर रहने में मुज़ायक़ा नहीं (आलमगीरी) और उन अय्याम की भी क़ज़ा ज़रूरी मालूम होती है।

मस्अला नं० 20 :– एक मंकूहा को अपनी बारी दूसरी को हिबा कर देना दुरुस्त है लेकिन अगर फिर चाहे तो वह वापस ले सकती है। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

फ़स्ल (6)

जिसकी दो बीवियाँ हों उनके निबाह का तरीक़ा और ज़रूरी दस्तूरुल अमल

शौहर के लिए दस्तूरुल अमल

(1) एक बीवी का राज़ दूसरी से न कहे। (2) दोनों का खाना और दोनों का रहना अलग-अलग रखे। उनका इज्तिमाअ आग और बारूद के इज्तिमाअ से कम नहीं। (3) एक (बीवी) से दूसरी (बीवी) की शिकायत हरगिज़ न सुने। (4) एक की तारीफ़ दूसरी से न करे। (5) ग़रज़ एक का तज़्किरा न दूसरी से करे और न दूसरी से सुने। अगर एक शुरू भी करे तो फ़ौरन रोक दे और कहे कि कुछ और बात करो। (6) अगर एक दूसरे की कोई बात पूछे तो हरगिज़ न बतलाए। लेकिन सख़्ती न करे नर्मी से मना कर दे। (7) लेने-देने में यह शुब्हा न होने दे कि एक को ज़्यादा दे दिया हो बल्कि उसको साफ़-साफ़ ज़ाहिर कर दे। (8) बाहर आनेवाली औरतों को सख़्ती से रोके कि वह दूसरी जगह की हिकायत या शिकायत बयान न करें। (9) और न ख़ुशामद में एक के साथ कम मुहब्बती का दावा दूसरी के सामने करे। (10) अगर

मौक़ा हो तो एक से ऐसी रिवायत कर दे कि दूसरी तुम्हारी तारीफ़ करती थी। (11) लुत्फ़ (नर्मी) से इसकी तदबीर हो सके तो मुफ़ीद है कि एक-दूसरे के पास हदूया वग़ैरह भी भेजा करें।

पहली बीवी के लिए ज़रूरी दस्तूरुल अमल

(1) जदीदा (नई बीवी) पर हसद न करे। (2) उसपर तान व तश्नीअ़ न करे। (3) बे-तकल्लुफ़ नई बीवी के साथ ख़ुश-अख़्लाक़ी का बरताव करे ताकि उसके दिल में मुहब्बत न हो तो अदावत भी न हो। (4) शौहर से कोई ऐसी बे-तकल्लुफ़ गुफ़्तगू न करे कि शौहर को उस जदीदा (नई) के सामने उसका होना इसलिए नागवार हो कि उसको यह एहतिमाल हो कि यह जदीदा भी ऐसी बे-तमीज़ (बे-अदबी) न सीखे। (5) शौहर से नई का कोई ऐब बयान न करे क्योंकि, कोई शख़्स अपने महबूब की ऐबगोई ख़ुसूसन रक़ीब की ज़बान से पसंद नहीं करता (इसमें ख़ुद पहली बीवी ही का नुक़सान है)। (6) जदीदा (नई बीवी) से ऐसा बर्ताव रखे कि उसकी ज़बान से क़दीमा (पहली) के सामने हमेशा बन्द रहे। (7) शौहर की इताअत व ख़िदमत और अदब में पहले से ज़्यादती कर दे ताकि उसके दिल में उतर जाए। (8) अगर शौहर से अदाए हुक़ूक़ में कुछ कमी हो जाए तो जो कमी हदे-तकलीफ़ तक न पहुंची उसको ज़बान पर लाए और अगर तकलीफ़ हो तो जिस वक़्त मिज़ाज ख़ुश देखे अदब से अर्ज़ कर दे। (9) जदीदा के रिश्तेदारों से ख़ुश-अख़्लाक़ी व मदारात और हुस्ने सुलूक का बर्ताव रखे कि जदीदा के दिल में जगह हो। (10) कभी-कभार अपना दिन (शौहर के पास रहने की बारी) जदीदा को दे दिया करे, ताकि शौहर के दिल में क़द्र बढ़े।

नई बीवी के लिए ज़रूरी दस्तूरुल अमल

(1) क़दीमा (पहली बीवी) के साथ ऐसा बर्ताव करे जैसे

अपने बड़ों के साथ किया करते हैं। (2) शौहर पर ज़्यादा नाज़ न करे इस गुमान से कि मैं ज़्यादा महबूब हूँ (बल्कि) ख़ूब समझ ले कि क़दीमा (पहली) से जो ताल्लुक़ाते रिफ़ाक़त हैं जो कि दिल में जागुज़ीं हो चुके हैं, यह नफ़्सानी जोश उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। (3) शौहर से ख़ुद अलग रहने-सहने की दरख़्वास्त न करे। (4) अगर शौहर अलग रखने लगे तब भी कभी-कभी क़दीमा (पहली) से मिलने जाया करे और क़दीमा को दावत वग़ैरह के लिए कभी-कभी बुलाया करे। (5) शौहर को समझाती रहे कि क़दीमा से बे-परवाई न करे। (6) अगर क़दीमा कुछ सख़्ती या तान' वग़ैरह करे तो उसको एक दर्जे में माज़ूर समझकर माफ़ कर दे और शौहर से हरगिज़ शिकायत न करे। (7) क़दीमा के रिश्तेदारों की ख़ूब ख़िदमत करे। (8) क़दीमा की औलाद से बिलख़ुसूस ऐसा मामला रखे कि क़दीमा के दिल में उसकी मुहब्बत व क़द्र हो जाए। (9) ज़रूरी उमूर में क़दीमा से मशवरा करती रहे। इससे उसके दिल में क़द्र भी बढ़ेगी और फिर उसको तजरिबा भी ज़्यादा है। (10) और जब अपने मायके जाए तो क़दीमा से ख़त व किताबत भी रखे। (इस्लाहे-इंक़िलाब)

फ़स्ल (1)

अहकामे-मुबाशिरत

यानी मियाँ-बीवी के ख़ुसूसी अहकाम व मसाइल;

बीवी के पास जाने में भी सवाब मिलता है

हदीस में यहाँ तक आया है कि इंसान जो बीवी के पास (ख़्वाहिश पूरा करने) जाता है उसमें भी सवाब मिलता है। किसी ने कहा, या रसूलल्लाह (सल्ल०)! यह तो अपनी ख़्वाहिश का पूरा करना है; इस पर भी सवाब मिलता है? आप (सल्ल०) ने जवाब दिया कि अगर अपनी ख़्वाहिश को बे-महल सर्फ़ करता, गुनाह होता या नहीं? सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया कि हाँ, या रसूलल्लाह (सल्ल०)! आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, तो जब हलाल मौक़े में सर्फ़ करता है तो उसे सवाब भी मिलना चाहिए।

(अल-हयात, हक़ीक़त माल व जाह)

बीवी के पास किस नीयत से जाना चाहिए

وَابْتَغُوْا مَا كَتَبَ اللّٰهُ لَكُمْ

यानी बीवी की क़ुरबत से औलाद का क़सद करो जिसको अल्लाह तआला ने तुम्हारे लिए मुक़द्दर फ़रमाया है।

मुसलमान की दुनिया भी दीन ही है। मगर यह ज़रूरी है कि नीयत करके उसको दीन बनाना चाहिए। इस बुनियाद पर मुसलमान दुनियादार हो ही नहीं सकता। मसलन निकाह दुनिया का क़सद है और कोई अहले इस्लाम के साथ ख़ास नहीं। दीने-महज़ (ख़ालिस दीन) तो वह है जो अहले-इस्लाम के साथ मख़्सूस हो और निकाह तो काफ़िर व मुस्लिम दोनों में मुश्तरक है।

बज़ाहिर इससे यही मालूम होता है कि यह सिर्फ़ दुनिया का क़सद है, मगर हदीस से मालूम होता है कि इसमें भी यह होना चाहिए तो इससे इफ़्फ़त महफ़ूज़ रहे और तबीअत मुंतशिर न हो और जमीअते- ख़ातिर के साथ इबादत हो सके। अगर इस तरह नीयत करेगा तो निकाह इबादत हो जाएगा।

(अल-हयात, मुल्हिक़ा, हक़ीक़त माल व जाह)

सुहबत का तरीक़ा

نِسَاؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ فَأْتُوا حَرْثَكُمْ أَنَّى شِئْتُمْ

सुहबत आगे के मौक़े में हो (यानी शर्मगाह में और) यह हुक्म इसलिए है कि तुम्हारी बीवियां तुम्हारे लिए बमंज़िला खेत के हैं जिसमें नुत्फ़ा बजाए तुख़्म के और बच्चे बजाए पैदावार के है (यानी माद्द-ए-मानविया बमंज़िला बीज के और बच्चा बमंज़िला पैदावार के है) । सो अपने खेत में जिसी तरफ़ से होकर चाहो आओ और जिस तरह खेतों में इजाज़त है उस तरह बीवियों के पास पाकी की हालत में हर तरह आने की इजाज़त है। (यानी हर तरीक़े से सुहबत करने की इजाज़त है) ख़्वाह करवट से हो, या पीछे, या आगे बैठकर हो, या ऊपर या नीचे लेटकर हो या जिस हैयत (तरीक़े) से हो, मगर आना हो हर हाल में खेत के अंदर कि वह ख़ास आगे का मौक़ा है। क्योंकि पीछे का मौक़ा (पाख़ाने का मक़ाम) खेत के मुशाबा नहीं। (इसलिए) उसमें सुहबत न हो, पीछे के मौक़े में अपनी बीवी से सुहबत करना हराम है।

और इन लज़्ज़ात में ऐसे मशग़ूल न हो जाओ कि आख़िरत ही को भूल जाओ, बल्कि आइंदा के वास्ते भी अपने कुछ आमाले-सालेहा करते रहो और अल्लाह तआला से डरते रहो और यह यक़ीन रखो कि बेशक तुम अल्लाह के सामने पेश होनेवाले हो। (बयानुल-क़ुरआन, सूरह बक़रह)

शौहर बीवी को एक-दूसरे का सतर देखने से मुताल्लिक़ बाज़ अहादीस

अपने शौहर से किसी जगह का पर्दा नहीं है। तुमको उसके सामने और उसको तुम्हारे सामने सारे बदन का खोलना दुरुस्त है। मगर बे-ज़रूरत ऐसा करना अच्छा नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर)

शौहर के सामने किसी जगह का भी इख़्फ़ा (पर्दा) वाजिब नहीं गो ख़ास बदन को देखना ख़िलाफ़े ऊला है।

قالت سيدتنا ام المومنين عائشة رضى الله عنها محصله لم ارمنه ولم يرمنى
ذلك الموضوع اور ده فى المشكوة (ا) وروى عن ابن عباس مرفوعًا اذا جامع
احدكم زوجته او جاريته فلا ينظر الى فرجها فان ذلك يورث العمى قال ابن
الصلاح جيد الاسناد كذا فى الجامع الصغير. (بيان القرآن سورة نور)

तर्जमा : उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि वह मख़्सूस मक़ाम (शर्मगाह) न हुज़ूर (सल्ल०) ने मेरा देखा और न मैंने देखा। (मिश्कात)

और हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से मर्फ़ूअन मरवी है कि जब तुममें से कोई शख़्स अपनी बीवी या बांदी से जिमाअ करे तो उसकी शर्मगाह न देखे, क्योंकि यह अंधेपन को पैदा करता है। इब्ने-सलाह फ़रमाते हैं कि उसकी अस्नाद अच्छी है जामेअ सग़ीर में इसी तरह है। (बयानुल क़ुरआन)

बीवी का सतर देखने का नुक़सान

तनहाई में बिला ज़रूरत बरहना न होना चाहिए और बीवी का सतर देखना तो उससे भी ज़्यादा शर्मनाक है। बाज़ हुक्मा ने कहा है कि इस हरकत से औलाद अंधी पैदा होती है। लेकिन अगर अंधी न हो तो बेहया तो ज़रूर होती है, और वजह इसकी यह है कि उस वक़्ते-ख़ास में जिस क़िस्म की उससे हरकत होती है औलाद के अंदर वही ख़स्लत पैदा होती है। इसी वास्ते हुक्मा

ने लिखा है कि इंज़ाल के वक़्त अगर ज़ौजैन (मियां-बीवी) को किसी अच्छे आदमी का तसव्वुर आ जाए तो बच्चा नेक होगा। इसी वास्ते पहले लोग अपने ख़िल्वत के कमरे में उलमा और हुक्मा की तसवीरें रखा करते थे। (लेकिन इस्लाम ने आकर इसको नाजायज़ क़रार दिया।) हमारे पास तो ऐसी तसवीर है कि वह उन तसवीरों से बेनियाज़ करनेवाली है।

दिल के आइने में है तसवीरे यार
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली

यानी हमको चाहिए कि हम अल्लाह तआला का तसव्वुर करें और यह दुआ पढ़ें—

اَللّٰهُمَّ جَنِّبْنَا الشَّيْطَانَ وَجَنِّبِ الشَّيْطَانَ مَا رَزَقْتَنَا

अल्लाह जल्ले जलालुहू से ज़्यादा कौन है जिसका ख़्याल किया जाए। शैतान का ख़्याल उस वक़्त न होना चाहिए।

(अत-तहज़ीब, मुल्हिक़ा, मफ़ासिद गुनाह, मल्फ़ूज़ाते-अशर्फ़िया)

सुहबत के वक़्त दूसरी औरत का तसव्वुर करना हराम है

फ़रमाया कि अगर अपनी बीवी के पास हो और सुहबत के वक़्त किसी अजनबिया का क़स्दन तसव्वुर करे तो वह हराम होगा।

(अत-तहज़ीब, मुल्हिक़ा, मफ़ासिद गुनाह, मल्फ़ूज़ाते अशर्फ़िया)

जिमाअ के वक़्त ज़िक्र और दुआएँ पढ़ना

बोल-बुराज़ व जिमाअ यानी पेशाब पाख़ाना और बीवी से हमबिस्तरी के वक़्त में ज़बान से ज़िक्र करने की मुमानिअत है। अलबत्ता ज़िक्रे क़ल्बी की किसी हाल में भी मुमानिअत नहीं, हर वक़्त इजाज़त है।

अगर कोई कहे कि क़ल्ब से ज़िक्र के क्या मानी और क्या शरीअत में इसका कुछ सुबूत है? तो मैं कहता हूँ कि हदीस ने

इस इश्काल को भी साफ़ कर दिया है। हदीस शरीफ़ में है—

كَانَ النَّبِيُّ يَذْكُرُ اللّٰهَ فِيْ كُلِّ اَحْيَانِهٖ

आप हर वक़्त ज़िक्रे इलाही में मश्गूल रहते थे और कुल अह्या (हर वक़्त) में औक़ात बोल व बुराज़ व क़ज़ा-ए-हाजात (यानी पेशाब-पाख़ाना और ख़्वाहिश पूरा करने के मौक़े) भी शामिल हैं। और ज़ाहिर है कि ऐसे मौक़े पर ज़बान से ज़िक्र व तिलावत मकरूह है। पस कुल अह्या से मालूम होता है कि हुज़ूर (सल्ल०) ऐसे अहवाल और ऐसे मौक़े में क़ल्बी (दिल से) ज़िक्र किया करते थे।

ऐसे वक़्त में ज़िक्रे-क़ल्बी का बक़ा मुमकिन है। अब इसको ज़िक्र न कहना हरमान अनिल्बरकात (यानी ज़िक्र की बरकत से महरूमी) का मश्वरा देना है। बहरहाल जहाँ ज़िक्रे-लिसानी (ज़बान से ज़िक्र) न हो सके वहाँ ज़िक्रे-क़ल्बी जारी रखे। यानी तसव्वुर रखे, तवज्जोह रखे, ध्यान रखे। अगर उस वक़्त की ख़ास कोई दुआ साबित हो तो उसको दिल ही दिल में पढ़े, ज़बान से न पढ़े। पस ज़िक्र हर हाल में मतलूब है तो जिस हालत में जो भी मुमकिन हो, करता रहे।

(ज़रूरत तबलीग़, मुल्हिक़ा, दावत-व-तबलीग़)

मख़सूस दुआएँ

बीवी से पहली मर्तबा मुलाक़ात की दुआ

जिस वक़्त औरत के साथ पहली बार ख़िल्वत करे तो चाहिए कि उसकी पेशानी के बाल पकड़कर यह दुआ पढ़े (ज़बान से)—

اَللّٰهُمَّ اِنِّيْ اَسْئَلُكَ مِنْ خَيْرِهَا وَخَيْرِمَا جَبَلْتَهَا عَلَيْهِ وَاَعُوْذُ بِكَ مِنْ شَرِّهَا وَشَرِّمَا جَبَلْتَهَا عَلَيْهِ

"ऐ अल्लाह् मैं आपसे इसकी भलाई माँगता हूँ और पनाह

चाहता हूँ आपकी इसकी बुराई से और इसकी जिबिल्ली आदतों की बुराई से।"

जब जिमाअ का इरादा करे

जिस वक़्त हमबिस्तरी का इरादा करे तो यह दुआ पढ़े (ज़बान से)–

اَللّٰهُمَّ جَنِّبْنَا الشَّيْطَانَ وَجَنِّبِ الشَّيْطَانَ مَا رَزَقْتَنَا.

"अल्लाह के नाम से शुरू करता हूँ, या अल्लाह दूर रख हमको शैतान से और दूर रखे शैतान को उस बच्चे से जो आप हमको नसीब करें।"

इंज़ाल के वक़्त की दुआ

जिस वक़्त इंज़ाल होने लगे तो अपने दिल में यह दुआ पढ़े–

اَللّٰهُمَّ لَا تَجْعَلْ لِلشَّيْطَانِ فِيْمَا رَزَقْتَنِيْ نَصِيْبًا.

"या अल्लाह जो बच्चा आप हमें नसीब करें शैतान के लिए उसमें कोई हिस्सा न करना (मुनाजात मक़बूल)

तक़लील जिमाअ मुजाहिदा में दाखिल नहीं

सूफ़िया ने जिमाअ (बीवी से सुहबत करने) को मुजाहिदा में दाख़िल नहीं किया बल्कि वह तमाम लज़्ज़ात में "अलज़्ज़ु" (सबसे ज़्यादा मज़े की चीज़) है। मगर सूफ़िया ने उसकी तक़लील को मुजाहिदा में शुमार नहीं किया और न कसरते जिमाअ से मना किया है। गो दूसरी वजह से मना किया है। मगर मुजाहिदे की हैसियत से मना नहीं किया।

कसरते-जिमाअ में शरअन मुज़ाइक़ा नहीं और न ही यह ज़ुहद व तक़वे के ख़िलाफ़ है और बातिन को मुज़िर है

दुनिया में अज़्ज़ुल अशिया (यानी सबसे ज़्यादा लज़ीज़ शै) जिमाअ है, लेकिन शरीअत ने निकाह के ज़िमन में इसकी तर्ग़ीब

दी है कि—

يامعشر الشباب من استطاع منكم الباءة فليتزوج

"जो इस्तताअत रखता हो उसको चाहिए कि निकाह कर ले, क्योंकि यह निगाहों को पस्त और शर्मगाह की हिफ़ाज़त करनेवाला है।" (अल-मसालिहुल अक़्लिया)

इस हदीस में तर्ग़ीब-निकाह से ममनूअ महज़ शहवत को तोड़ना नहीं है बल्कि लज़्ज़त भी मुराद है, वरना शहवत को तोड़ने की और भी सूरतें हो सकती हैं, चुनांचे रहबानियत (यानी औरतों से बिल्कुल अलग-थलग रहना) इख़्तसा (यानी ख़स्सी बनना है) और काफ़ूर खा लेना है।

बाज़ सहाबा ने अपने इज्तिहाद से या राहिबों को देखकर ख़स्सी बनने की इजाज़त चाही थी, तो हुज़ूर (सल्ल०) ने निहायत सख़्ती से मना फ़रमाया।

फिर शरीअत में अज़ल (यानी बीवी से सुहबत करने में ऐन इंज़ाल के वक़्त अलग हो जाने से ताकि इंज़ाल बाहर हो) से मना किया गया है क्योंकि उसमें पूरी सैरी और मुकम्मल लज़्ज़त नहीं होती, अगर निकाह से महज़ कसरते-शहवत ही मक़सूद होती तो अज़ल से इंकार न किया जाता।

और बाज़ नसूस से तर्ग़ीबे-निकाह से मक़सूद औलाद पैदा करना है। लेकिन वह ख़ुद मौक़ूफ़ है लज़्ज़त पर। तो मशरूत की तर्ग़ीब शर्त की तर्ग़ीब है। फिर निकाह की तर्ग़ीब में कसरते-जिमाअ से भी शरीअत ने मना नहीं किया।

चुनांचे खाने की क़िल्लत व कसरत के लिए तो कुछ हुदूद हदीस में भी वारिद हैं कि तिहाई पेट खाने में भरे और तिहाई पानी में और तिहाई सांस के लिए रखे, मगर कसरते-जिमाअ के लिए शरीअत में कोई हुदूद वारिद नहीं। शरीअत ने इस मामले में बहस ही नहीं की। यह तबई मस्अला है। इससे अतबा बहस करते हैं।

इससे मालूम हुआ कि कसरते जिमाअ से बातिन को ज़रर नहीं होता वरना शरीअत इससे बहस करती।

(तक़लीलुल-मनाम बसूरत, मुल्हिक़ा, बरकाते रमज़ान)

हुज़ूर सल्ल० और बाज़ सहाबा (रज़ि०) की हालत

फिर अहले-शरीअत का तर्ज़े-अमल देखा तो उनमें सबसे बढ़कर हुज़ूर (सल्ल०) हैं। हुज़ूर (सल्ल०) की हालत यह थी कि तक़लीले तआम (खाने की कमी) तो आपने की है लेकिन तक़लीले जिमाअ का एहतिमाम आपके यहाँ न था। आपके पास नौ बीवियाँ थीं और दो बांदियाँ मिलाकर ग्यारह का अदद पूरा हो गया था। तो बाज़ दफ़ा आपने एक रात में सबसे फ़रागत की। हुज़ूर (सल्ल०) में यह क़ुव्वत भी और लोगों से बहुत ज़्यादा थी। सहाबा (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि हम बाहम कहा करते थे कि हुज़ूर (सल्ल०) में तीस मर्दों की क़ुव्वत है और बाज़ रिवायत में चालीस भी आया है। इसी लिए अल्लाह तआला ने आपको ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त दी। बल्कि हुज़ूर (सल्ल०) ने जो नौ पर इक्तफ़ा किया, यह भी आपका सब्र था, वरना आपको अपनी क़ुव्वत के मुवाफ़िक़ तीस-चालीस निकाह करने चाहिएँ थे। ग़रज़ हुज़ूर (सल्ल०) ने कसरते-जिमाअ से एहतिराज़ नहीं फ़रमाया। अगर यह बातिन को मुज़िर होता तो आप ज़रूर इससे एहतिराज़ करते।

फिर हुज़ूर (सल्ल०) के बाद सहाबा किराम (रज़ि०) के तर्ज़े अमल को देखा जाए तो अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) रमज़ान में इफ़्तार करके इशा के वक़्त तक ग्यारह औरतों से फ़ारिग़ हुआ करते थे। उनमें बाँदियाँ भी थीं। सहाबा (रज़ि०) के ज़माने में इशा की नमाज़ देर में होती थी, इसी लिए उनको काफ़ी वक़्त मिलता था। ग़रज़ सहाबा (रज़ि०) का कसरते जिमाअ में यह अमल था और अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) वे बुज़ुर्ग हैं जो

इत्तबाए सुन्नत व ज़ुहद व इबादत में सहाबा (रज़ि०) के अंदर मुमताज़ थे। इनके तर्ज़ से भी मालूम हुआ कि कसरते-जिमाअ ज़ुहद व इबादत के ख़िलाफ़ नहीं और न बातिन को मुज़िर है। पस कसरते जिमाअ से ज़रर का एतिक़ाद रखना दीन में बिद्अत ईजाद करना है।

(बरकाते रमज़ान)

कसरते जिमाअ में अपनी सेहत का लिहाज़ रखना बहुत ज़रूरी है

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया कि क़ुव्वत वाला मोमिन अल्लाह तआला के नज़दीक कम क़ुव्वत वाले मोमिन से बेहतर और ज़्यादा प्यारा है।

(तिर्मिज़ी, अहमद, इब्ने-माजा)

जब क़ुव्वत अल्लाह के नज़दीक ऐसी प्यारी चीज़ है तो उसको बाक़ी रखना और बढ़ाना और जो चीज़ें क़ुव्वत कम करनेवाली हैं उनसे एहतियात रखना, यह सब मतलूब होगा। इसमें ग़िज़ा का बहुत कम बरतना, नींद का बहुत कम कर देना, हमबिस्तरी (यानी अपनी बीवी से सुहबत करने) में हद क़ुव्वत से आगे ज़्यादती करना या ऐसी चीज़ खाना जिससे बीमार हो जाए, या बदपरहेज़ी करना जिससे बीमार पड़ जाए (या कमज़ोरी और ज़ौफ़ लाहिक़ हो जाए) सब दाख़िल हो गया, उनसे बचना चाहिए।

हज़रत उम्मे-मुंज़िर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने एक मौक़े पर हज़रत अली (रज़ि०) से फ़रमाया कि खजूर मत खाओ, तुमको कमज़ोरी है।

फ़ायदा

इस हदीस से बदपरहेज़ी की मुमानिअत मालूम हुई। क्योंकि सेहत के वास्ते मुज़िर है। वजह इसकी यह है कि हमारी जान भी अल्लाह तआला की मिल्कियत है जो बतौर अमानत के हमको दे रखी है। इसलिए उसके हुक्म के मुआफ़िक़ उसकी हिफ़ाज़त हमारे

ज़िम्मे है और उसकी हिफ़ाज़त एक यह है कि उसकी सेहत की हिफ़ाज़त करे। दूसरे उसकी क़ुव्वत की हिफ़ाज़त करे, तीसरे उसकी जमीअत (यकसूई) की हिफ़ाज़त करे। यानी अपने इख़्तियार से ऐसा कोई काम न करे जिसमें जान में परेशानी हो जाए, क्योंकि इन चीज़ों में ख़लल आ जाने से दीन के कामों की हिम्मत नहीं रहती। नीज़ दूसरे हाजत-मंदों की ख़िदमत और इम्दाद नहीं कर सकता, कभी-कभी नाशुक्री और बे-सब्री से ईमान खो बैठता है। (हयातुल-मुस्लिमीन, रूह दहम)

कसरते जिमाअ का नुक़सान

शुरू में शहवत के इफ़रात में (यानी जायज़ तौर से ख़्वाहिश पूरा करने और बीवी से बहुत ज़्यादा सुहबत करने में) भी नुक़सान है, इस वास्ते कि इफ़रात (ज़्यादती) में तबीअत का निशात जाता रहता है। बुज़ुर्गों ने भी इससे मना किया है। बहुत ग़ुलू नहीं करना चाहिए। तबीअत के निशात की बहुत क़द्र करना चाहिए। जब शहवत को रोका जाता है तबीअत में एक शगुफ़्तगी ज़रूर पैदा हो जाती है। उस शगुफ़्तगी को महफ़ूज़ रखकर उससे ताआत में काम लेना चाहिए।

इमाम ग़ज़ाली (रह०) का इर्शाद

इमाम ग़ज़ाली (रह०) ने लिखा है कि जिसको मर्ज़ न हो और एतिदाल के साथ क़ुव्वते (शहविया) भी हो उसको मुक़व्वियात और दवाएँ खा-खाकर शहवानी क़ुव्वतों को अज़राह हवस (नफ़्सपरस्ती की वजह से) बरंगेख़्ता करना और (भड़काना) ऐसा है जैसे साँप-बिच्छू ख़ामोश पड़े थे उनको छेड़ना शुरू कर दिया कि आओ मुझे काटो। उमरा (मालदारों) को इसका बहुत शौक़ होता है कि मैंने इस पर तंबीह की है कि मशरूअ (जायज़) शहवत के (पूरा करने में) इफ़रात और ज़्यादती करने से भी बातिन का

नुक़सान होता है और जिस्मानी नुक़सान भी होता है।

(हुस्नुल-अज़ीज़)

बीवी से जिमाअ करने के हुदूद

कसरते-जिमाअ के लिए शरीअत में तो कोई हद वारिद नहीं हुई, शरीअत ने इससे बहस ही नहीं की। यह तबई मस्अला है इससे अतिब्बा बहस करते हैं।

लेकिन यह ज़रूर होता है कि कसरते-जिमाअ के लिए हर शख़्स को अपनी क़ुव्वत का अंदाज़ा कर लेना ज़रूरी है। इसराफ़ (ज़्यादती) तो हर शै में मज़्मूम है। (तक़लीलुल-मनाम)

कितने दिनों में बीवी से क़रीब होना चाहिए

बग़ैर सख़्त तक़ाज़े के बीवी के पास नहीं जाना चाहिए। मुतवस्सित क़ुव्वत (दर्मियानी दर्जे का ताक़त रखनेवाला) मर्द एक हफ़्ते में एक बार सुहबत करने से सेहत को महफ़ूज़ रख सकता है, यानी एक माह में चार बार क़ुरबत कर सकता है। और इससे ज़्यादा में मर्द पर ज़्यादा ताब होगा और उसमें तौलीद (पैदाइश) की क़ुव्वत न रहेगी और या फिर औरत का हक़ अदा न होगा।

(बुवादिरुन-नवादिर)

दवाओं के ज़रिए क़ुव्वते बाह को बढ़ाने और उभारने का नुक़सान

जो लोग मुशहयात (शहवत बढ़ाने वाली दवाओं) से जिमाअ की क़ुव्वत को बढ़ाते हैं वे अपनी सेहत बर्बाद करते हैं। इसके लिए यही क़ायदा होना चाहिए कि बग़ैर सख़्त तक़ाज़े के बीवी के पास न जाएँ। मुशहयात (शहवत उभारने वाली दवाओं के) इस्तेमाल करने से क़ुव्वत ज़्यादा नहीं होती। हाँ, इस्तक़ा हो जाता है। जैसे इस्तक़ा वाला कितना ही पानी पी ले प्यास नहीं बुझती तो यही हाल उन लोगों का होता है कि कसरते मुक़ारबत (सुहबत

की ज़्यादती) से उनकी भी प्यास नहीं बुझती और यह सेहत की दलील नहीं बल्कि सख़्त मर्ज़ है जिसका अंजाम ख़तरनाक है।

(तबलीग़, तक़लीलुत-तआम)

ज़रूरी हिदायत, एतिदाल की तर्ग़ीब

हर चीज़ को अपने दर्जे पर रखना यही बड़ा कमाल है। मेरे नज़दीक सेहत की हिफ़ाज़त निहायत ज़रूरी है अपने ऊपर सख़्ती और ताब न डाले, इससे बाज़ लोग मर्ज़ में मुब्तला हो गए, बाज़ मज्नूं हो गए, बाज़ मर गए। सेहत व हयात की बड़ी हिफ़ाज़त रखनी चाहिए, यह वह चीज़ है जो फिर कहाँ मयस्सर।

सेहत के सामने लज़्ज़त क्या चीज़ है। थोड़ी देर के लिए मज़ा फिर सज़ा। निशाते-तबीअत की बहुत क़द्र करना चाहिए। मशरूअ जायज़ शहवत के इफ़्रात (यानी पूरा करने में मुबालग़ा और ज़्यादती) में भी नुक़सान है। इस वास्ते कि निशात जाता रहता है। बुज़ुर्गों ने इससे भी मना किया है। (हुस्नुल अज़ीज़)

एतिदाल का क़ायदा

(एतिदाल के साथ) यह अम्र मुफ़ीदे-सेहत, इत्मिनान-बख़्श, राहत- रसां, सुरूर-अफ़्ज़ा, किफ़ायत-आमेज़ दारैन में ज़िंदगी की तरक़्क़ी का सबब है। औरत से क़ज़ा शहवत (अपनी ख़्वाहिश पूरी) करने के बाद आपस में मुहब्बत बढ़ती है और मर्द की इज़्ज़त औरत की नज़र में बढ़ जाती है वह समझती है कि यह मर्द है, नामर्द नहीं।

कसरते-जिमाअ से पैदा होनेवाले इमराज़

जिमाअ तबई फ़ेल है और बक़ाए नस्ल के लिए ज़रूरी है। मगर इसकी कसरत (ज़्यादती मुंदर्जाज़ेल) इतने अमराज़ पैदा करती है—

(1) ज़ोफ़े बसर (यानी निगाह की कमज़ोरी) (2) सक़्क़ुल

समाअत (यानी कम सुनना, बहरापन) (3) चक्कर, रअशा (4) दर्द कमर (5) दर्द गुर्दा (6) पेशाब की कसरत (7) ज़ोफ़े मेदा (8) ज़ोफ़े क़ल्ब (यानी मेदा और दिल की कमज़ोरी ख़ुसूसन जिसको ज़ोफ़े बसर या ज़ोफ़े मेदा या सीने का कोई मर्ज़ हो उसको जिमाअ की कसरत) निहायत मुज़िर है। (बहिश्ती गौहर)

ज़रूरी हिदायात, एहतियाती तदाबीर, मुनासिब ग़िज़ाएँ

फ़ायदा नं० 1

1. ग़िज़ा (यानी खाना खाने) से कम से कम तीन घंटे बाद जिमाअ (सुहबत करने का) उमदा वक़्त है।
2. और ज़्यादा पेट भरा होने और बिल्कुल ख़ाली होने और थकान की हालत में जिमाअ मुज़िर (नुक़सानदेह) है।
3. फ़ारिग़ होने के बाद फ़ौरन पानी पी लेना सख़्त मुज़िर है। ख़ुसूसन अगर ठंडा पानी हो।

फ़ायदा नं० 2

हमेशा जिमाअ के बाद कोई मुक़व्वी चीज़ जैसे दूध या गाजर का हलवा या अंडा खा लिया जाए या हकीम के मशवरे से (माउल लहम पी लिया करें)।

और इस बारे में (यानी जिमाअ से फ़ारिग़ होने के बाद ग़िज़ा के इस्तेमाल करने में सबसे उमदा शै वह दूध है जिसमें सोंठ की एक गाँठ या छुहारे उबाले गए हों।

अगर हमेशा इसका इस्तेमाल करें और इन तदाबीर के पाबंद रहें जो अभी ज़िक्र हुए हैं तो ज़ौफ़ की नौबत भी न आए और रअशा वग़ैरह कोई मर्ज़ (जिमाअ की वजह से) पैदा नहीं होगा।

(बहिश्ती गौहर)

फ़ायदा नं० 3

जिसको कसरते जिमाअ से नुक़सान पहुंचा हो, वह सर्दी और गर्मी से बचे और सोने में मशग़ूल हो और ख़ून बढ़ाने और ख़ुश्की

दूर करने की तदबीर करे। मसलन दूध पिएं, या गाजर का हलवा खाए, या नीम बरश्त (आधा कच्चा आधा उबला) अंडा इस्तेमाल करे।

अगर हाथ पैरों में रअशा (लरज़ा कमज़ोरी) महसूस हो तो दिमाग़ और कमर पर बल्कि तमाम बदन पर चमेली का तेल या बाबूना का तेल मले।

और जिसको जिमाअ की वजह से ज़ोफ़े बसारत (निगाह की कमज़ोरी) हो गया हो, वह दिमाग़ पर बकसरत रोग़ने बादाम बनफ़्शा या रोग़ने चमेली मले और आँख पर बालाई बाँधे और गुलाब टपकाए।

और रेशे के लिए यह दवा कि शहद दो तोला लेकर, चाँदी के वर्क़ तीन अदद लेकर उसमें ख़ूब हल करके चाट लिया करें।

(बहिश्ती गौहर)

बाज़ हालात में बीवी से सुहबत करने की ज़रूरत

अगर किसी औरत पर अचानक निगाह पड़ जाए तो फ़ौरन उधर से निगाह फेर लो और अगर उसका कुछ ख़्याल दिल में रहे तो अपनी बीवी से फ़राग़त कर लेना चाहिए। इससे वह वस्वसा दफ़ा हो जाता है। (तालीमुद्दीन)

हदीस पाक में अजनबिया औरत की तरफ़ मैलान होने का जो इलाज मश्ग़ूली बिल्ज़ौजिया आया है (यानी अजनबी औरत की तरफ़ माइल हो तो अपनी बीवी से ख़्वाहिश पूरी कर लेना चाहिए) इस हदीस में यह टुकड़ा बतौर इल्लत के इर्शाद हुआ है।

ان الذی معہا مثل الذی معہا

"यानी जो शै उस औरत के पास है वह इसके पास भी है।"

मौलाना याक़ूब साहब ने इसकी अजीब शरह फ़रमाई थी। वह यह कि अश्या मुतवादिला (यानी जो चीज़ें इस्तेमाल में आती हैं)

उनकी तीन क़िस्में हैं। एक यह कि उनसे सिर्फ़ रफ़ा-ए-हाजत मक़सूद हो, लज़्ज़त मक़सूद न हो, मस्लन पाख़ाना करना। दूसरे वे जिनमें सिर्फ़ लज़्ज़त मक़सूद हो, मस्लन प्यास न होने की सूरत में निहायत ख़ुश्बूदार शर्बत पीना, जैसे जन्नत में होगा तीसरे वे जिसमें तीनों तर्कीबे हों।

तो हुज़ूर (सल्ल०) इस हदीस में इर्शाद फ़रमाते हैं कि गो जिमाअ में ज़्यादातर नफ़्स को लज़्ज़त मक़सूद होती है, मगर तुम दूसरा मुराक़बा कर लिया करो। यानी यह कि दफ़्अ हाजत मक़सूद है और इसी में राहत है, और जब मक़सूद दफ़्अ हाजत है तो उसमें अपनी .... सब बराबर हैं।

और ज़ानी को चूंकि महज़ लज़्ज़त मक़सूद होती है, इस वास्ते सारी दुनिया की औरतें भी अगर उसको मयस्सर हो जाएँ और एक बाक़ी रह जाए तो उसको यह ख़्याल रहेगा कि शायद इसमें और तरह का मज़ा हो। इसी वास्ते वह हमेशा परेशानी में रहता है। बख़िलाफ़ उस शख़्स के जो रफ़ा हाजत को ज़्यादा मक़सूद समझेगा, वह बहुत मुत्मइन होगा और अपने हक़ में रहेगा।

(अल-कलामुल-हसन)

औरत के लिए ज़रूरी हिदायत और तंबीह

नं० 1. औरत को चाहिए कि ख़ाविंद की इताअत करे, उसको ख़ुश रखे उसके हुक्म को टाले नहीं ख़ुसूसन जब वह हमबिस्तरी (यानी सुहबत करने के लिए बुलाए)।

नं० 2. हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि जब कोई मर्द अपनी बीवी को अपने काम के लिए बुलाए, तो ज़रूर उसके पास आए और चूल्हे पर बैठी हो तब भी चली आए।
मतलब यह है कि चाहे जितने ज़रूरी काम पर बैठी हो सब छोड़-छाड़कर चली आए।

नं० 3. और हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जब किसी मर्द ने

अपनी औरत को अपने पास लेटने के लिए बुलाया और वह न आई, फिर वह इसी तरह गुस्से में लेटा रहा तो सुबह तक उस औरत पर सारे फ़रिश्ते लानत करते हैं।

नं० 4. और हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि दुनिया में जब कोई औरत अपने मियाँ को सताती है तो जो हूर क़ियामत में उसकी बीवी बनेगी (बद दुआ देकर) यूँ कहती है कि ख़ुदा तेरा नास करे, तू उसको मत सता, यह तो तेरे पास मेहमान है, थोड़े ही दिनों में तुझको छोड़कर हमारे पास चला आएगा।
(बहिश्ती ज़ेवर)

फ़स्ल (2)

हालते-हैज़ में बीवी से क़रीब होने के अहकाम

1. हर महीने जो आगे की राह से (शर्मगाह जो महल्ल सुहबत है) ख़ून आता है उसको हैज़ कहते हैं। कम से कम हैज़ की मुद्दत तीन दिन, तीन रात है और ज़्यादा से ज़्यादा दस दिन, दस रात है। किसी को तीन दिन, तीन रात से कम ख़ून आया तो वह हैज़ नहीं बल्कि इस्तहाज़ा (बीमारी का ख़ून) है। किसी बीमारी की वजह से ऐसा हो गया है और अगर दस दिन-रात से ज़्यादा ख़ून आया है तो जितने दिन (दस दिन) से ज़्यादा आया वह भी इस्तहाज़ा है। (अख़्तरी बहिश्ती ज़ेवर)

2. अल्लाह तआला का फ़रमान है—

وَيَسْئَلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ قُلْ هُوَ اَذًى فَاعْتَزِلُوا النِّسَاءَ فِي الْمَحِيْضِ وَلَا تَقْرَبُوْهُنَّ حَتّٰى يَطْهُرْنَ الْاٰيَة

"और लोग आपसे हैज़ की हालत में सुहबत वग़ैरह करने का हुक्म पूछते हैं। आप फ़रमा दीजिए कि वह हैज़ गंदी

चीज़ है तो हालते हैज़ में तुम औरतों के साथ सुहबत करने से अलग रहा करो और इस हालत में उनसे क़ुरबत (सुहबत) मत किया करो जब तक कि वे हैज़ से पाक न हो जाएँ। फिर जब वे औरतें अच्छी तरह पाक हो जाएँ कि नापाकी का शुब्हा भी न रहे तो उनके पास आ जाओ। यानी उनसे सुहबत करो जिस जगह से तुमको ख़ुदा तआला ने इजाज़त दी है, यानी आगे से। (बयानुल-क़ुरआन)

हालते-हैज़ में बीवी से मुतमत्तुअ होने के हुदूद

1. मस्अला— हालते-हैज़ में नाफ़ से लेकर घुटने तक औरत के बदन को देखना और हाथ लगाना भी दुरुस्त नहीं।

(बयानुल-क़ुरआन)

2. हैज़ के ज़माने में मर्द के पास (बीवी का) रहना यानी सुहबत करना दुरुस्त नहीं और सुहबत के सिवा और सब कुछ बातें दुरुस्त हैं यानी साथ खाना-पीना लेटना वग़ैरह दुरुस्त है।

(बहिश्ती ज़ेवर)

जब औरत हाइज़ा हो उस वक़्त तमत्तुअ की दो सूरतें हैं। एक यह कि मर्द मुतमत्तुअ हो और फ़ेल उसकी जानिब से पाया जाए और दूसरी सूरत यह है कि औरत मुतमत्तुअ हो और फ़ेल उसकी जानिब से पाया जाए। सो अगर मर्द मुतमत्तुअ हो (तो उसका हुक्म ऊपर गुज़र चुका) और अगर औरत मुतमत्तअ हो तो उसका हुक्म यह है कि उसको (यानी बीवी को) मर्द के माबैन مابين السرة الى الركبته (यानी नाफ़ से लेकर घुटने तक के हिस्से) को देखना, उसको हाथ लगाना, उसका बोसा लेना वग़ैरह उमूर जायज़ हैं लेकिन यह औरत के लिए भी जायज़ नहीं है कि वह अपनी مابين السرة الى الركبته (यानी नाफ़ और घुटने के दर्मियानी किसी हिस्से) से मर्द के किसी अज़ू को मस करे (यानी छुए या मले)।

(ज़मीमा, बेहश्ती ज़ेवर)

मस्अला : हैज़ व निफ़ास की हालत में औरत की नाफ़ और रानों के दर्मियान के जिस्म को देखना या उसमें अपने जिस्म को मिलाना जब कोई कपड़ा दर्मियान में न हो और सुहबत करना हराम है।

मस्अला : हैज़ व निफ़ास की हालत में औरत का बोसा लेना और जूठा पानी वग़ैरह पीना और उससे लिपटकर सोना और उसकी नाफ़ के ऊपर और रानों के नीचे के जिस्म से अपने जिस्म को मिलाना अगरचे कपड़ा दर्मियान में न हो और नाफ़ और रानों के दर्मियान में कपड़े के साथ मिलाना जायज़ है, बल्कि हैज़ की वजह से औरत से अलग होकर सोना या उसके इख़्तलात (मिलने-जुलने से बचना) मकरूह है। (बहिश्ती गौहर)

मुतफ़र्रिक़ ज़रूरी मसाइल

मस्अला 1. अगर हैज़ पूरे दस दिन गुज़रने पर मौक़ूफ़ (ख़त्म हुआ) हो तो फ़ौरन ही सुहबत करना दुरुस्त है। और अगर दस दिन से पहले हैज़ मौक़ूफ़ (ख़त्म) हो जाए, मगर आदत के मुआफ़िक़ मौक़ूफ़ हो तो सुहबत उस वक़्त दुरुस्त है जबकि औरत या तो गुस्ल कर ले या एक नमाज़ का वक़्त ख़त्म हो जाए। और अगर दस दिन से पहले मौक़ूफ़ हो और अभी आदत के दिन भी नहीं गुज़रे, मस्लन सात दिन हैज़ आया करता था और छः ही दिन में मौक़ूफ़ हो गया तो आदत के अय्याम गुज़रे बग़ैर सुहबत दुरुस्त नहीं। (बयानुल-क़ुरआन)

मस्अला 2. किसी की आदत पाँच दिन की या नौ दिन की थी सो जितने दिन की आदत थी उतने ही दिन ख़ून आया, फिर बन्द हो गया तो जब तक नहा न ले तब तक सुहबत करना दुरुस्त नहीं। अगर गुस्ल न करे तो जब एक नमाज़ का वक़्त गुज़र जाए तब सुहबत दुरुस्त है, उससे पहले दुरुस्त नहीं।

(बहिश्ती ज़ेवर)

मसूअला 3. अगर आदत पाँच दिन की थी और ख़ून चार ही दिन में बन्द हो गया तो नहा के नमाज़ पढ़ना वाजिब है। लेकिन जब तक पाँच दिन पूरे न हो लें तब तक सुहबत करना दुरुस्त नहीं है, (क्योंकि एहतिमाल है) कि शायद फिर ख़ून आ जाए।

मसूअला 4. और अगर पूरे दस दिन-रात हैज़ आया तो जब से ख़ून बन्द हो जाए उसी वक़्त से सुहबत करना दुरुस्त है। चाहे नहा चुकी हो या अभी न नहाई हो।

मसूअला 5. अगर एक या दो दिन ख़ून आकर बन्द हो गया तो नहाना वाजिब नहीं है। वुज़ू करके नमाज़ पढ़े लेकिन अभी सुहबत करना दुरुस्त नहीं है। (बहिश्ती ज़ेवर)

हालते-हैज़ में बीवी से जिमाअ करने का कफ़्फ़ारा

कफ़्फ़ारा वह है जो ऐसे उमूर में बतौर बदला व तावान (जुर्माना) के मुक़र्रर हो- जो अस्ल में मुबाह (जायज़ हों) मगर किसी आरज़ी सबब से हराम हो जाएँ जैसा रमज़ान और हालते एहराम (और हालते हैज़) में जिमाअ करना।

कफ़्फ़ारा के बारे में शरीअत का यही तरीक़ा है कि जो उमूर मुबाह हैं और किसी आरज़ी अम्र से हराम हो जाएँ (जैसे बीवी से जिमाअ करना जायज़ है लेकिन हालते हैज़ में गंदगी की वजह से नाजायज़ है) उनमें कफ़्फ़ारा है और जो अम्र हमेशा हराम हैं (जैसे ज़िना वग़ैरह) उनमें हुदूद व ताज़ीरात (सज़ाएँ) हैं।

कफ़्फ़ारा

عن ابن مسعود عن رسول الله فی الذی یاتی امراته وھی حائض قال یتصدق بدینار اوبنصف دینار (ابن ماجه)

"उस शख़्स के हक़ में जो अपनी औरत से हालते हैज़ में जिमाअ करे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि एक दीनार या आधा दीनार बतौर कफ़्फ़ारे के हदया दे दे।"

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया, अल-अहकामुन-नक़्लिया)

मसअला : अगर ग़ल्ब-ए-शहवत से हालते हैज़ में सुहबत हो गई तो ख़ूब तौबा करना वाजिब है और अगर कुछ ख़ैरात भी दे दे तो ज़्यादा बेहतर है। (बयानुल-क़ुरआन, सूरह बक़रा)

हालते-इस्तहाज़ा में सुहबत करने का हुक्म

शरीअत में इस्तहाज़ा बीमारी के ख़ून को कहते हैं जो तीन दिन तीन रात से कम या दस दिन, दस रात से ज़्यादा आता है। दस दिन से जितने दिन ज़्यादा आया है वह इस्तहाज़ा है।

(बहिश्ती ज़ेवर, तग़य्युर)

इस्तहाज़ा का हुक्म ऐसा है जैसे किसी की नकसीर फूटी और बन्द न हो, ऐसी औरत नमाज़ भी पढ़े, रोज़ा भी रखे और उससे सुहबत करना भी दुरुस्त है। (बहिश्ती ज़ेवर)

हालते-निफ़ास में क़रीब होने के अहकाम

बच्चा पैदा होने के बाद आगे की राह से जो ख़ून आता है उसको निफ़ास कहते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा निफ़ास के चालीस दिन हैं और कम की कोई हद नहीं है। (बहिश्ती ज़ेवर)

अगर ख़ून चालीस दिन से बढ़ गया तो अगर पहला ही बच्चा हो तो चालीस दिन निफ़ास के हैं और जितना ज़्यादा आया है, वह इस्तहाज़ा है। और अगर यह पहला बच्चा नहीं है बल्कि उससे पहले जन चुकी है और उसकी आदत मालूम है कि इतने दिन निफ़ास आता है तो जितने दिन निफ़ास की आदत हो उतने दिन निफ़ास के हैं और जो उससे ज़्यादा है वह इस्तहाज़ा है और अगर पूरे चालीस दिन पर ख़ून बन्द हो गया (हालांकि आदत मसलन तीस दिन की थी) तो यह सब निफ़ास है और यह समझा जाएगा कि उसकी आदत बदल गई।

हालते-निफ़ास में रोज़ा, नमाज़ और सुहबत करने के वही मसअले (अहकाम) हैं जो ऊपर (हैज़ के बयान में) बयान हो

चुके। (बहिश्ती ज़ेवर)

जिस औरत के पहला बच्चा हो और चालीस दिन से कम में पाक हो जाए उससे सुहबत करना दुरुस्त है

सवाल : जिस औरत के अव्वल मर्तबा बच्चा पैदा हुआ है और उसको चार रोज़ मसलन निफ़ास का ख़ून आकर बन्द हो गया और एक दिन एक रात बन्द रहा तो दूसरे रोज़ शौहर को उससे वती (सुहबत करना) जायज़ है या नहीं? क्योंकि पहला बच्चा है, आदत का हाल मालूम नहीं हो सकता या शौहर को चालीस रोज़ का इंतिज़ार करना ज़रूरी है?

जवाब : चूंकि हैज़ व निफ़ास का हुक्म इस अम्र में यकसाँ है। रिवायत मज़्कूरा से मालूम हुआ है कि सूरते मसऊला में वती (सुहबत) जायज़ है। (इम्दादुल-फ़तावा)

फ़स्ल (3)

हालते-हमल में बीवी के पास जाने से एहतियात

औरत हर वक़्त इस क़ाबिल नहीं होती कि ख़ाविंद उससे हमबिस्तर हो सके, क्योंकि अय्यामे-हमल औरत के लिए ऐसे होते हैं, ख़ुसूसन उसके पिछले महीने (यानी शुरू के अय्याम) जिनमें औरत को अपने और अपने जिन्नैन (पेट के बच्चे) की सेहत के लिए ज़रूरी है कि वह मर्द की सुहबत से परहेज़ करे और यह सूरत कई माह तक रहती है। फिर जब वज़ा हमल (विलादत) होता है तो फिर भी कुछ मुद्दत तक औरत को मर्द की सुहबत से परहेज़ करना लाज़मी है।

हालते-हमल में बीवी से क़रीब होने की मुमानिअत महज़ तिब्बी है, हालते हमल में क़रीब होने का नुक़सान

औरत को जब हमल ठहर जाए तो जोश और शहवतवाला आदमी अगर उस औरत से सुहबत करेगा तो जिन्नैन (बच्चे) पर बुरा असर पड़ेगा और हमल गिर जाने का अंदेशा होता है। लिहाज़ा उस औरत को आराम दे और सुहबत तर्क कर दे।

हामिला के साथ सुहबत की मुमानिअत की वजह से एक तो इस्क़ाते हमल का अंदेशा है, दूसरे उस हमल से जो औलाद पैदा होगी उसके ख़िलाफ़ अत्वार में वालिदैन के शहवानी जोश मर्कूज़ होकर बद-अख़्लाक़ी पैदा करेंगे। क्योंकि शहवत के जोश का असर बच्चे पर ज़रूर पड़ता है और वह तबीअत में फ़ितरी हो जाता है।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया 1, अयज़न)

दूध पिलानेवाली औरत से सुहबत करना

दूध पिलानेवाली औरत से सुहबत करनी (बाज़ एतिबार से) बच्चे के लिए मुज़िर है, लेकिन अतिब्बा (डॉक्टरों) ने इस अम्र की इस्लाह के लिए बाज़ दवाओं के साथ (तदबीर) बतलाई है। लिहाज़ा यह काम मुज़िर न रहा।

मनाए-हमल की तदबीर इख़्तियार करना

सवाल : बाज़ औरतें जिस्म की कमज़ोर होती हैं और बच्चे बहुत जल्द-जल्द होते हैं, इससे उनकी भी तंदुरुस्ती ख़राब हो जाती है और बच्चे भी दूध ख़राब होने से दाइमुल-मर्ज़ हो जाते हैं। इस सूरत में मनाए-हमल दवाई खाना जायज़ है या नहीं?

जवाब : आइंदा के लिए हमल क़रार न पाने की तदबीर इख़्तियार करना बिला उज़्र मज़्मूम है। मस्अला सानिया (सूरत मज़्कूरा) में चूंकि उज़्र सहीह है। इसलिए माने हमल दवा खाना जायज़ है। (अल-मसालिहुल-अक़्लिया, इम्दादुल-फ़तावा)

इस्क़ाते-हमल यानी हमल गिराने का हुक्म

बिला उज़्र इस्क़ाते हमल नाजायज़ है (अगरचे जान की न पड़ी हो) और उज़्र व ज़रूरत से जब तक कि हमल में जान न पड़ी हो जायज़ है। अगर तहक़ीक़े-फ़न से हमल में जान पड़ना मोहतमिल हो तब तो मुतलक़न हमल गिराना हराम है और मूजिबे क़त्ले नफ़्स ज़कीया है (यानी क़त्ल का गुनाह होगा)। अगर जान पड़ जाने के बाद इस्क़ात किया तो अगर मुर्दा ही गिर गया तो पाँच सौ दिरहम ज़मान लाज़िम है और वह बाप को मिलेगा और अगर ज़िंदा होकर मर गया तो पूरी दियत यानी ख़ूनबहा और कफ़्फ़ार-ए-क़त्ल वाजिब है।

(अलबत्ता) अगर जान नहीं पड़ी, तो अगर कोई उज़्र सहीह (शरई) हो तो इस्क़ात जायज़ है (यानी) अगर उस औरत को या बच्चे को उस हमल से कुछ नुक़सान हो तो जायज़ है वरना नहीं (और उज़्र सहीह का यही मतलब है)।

ख़ुलासा कलाम यह है कि सबमें अशद (गुनाहे कबीरा) हमल-हत्ता (यानी ज़िंदा हमल) का इस्क़ात है और इससे कम हमल लाही (जिसमें जान न पड़ी हो) का और उससे कम माने हमल. दवाओं के इस्तेमाल का। अलबत्ता उज़्र मक़बूल से आख़िर के दवामिर यानी माने हमल तदबीर जान पड़ने से पहले हमल का इस्क़ात जायज़ है और अम्रे अव्वल यानी ज़िंदा हमल का इस्क़ात हर हाल में हराम है। (इम्दादुल-फ़तावा)

फ़स्ल (4)

लवातत यानी पीछे की राह में ख़्वाहिश पूरी करना

इस फ़ेल (लवातत) की ख़बासत अक़्लन व नक़्लन हर तरह साबित है और तबीअते सलीमा इससे ख़ुद ही इंकार करती है। इस फ़ैल पर सिवाए बद तीनत आदमी के और कोई सबक़त (पेश क़दमी) नहीं कर सकता। यह बहुत पुराना मर्ज़ है और सबसे पहले क़ौमे लूत इसका शिकार हुई। लूत अलैहिस्सलाम ने अपनी क़ौम से फ़रमाया—

اَتَأْتُوْنَ الْفَاحِشَةَ مَا سَبَقَكُمْ بِهَا مِنْ اَحَدٍ مِّنَ الْعٰلَمِيْنَ

(अल-कमाल फ़िद्दीन, मुल्हिक़ा, दीन व दुनिया)

लूत अलैहिस्सलाम को शहर सुदूम में रहने और उस शहरवालों की हिदायत का हुक्म हुआ था। वे लोग लवातत के आदी थे, जिसका इर्तकाब उनसे पहले किसी ने नहीं किया।

लूत अलैहिस्सलाम ने अपनी क़ौम से फ़रमाया कि क्या तुम ऐसा फ़हश काम करते हो जिसको तुमसे पहले किसी ने दुनियावालों में से नहीं किया। तुम औरतों को छोड़कर मर्दों के साथ शहवतरानी करते हो? बल्कि तुम हद ही से गुज़र गए हो। फिर हमने लूत और उनके मुताल्लिक़ीन को बचा लिया सिवाए उनकी बीवी के। फिर और सबको हमने हलाक कर दिया और हमने उन पर ख़ास क़िस्म का यानी पत्थरों का मेंह बरसाया (यानी पत्थरों की बारिश की)।

यहाँ दो अज़ाबों का ज़िक्र है। तख़्ता उलट जाना (यानी ज़मीन को उलट देना) और पत्थर बरसना। ज़ाहिर यह है कि पहले ज़मीन उठाकर उलट दी गई। जब वे नीचे को गिरे तो ऊपर

से उन पर पथराव किया और बाज़ लोगों ने कहा कि जो बस्ती में थे उलट दिए गए और जो बाहर हुए थे उन पर पत्थर बरसे।

सो देखो तो सही उन मुज्रिमों का अंजाम कैसा हुआ। अगर ग़ौर से देखें तो ताज्जुब करेंगे और समझेंगे कि नाफ़रमानी का क्या अंजाम होता है। बेशक इस वाक़िए में भी (बड़ी) इबरत है। (बयानुल क़ुरआन, तर्जुमा व तफ़्सीर सूरह आराफ़, शुअरा, हूद)

इस वक़्त यह मर्ज़ लोगों में शिद्दत से फ़ैल रहा है। कोई तो ख़ास असल गुनाह में मुब्तला है और कोई उसके मुक़द्दिमात में यानी अजनबी लड़के या अजनबी औरत पर (शहवत के साथ) नज़र करना।

हदीस में है—

اللسان يزنى وزنا النطق والقلب يتمنى ويشتهى

यानी उसमें हाथ लगाना, बुरी निगाह से देखना सब दाख़िल हो गए यहाँ तक कि जी ख़ुश करने के लिए हसीन लड़के या लड़की से बातें करना यह भी ज़िना व लवातत में दाख़िल है, और दिल का ज़िना सोचना है जिससे लज़्ज़त हासिल हो तो जैसे ज़िना में तफ़्सील है ऐसे ही लवातत में भी है। (दावते-अब्दियत)

अपनी औरत से लवातत करना

पीछे के मौक़ा (रास्ते) में अपनी बीवी से भी सुहबत करना हराम है। (बयानुल-क़ुरआन)

बदफ़ेली और लवातत यानी पीछे की राह में ख़्वाहिश पूरी करने की आदत, ऐसी आदत है जिससे नस्ले इंसानी की बीख़कनी होती है। इस तरीक़े से गोया इंसान निज़ामे इलाही को बिगाड़कर उसके मुख़ालिफ़ और नाजायज़ व ग़लत तरीक़े से क़ज़ाए हाजत करता है। इस वजह से उन अफ़आल का बुरा और मज़्मूम होना तो लोगों की तबीअतों में जम गया है। फ़ासिक़ व फ़ाजिर (जो लोग) ऐसे काम करते हैं (वे भी) उनके जवाज़ का इक़रार नहीं

करले। अगर उनकी तरफ़ ऐसे अफ़आल (बद अमली) की निस्बत कर दी जाए तो शर्म व हया से मर जाना गवारा करते हैं। जो लोग फ़ितरत के सरचश्मा से हट गए हों तो उनको फिर किसी की हया बाक़ी नहीं रहती और बरमला (बे-दरीग़) वे ऐसे अफ़आल अमल में लाते हैं।

और लवातत (यानी पीछे की राह में ख़्वाहिश पूरी करनेवाले पर) शरीअत ने कोई कफ़्फ़ारा मुक़र्रर व मशरूअ नहीं फ़रमाया और कफ़्फ़ारा इसलिए मशरूअ नहीं हुआ कि (यह इतना बड़ा गुनाह है) कि इस जिन्स के गुनाहों में कफ़्फ़ारा का असर नहीं होता। कफ़्फ़ारा का असर तो वहाँ होता है जो अम्र अस्ल में मुबाह (जायज़ हो) और किसी आर्ज़ी अमल से हराम हो जाए, मगर इस क़िस्म के गुनाह फ़ी नफ़्सिही बड़े गुनाह हैं इसलिए उनमें सज़ा ही है, कफ़्फ़ारा नहीं है।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया, अल-अहकामुन-नक़्लिया)

फ़स्ल (1)

ग़ुस्ल व पाकी का बयान

हालते हैज़ में सुहबत की ममनूअ और नापाकी के बाद ग़ुस्ल वाजिब होने की वजह

हैज़ के ख़ून को ख़ुदा तआला ने क़ुरआने करीम में अज़ी यानी गंदगी फ़रमाया है। पस जिस गंदगी से बार-बार जिस्म आलूद हो उससे नफ़्से इंसानी नापाक हो जाता है। दूसरे ख़ून के जारी होने से लतीफ़ पुट्ठों को ज़ौफ़ पहुँचता है (यानी कमज़ोरी आती है) और जब ग़ुस्ल कर लिया जाता है तो ज़ाहिरी और बातिनी तहारत हासिल होती है और पुट्ठे तरोताज़ा हो जाते हैं और वही क़ुव्वत औद कर आती है (यानी लौट आती है)।

इसी गंदगी की वजह से ख़ुदा तआला ने क़ुरआने करीम में औरत की हालते हैज़ के मुताल्लिक़ इर्शाद फ़रमाया है–

فَاعْتَزِلُوا النِّسَاءَ فِي الْمَحِيضِ وَلَا تَقْرَبُوهُنَّ حَتَّىٰ يَطْهُرْنَ.

यानी हैज़ के दिनों में औरतों से अलग रहो और उनके नज़दीक मत जाओ यानी उनसे सुहबत मत करो, जब तक कि वे हैज़ से पाक न हो जाएँ।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया, अल-अहकामुन-नक़्लिया)

मनी ख़ारिज होने के बाद ग़ुस्ल वाजिब होने की हिक्मत

मनी के ख़ारिज होने से ग़ुस्ल का वाजिब होना शरीअते-इस्लामिया की ख़ूबियों और अल्लाह तआला की रहमत व हिक्मत व मस्लिहत में से है। क्योंकि मनी सारे बदन से निकलती है इसी लिए ख़ुदा तआला ने मनी का नाम सलालता रखा है। चुनांचे

ख़ुदा तआला फ़रमाता है—

وَلَقَدْ خَلَقْنَا الْإِنْسَانَ مِن سُلَالَةٍ مِّن طِينٍ (سورة مومنون ١٢)

यानी हमने इंसान को मिट्टी के ख़ुलासा यानी ग़िज़ा से बनाया। यानी अव्वल मिट्टी होती है फिर उससे बज़रिए नबातात की ग़िज़ा हासिल होती है। फिर हमने उसको नुत्फ़ा (मनी) से बनाया। (बयानुल-क़ुरआन स०, 7; सूरह 87, मोमिन)

पस मनी इंसान के सारे बदन का सत (मग़ज़ व जौहर) होता है, जो बदन से रवाँ होकर पुश्त के रास्ते से नीचे आता है और उज़्वूए-तनासुल से ख़ारिज होता है। इसके निकलने से बदन को बहुत कमज़ोरी पहुँचती है और मनी के निकलने से जिस्म को बहुत कमज़ोरी लाहिक़ होती है और पानी के इस्तेमाल से वह कमज़ोरी नहीं रहती।

मनी के निकलने से बदन के तमाम मुसामात (लतीफ़ सुराख़) खुल जाते हैं और कभी उनसे पसीना निकलता है और पसीने के साथ बदन के अंदरूनी हिस्से के मवाद (फ़ुज़्लात) भी ख़ारिज होते हैं जो कि मुसामात पर आकर ठहर जाते हैं। अगर उनको न धोया जाए तो ख़तरनाक इमराज़ पैदा होने का अंदेशा होता है। इसलिए शरीअत ने मनी के ख़ारिज होने के बाद गुस्ल करने का हुक्म दिया। (अल-मसालिहुल अक़्लिया)

सुहबत से फ़राग़त के बाद गुस्ल के वाजिब होने का राज़

जब इंसान मुजामअत (सुहबत) से फ़ारिग़ होता है तो उसका दिल इंक़बाज़ और तंगी की हालत में होता है और उसपर तंगी और ग़म-सा तारी हो जाता है और अपने आपको निहायत तंगी और घुटन में पाता है और जब दोनों क़िस्म की नजासत दूर हो जाती हैं और अपने बदन को मलता और गुस्ल करता है और अच्छे कपड़े बदलकर ख़ुश्बू लगाता है तब उसकी तंगी दूर हो जाती है (उसके बाद रौनक़ व ख़ुशी मालूम होती है। पहली हालत

को हद्स और दूसरी को तहारत कहते हैं। हद्स ही का दूसरा नाम जनाबत है)।

जनाबत से जिस्म में गिरानी और काहिली और कमज़ोरी व ग़फ़लत पैदा हो जाती है और गुस्ल से दिल में क़ुव्वत व निशात व सुरूर और बदन में ताज़गी पैदा हो जाती है। चुनांचे हज़रत अबूज़र रज़ियल्लाहु तआला अन्हु फ़रमाते हैं कि गुस्ले-जनाबत के बाद में ऐसा मालूम हुआ कि गोया अपने ऊपर से एक पहाड़ उतार दिया और यह ऐसा अम्र (और ऐसी हक़ीक़त) है जिसको हर एक सलीम तबअ़ और सहीह फ़ितरतवाला जानता है।

हाज़िक़ (माहिर) तबीबों ने लिखा है कि जिमाअ के बाद गुस्ल करना बदन की तहलीलशुदा क़ुव्वतों और कमज़ोरियों को लौटा देता है और गुस्ल (गुस्ल जनाबत) जिस्म व रूह के लिए निहायत नाफ़ेअ और मुफ़ीद है और जनाबत में रहना और गुस्ल न करना जिस्म व रूह के लिए सख़्त मुज़िर (नुक़सानदेह) है। इस हुक्म की ख़ूबी पर अक़्ल व फ़ितरत सलीमा काफ़ी गवाह हैं।

(अल-मसालिहुल-अक़्लिया)

बाज़ दूसरे फ़वाइद

जनाबत से इंसान को फ़रिश्तों से दूरी पैदा होता है और जब गुस्ल करता है तो वह दूरी हट जाती है। इसलिए बहुत-से सहाबा (रज़ि०) से मरवी है कि जब इंसान सोता है तो उसकी रूह आसमान की तरफ़ चढ़ती है और पाक हो तो उसको सज्दे का हुक्म होता है और अगर जनाबत में हो तो उसको सज्दे की इजाज़त नहीं दी जाती। यही वजह है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि जुंबी जब सोने लगे तो वुज़ू कर ले।

जिमाअ में तलज़्ज़ुज़ (लुत्फ़ हासिल करना) होता है और उससे ज़िक्रे इलाही में ग़फ़्लत ज़रूर हो जाती है, इसलिए भी इसकी तलाफ़ी के लिए गुस्ल किया जाता है। (अल-मसालिहुल-अक़्लिया)*

फ़स्ल (2)

गुस्ल का महल व मक़ाम और उसकी हैयत, गुस्ल खड़े होकर करे या बैठकर

गुस्ल ऐसी जगह करे जहाँ उसको कोई न देखे, अगर तंहाई की जगह हो जहाँ कोई न देख पाए तो नंगे नहाना भी दुरुस्त है। चाहे खड़े होकर नहाए या बैठकर और चाहे गुस्ल ख़ाने की छत पटी हो या न पटी हो। लेकिन बैठकर नहाना बेहतर है, क्योंकि उसमें पर्दा ज़्यादा है और नाफ़ से लेकर घुटने के नीचे तक दूसरी औरत के सामने भी बदन खोलना गुनाह है। अकसर औरतें दूसरी (औरत) के सामने बिल्कुल नंगी होकर नहाती हैं। यह बड़ी बुरी और बे-ग़ैरती की बात है। (बेहश्ती ज़ेवर)

सवाल : औरतों और मर्दों के लिए खड़े होकर या बैठकर गुस्ल करने का हुक्म यकसाँ है या मुख़्तलिफ़ है? हदीस से हुज़ूर और हज़रत आइशा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा का बैठकर गुस्ल फ़रमाना मालूम होता है।

जवाब : (मर्द व औरत दोनों का) हुक्म यकसाँ है, यानी जायज़ तो दोनों हैं (ख़्वाह खड़े होकर गुस्ल करे या बैठकर लेकिन) क़ुऊद बएितबार इसके कि असतर है, अफ़ज़ल होगा। (यानी बैठकर गुस्ल करना अफ़ज़ल है क्योंकि उसमें सतर ज़्यादा होता है।)

मुफ़स्सिरीन ने 'अन्ना शिअतुम' में 'मिन क़याम व क़ुऊद' से तामीम की है तो हालते गुस्ल तो उससे अहवन है यानी जब बीवी से सुहबत बैठकर और खड़े होकर दोनों तरह जायज़ है, तो गुस्ल भी दोनों तरह बतरीक़े ऊला जायज़ होगा।

(इम्दादुल-फ़तावा, मअ हाशिया)

मस्अला : किसी पर ग़ुस्ल फ़र्ज़ हो और पर्दे की जगह न हो तो उसमें यह तफ़्सील है कि मर्दों को मर्दों के सामने नंगे होकर नहाना चाहिए और इसी तरह औरत को औरतों के सामने भी नहाना चाहिए। मर्द को औरत के सामने और औरतों को मर्दों के सामने नहाना हराम है। बल्कि (ऐसी हालत में बजाए ग़ुस्ल करने के) तयम्मुम करे। (बहिश्ती गोहर)

ग़ुस्ल करने का मसनून तरीक़ा

ग़ुस्ल करनेवाली को चाहिए कि पहले गट्टे तक दोनों हाथ धोए फिर इस्तिंजा की जगह (शर्मगाह) धोए। हाथ और इस्तिंजा की जगह पर नजासत हो तब भी और न हो तब भी हर हाल में इन दोनों को पहले धोना चाहिए, फिर जहाँ बदन पर नजासत लगी हो उसको पाक करले फिर वुज़ू करे और अगर किसी चौकी या पत्थर पर ग़ुस्ल करती हो (यानी ऐसी जगह जहाँ ग़ुस्ल का पानी ठहरता न हो बल्कि सब बह जाता हो) तो वुज़ू करते वक़्त पैर भी धो लिया जाए और अगर ऐसी जगह है कि पैर भर जाएंगे और ग़ुस्ल के बाद फिर धोने पड़ेंगे तो पूरा वुज़ू कर ले मगर पैर न धोए। फिर वुज़ू के बाद तीन मर्तबा अपने सर पर पानी डाले फिर तीन मर्तबा दाहिने कंधे पर, फिर तीन मर्तबा बाएँ कंधे पर पानी डाले, इस तरह से कि सारे बदन पर पानी बह जाए। फिर उस जगह से हटकर पाक जगह में आए और फिर पैर धोए और अगर वुज़ू करते वक़्त पैर धो लिए हों तो अब धोने की ज़रूरत नहीं, और ग़ुस्ल करते वक़्त पहले सारे बदन पर अच्छी तरह हाथ फेर ले तब पानी बहाए, ताकि सब जगह पानी अच्छी तरह पहुँच जाए, कहीं सूखा न रहे।

1. इस तरह कुल्ली करना कि सारे मुँह में पानी पहुँच जाए।
2. नाक में पानी डालना जहाँ तक नाक नरम हो।
3. सारे बदन पर पानी पहुँचाना। (बहिश्ती ज़ेवर)

ग़ुस्ल के वक़्त ज़िक्र या दुआ पढ़ना

जब सारे बदन पर पानी पड़ जाए और कुल्ली कर ले और नाक में पानी डाल ले, ग़ुस्ल हो जाएगा, चाहे ग़ुस्ल करने का इरादा हो चाहे न हो।

इसी तरह ग़ुस्ल करते वक़्त कलिमा पढ़ना या पढ़कर पानी पर दम करना भी ज़रूरी नहीं। चाहे कलिमा पढ़े या न पढ़े हर हाल में आदमी पाक हो जाता है, बल्कि नहाते वक़्त कलिमा या और कोई दुआ न पढ़ना बेहतर है। (शरीअत से ऐसे वक़्त में कोई चीज़ पढ़ना साबित नहीं इसलिए उस वक़्त कुछ न पढ़े।)

बहालते-ग़ुस्ल बातें करना

(ग़ुस्ल करने वाले को चाहिए कि बग़ैर ज़रूरत के) ग़ुस्ल करते वक़्त बातें न करे। (बहिश्ती ज़ेवर)

सवाल : अग़लातुल-उलूम में नं० 83 पर यह मसअला है कि ग़ुस्ल ख़ाना या पाख़ाना में बात करने को अवाम नाजायज़ समझते हैं, सो इसकी कुछ अस्ल नहीं, अलबत्ता बग़ैर ज़रूरत बातें न करे। (अग़लातुल उलूम) और मिश्कात शरीफ़ में यह हदीस है--

لا یخرجن الرجلان یضربان الغائط کاشفین عن عورتہما یتحدثان فان اللہ یمقت علی ذلک

तर्जमा : इस हदीस से यह मालूम होता है कि कश्फ़े औरत (यानी सतर खुला होने की हालत) में बातचीत करने से अल्लाह तआला ग़ुस्सा होते हैं और ग़ुस्ल बिलख़ुसूस पाख़ाना में कश्फ़े औरत (यानी सतर खोलना) लाज़मी है।

जवाब : इस हदीस का मिस्दाक़ (व मतलब) यह है कि दोनों बात करनेवाले इस तरह बरहना (नंगे) होकर कि एक-दूसरे को बरहना देखते हों वरना रजुलान की क्या तख़्सीस थी الرجل یضرب الغائط الخ इबारत होती واذالیس فلیس (इम्दादुल-फ़तावा)

ख़ुलासा यह है कि बिला ज़रूरत बात न करे और ज़रूरत हो तो बात कर सकता है।

गुस्ल के वक्त औरत को शर्मगाह के ज़ाहिरी हिस्से को धोना काफ़ी है

सवाल : गुस्ल के वक़्त औरत को अपने अंदाम निहानी (शर्मगाह का अंदरूनी हिस्सा) को उंगली के ज़रिए तीन मर्तबा पाक करना फ़र्ज़ है या सुन्नत? और इस तरह पाक किए बग़ैर गुस्ल जायज़ हो सकता है या नहीं? बाज़ हज़रात फ़रमाते हैं कि अगर गुस्ल करने से पहले अंदाम निहानी (शर्मगाह) को उंगली के ज़रिए तीन मर्तबा पाक न किया जाए तो गुस्ल न होगा। उनका यह फ़रमाना सहीह है या ग़लत?

जवाब : ऐसा करना न फ़र्ज़ है न सुन्नत, और उसको ज़रूरी कहना ग़लत है—

فی للدر المختار ولا تدخل اصبعها فی قبلها وبه یفتی

तर्जुमा : यानी औरत अपनी शर्मगाह में उंगली दाख़िल न करेगी इसी पर फ़त्वा है। (इम्दादुल-फ़तावा)

गुस्ल में औरत को सर के बाल खोलना ज़रूरी नहीं

अगर सर के बाल गुंदे हुए न हों (यानी चोटी न बंधी हो) तो सब बाल भिगोना और सारी जड़ों में पानी पहुंचाना फ़र्ज़ है। एक बाल भी सूखा रह गया या एक बाल की जड़ में पानी न पहुंचा तो गुस्ल न होगा और अगर बाल गुंदे हुए हों तो बालों को भिगोना माफ़ है। अलबत्ता सब जड़ों में पानी पहुंचाना फ़र्ज़ है, एक जड़ भी सूखी न रहने पाए और अगर बग़ैर खोले सब जड़ों में पानी न पहुँच सके तो खोल डाले और बालों को भी भिगो दे।

सवाल : जिस वक़्त नहाना हो उस वक़्त औरत के बाल खुले हुए थे फिर गूँध लिए (यानी चोटी कर ली) इस सूरत में तो नहाते वक़्त सिर्फ़ जड़ों का तर करना काफ़ी न होगा बल्कि और चोटी को खोलकर नहाना वाजिब होगा। नीज़ हैज़ से नहाते वक़्त भी

बाल की जड़ों का तर कर लेना और बालों को भिगोना भी ग़ालिबन काफ़ी है। गुस्ले जनाबत में इसमें ग़ालिबन कोई फ़र्क़ नहीं। सहीह शरई हुक्म क्या है?

जवाब :

فی الهدایة ولیس علی المراۃ ان تنقض ضفائرها فی الغسل اذا بلغ الماء اصول الشعر۔

इससे दो बातें मालूम हुईं। एक यह कि अगर ग़ुस्ल के वक़्त बाल मज़्फ़ूर हों (यानी बाल गुंधे हों, चोटी की हुई हो) तो खोलना वाजिब नहीं ख़्वाह हदुस के वक़्त (जब ग़ुस्ल वाजिब हुआ है) मज़्फ़ूर (खोले हुए) हों या न हों। दूसरे (यह मालूम हुआ कि) मुतलक़ ग़ुस्ल का यह हुक्म है ख़्वाह वह ग़ुस्ले जनाबत हो या ग़ुस्ले हैज़े हो। (इम्दादुल-फ़तावा)

चन्द ज़रूरी हिदायात व आदाब

1. ग़ुस्ल करते वक़्त क़िब्ले की तरफ़ मुँह न करें।
2. पानी बहुत ज़्यादा न फेकें और न बहुत कम लें कि अच्छी तरह ग़ुस्ल न कर सकें।
3. ग़ुस्ल के बाद किसी कपड़े से अपना बदन पोंछ डालें और बदन ढकने में बहुत जल्दी करें यहाँ तक कि अगर वुज़ू करते वक़्त पैर न धोए हों तो ग़ुस्ल की जगह से हटकर पहले अपना बदन ढकें, फिर दोनों पैर धोएँ।
4. नथ और बालियों और अँगूठी छल्लों को ख़ूब हिला लें ताकि पानी सुराख़ों में पहुँच जाए और अगर बालियाँ न पहने हो तब भी क़सद करके सुराख़ों में पानी डाल लें। ऐसा न हो कि पानी न पहुँचे और ग़ुस्ल सही न हो। अलबत्ता अँगूठी छल्ले ढीले हों कि बे-हिलाए भी पानी पहुंच जाए तो हिलाना वाजिब नहीं लेकिन हिला लेना मुस्तहब है। (बहिश्ती ज़ेवर)

फ़स्ल (3)

जिन सूरतों में ग़ुस्ल वाजिब होता है

चन्द ज़रूरी इस्तिलाहात

जवानी के जोश के वक़्त अव्वल-अव्वल (शुरू-शुरू) में जो पानी निकलता है उसके निकलने से जोश ज़्यादा हो जाता है, कम नहीं होता उसको मज़ी कहते हैं और ख़ूब मज़ा आकर जब जी भर जाता है, उस वक़्त जो निकलता है उसको मनी कहते हैं। और उन दोनों की पहचान यही है कि मनी निकलने के बाद जी भर जाता है और जोश ठंडा पड़ जाता है और मज़ी निकलने से जोश कम नहीं होता बल्कि ज़्यादा हो जाता है और मज़ी पतली होती है और मनी गाढ़ी।

मज़ी निकलने से ग़ुस्ल वाजिब नहीं, अलबत्ता वुज़ू टूट जाता है (और मनी के निकलने से ग़ुस्ल वाजिब हो जाता है)।

1. सोते-जागते में जब जवानी के जोश के साथ मनी निकल आए तो ग़ुस्ल वाजिब हो जाता है चाहे मर्द (या औरत) के हाथ लगाने से निकले या महज़ ख़याल और ध्यान करने से निकले या किसी और तरह से निकले हर हाल में ग़ुस्ल वाजिब हो जाता है।

   वदी (अमूमन) पेशाब के बाद निकलती है लेकिन उससे यह लाज़िम नहीं आता कि बग़ैर पेशाब के नहीं निकलती और न यह लाज़िम आता है कि पेशाब के बाद फ़ौरन निकलती हो। (इम्दादुल-फ़तावा)
2. जब मर्द के पेशाब के मक़ाम की सुपारी अंदर चली जाए और छुप जाए तो भी ग़ुस्ल वाजिब हो जाता है चाहे मनी निकले या न निकले। मर्द की सुपारी आगे की राह में गई हो तब भी ग़ुस्ल वाजिब हो जाता है चाहे कुछ भी न निकला हो और

अगर पीछे की राह में गई हो तब भी ग़ुस्ल वाजिब है। लेकिन पीछे की राह में करना और कराना बड़ा गुनाह है।

3. जो ख़ून आगे की राह से (औरत को) हर महीने आया करता है उसको हैज़ कहते हैं। जब यह ख़ून बन्द हो जाए तो ग़ुस्ल करना वाजिब है और जो ख़ून बच्चा पैदा होने के बाद आता है उसको निफ़ास कहते हैं। उसके बन्द होने पर भी ग़ुस्ल करना वाजिब है।

ख़ुलासा यह है कि चार चीज़ों से ग़ुस्ल वाजिब होता है—

1. जोश के साथ मनी का निकलना
2. मर्द की सुपारी का अंदर चला जाना,
3. हैज़, और
4. निफ़ास के ख़ून का बन्द हो जाना। (बहिश्ती ज़ेवर)

हदसे अकबर यानी ग़ुस्ल फ़र्ज़ होने के चार असबाब हैं—

1. पहला सबब मनी का अपनी जगह से शहवत के साथ जिस्म से बाहर निकलना ख़्वाह सोते में या जागते में, बे-होशी में या होश में, जिमाअ से या बग़ैर जिमाअ के, किसी ख़्याल या तसव्वुर से या ख़ास हिस्से को हरकत देने से या और किसी तरह से।
2. दूसरा सबब किसी बा-शहवत मर्द के मुश्तरका हिस्से में दाख़िल होना ख़्वाह वह मर्द हो या औरत या ख़ुशी और ख़्वाह मनी गिरे या न गिरे। अगर दोनों बालिग़ हैं तो दोनों पर वाजिब है वरना जिसमें शर्त पाई जाए (यानी जो बालिग़ हो) उस पर ग़ुस्ल फ़र्ज़ हो जाएगा।
3. तीसरा सबब हैज़ से पाक होना है।
4. चौथा सबब निफ़ास से पाक होना। (बहिश्ती ज़ेवर)

मसअला : अगर कोई औरत शहवत के ग़ल्बे से अपने ख़ास हिस्से में (यानी शर्मगाह में) किसी लकड़ी वग़ैरह को या अपनी उंगली को दाख़िल करे तब भी उसपर ग़ुस्ल फ़र्ज़ हो जाएगा।

(बहिश्ती ज़ेवर)

चन्द ज़रूरी मसाइल

1. छोटी (नाबालिग़ा) लड़की से अगर किसी मर्द ने सुहबत की जो अभी जवान नहीं हुई तो उसपर ग़ुस्ल वाजिब नहीं है, लेकिन आदत डालने के लिए उसे ग़ुस्ल कराना चाहिए (लेकिन मर्द पर ग़ुस्ल वाजिब होगा)।
2. अगर थोड़ी-सी मनी निकली और ग़ुस्ल कर लिया। फिर नहाने के बाद और मनी निकल आई तो फिर नहाना वाजिब है।
3. और अगर नहाने के बाद शौहर की मनी निकली जो औरत के अंदर थी तो ग़ुस्ल दुरुस्त हो गया, फिर से नहाना वाजिब नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर)

सवाल : कोई शख़्स अपनी बीवी से हमबिस्तर हुआ यानी सुहबत की और वह पेशाब वग़ैरह भी कर ले और उसने ख़ूब ग़ुस्ल किया और जब नमाज़ शुरू करने लगा तब मज़ी या मनी का क़तरा आ गया। अब वह फिर से ग़ुस्ल करे या नहीं?

जवाब : अगर उस वक़्त उज़्ूए-तनासुल मुंतशिर न हो तो दोबारा ग़ुस्ल वाजिब नहीं और अगर मुंतशिर हो (यानी क़ायम हो) और शहवत भी हो तो ग़ुस्ल वाजिब होगा। (इम्दादुल-फ़तावा)

मस्अला नं० 5 : अगर किसी के ख़ास हिस्से से कुछ मनी निकली और उसने ग़ुस्ल कर लिया और ग़ुस्ल के बाद बग़ैर शहवत के कुछ निकली तो इस सूरत में पहला ग़ुस्ल बातिल हो जाएगा, दोबारा ग़ुस्ल फ़र्ज़ है बशर्तेकि यह बाक़ी मनी सोने और पेशाब करने और चालीस क़दम या उससे ज़्यादा चलने से पहले निकले, मगर उस बाक़ी मनी के निकलने से पहले अगर नमाज़ पढ़ ली जाए तो वह नमाज़ सहीह रहेगी उसका इआदा लाज़िम नहीं।

मस्अला नं० 6 : पेशाब के बाद मनी निकले तो उसपर भी ग़ुस्ल फ़र्ज़ है बशर्तेकि शहवत के साथ। (बहिश्ती ज़ेवर)

जिन सूरतों में ग़ुस्ल फ़र्ज़ नहीं

1. मनी अगर अपनी जगह से शहवत के साथ जुदा न हो तो अगरचे बाहर निकल आए, ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा। मसलन किसी शख़्स ने कोई बोझ उठाया, ऊँचे से गिर पड़ा या किसी ने उसको मारा और सदमें से उसकी मनी बग़ैर शेहवत के निकल आई तो ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा।
2. अगर कोई मर्द अपने ख़ास हिस्से में कपड़ा लपेटकर जिमाअ करे तो ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा बशर्तेकि कपड़ा इस क़द्र मोटा हो कि जिसकी हरारत और जिमाअ की लज़्ज़त उसकी वजह से महसूस न हो, मगर अहवत यह है कि हरारते ह्श्फ़ा से ग़ुस्ल वाजिब हो जाएगा।
3. अगर कोई मर्द अपने ख़ास हिस्से को हश्फ़ा के सर की मिक़दार से कम दाख़िल करे तब भी ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा।
4. मज़ी और वदी के निकलने से ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा।
5. इस्तिहाज़ा से ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा।
6. जिस शख़्स को मनी जारी रहने का मर्ज़ हो तो उसके ऊपर उस मनी के निकलने से ग़ुस्ल फ़र्ज़ न होगा। (बहिश्ती ज़ेवर)

एहतिलाम के मसाइल

1. अगर आँख खुली और कपड़े या बदन पर मनी लगी हुई देखी तो भी ग़ुस्ल करना वाजिब है चाहे सोते में कोई ख़्वाब देखा हो या न देखा हो।
2. सोते में मर्द के पास (या औरत के पास) रहने और सुहबत करने का ख़्वाब देखा और मज़ा भी आया, लेकिन आँख खुली तो देखा कि मनी नहीं निकली तो उस पर ग़ुस्ल वाजिब नहीं है। अलबत्ता अगर मनी निकल आई हो तो ग़ुस्ल वाजिब है और अगर कपड़े या बदन पर कुछ भीगा-भीगा मालूम हुआ लेकिन यह ख़्याल हुआ कि यह मज़ी है मनी नहीं है तब भी ग़ुस्ल करना वाजिब है।

3. मियाँ-बीवी दोनों एक पलंग पर सो रहे थे, जब उठे तो चादर पर मनी का धब्बा देखा। सोते में ख़्वाब का देखना न मर्द को याद है न औरत को तो दोनों नहाएँ क्योंकि मालूम नहीं यह किस की मनी है।

बीमारी की वजह से या किसी और वजह से आप ही आप मनी निकल आई मगर जोश और ख़्वाहिश बिल्कुल नहीं थी तो ग़ुस्ल वाजिब नहीं, अलबत्ता वुज़ू टूट जाएगा।

(बहिश्ती ज़ेवर)

पानी की तरह रक़ीक़ मनी और मज़ी का हुक्म

सवाल : एक शख़्स की मनी बहुत ही रक़ीक़ (पतली) है और अपनी बीवी से तफ़रीह के वक़्त उसकी मनी बदून (जुंबिश और सख़्त हरकत) के साथ ख़ारिज हो जाती है तो क्या वह शख़्स बग़ैर ग़ुस्ल के अपनी नमाज़ें पढ़ सकता है या ग़ुस्ल वाजिब है।

जवाब : ग़ुस्ल वाजिब है। (दुर्रे-मुख़्तार)

सवाल : इस ज़माने में तबीअतों के ज़ोफ़ से मनी बहुत रक़ीक़ (पतली) होती है। अगर कपड़े पर लगकर सूख जाए तो रगड़ने-खुरचने से पाक हो जाएगा या धोने की ज़रूरत है। और मज़ी कपड़े में लग जाए तो रगड़ना काफ़ी है या धोना लाज़िम है?

जवाब : (दुर्रे-मुख़्तार की) रिवायत ऊला से मालूम हुआ कि रक़ीक़ मनी रगड़ने से पाक न होगी और रिवायते सानिया से मालूम हुआ कि मज़ी का धोना मुतलक़न (हर हाल में) वाजिब है।

(इम्दादुल-फ़तावा)

फ़स्ल (4)

जिन लोगों पर ग़ुस्ल वाजिब है उनके लिए चन्द ज़रूरी अहकाम

1. जिनको नहाने की ज़रूरत है उनको कलाम मजीद का छूना और उसका पढ़ना और मस्जिद में जाना जायज़ नहीं।

2. और अल्लाह तआला का नाम लेना और कलमा पढ़ना, दुरूद शरीफ़ पढ़ना जायज़ है।
3. तफ़्सीर की किताबों को बे-नहाए (यानी नापाकी की हालत में) और बे-वुज़ू छूना मकरूह है और तर्जुमादार क़ुरआन को छूना हराम है। (बहिश्ती ज़ेवर)
4. जो औरत हैज़ से हो या निफ़ास से हो और जिस पर नहाना वाजिब हो (यानी जो जुंबी हो) उसको मस्जिद में जाना और काबा शरीफ़ का तवाफ़ करना और कलाम मजीद का पढ़ना और कलाम मजीद का छूना दुरुस्त नहीं।
5. अगर कलाम मजीद जुज़दान या रूमाल में लिपटा हो तो इस हाल में क़ुरआन मजीद का छूना और उठाना दुरुस्त है।
6. कुर्ते के दामन से और (ओढ़े हुए) दुपट्टे से भी क़ुरआन मजीद को पकड़ना और उठाना दुरुस्त नहीं, अलबत्ता बदन से अलग कोई कपड़ा हो जैसे रूमाल वग़ैरह उससे पकड़कर उठाना जायज़ है।
7. अगर अलहम्द की पूरी सूरह दुआ की नीयत से पढ़े या और दुआएँ जो क़ुरआन में आई हैं, उसको दुआ की नीयत से पढ़े, तिलावत की नीयत से न पढ़े तो दुरुस्त है, उसमें कुछ गुनाह नहीं। दुआए-क़ुनूत का पढ़ना भी दुरुस्त है।
8. कलिमा, दुरूद शरीफ़, इस्तिग़फ़ार पढ़ना, अल्लाह तआला का नाम लेना और कोई वज़ीफ़ा पढ़ना सब दुरुस्त है।
9. अगर कोई औरत लड़कियों को क़ुरआन मजीद पढ़ाती हो तो ऐसी हालत में हिज्जे लगवाना दुरुस्त है और रवाँ पढ़ाते वक़्त पूरी आयत न पढ़े बल्कि एक-एक दो-दो लफ़्ज़ के बाद साँस तोड़ दे और काट-काटकर आयत कहला दे। (बहिश्ती ज़ेवर)
10. हैज़ के ज़माने में मुस्तहब है कि नमाज़ के वक़्त वुज़ू करके किसी पाक जगह थोड़ी देर बैठकर अल्लाह-अल्लाह कर लिया करे ताकि नमाज़ की आदत छूटने न पाए।

(बहिश्ती ज़ेवर)

ख़ुलासए-अहकाम

1. जुंबी और हैज़वाली औरतों को क़ुरआन पढ़ना जायज़ नहीं और इसमें किसी का इख़्तिलाफ़ नहीं है। इसी से यह भी मालूम हो गया कि एक आयत ताम्मा (पूरी आयत का) पढ़ना जायज़ नहीं।
2. अहादीस का पढ़ना जायज़ है। इसमें किसी का इख़्तिलाफ़ नहीं।
3. एक आयत से कम पढ़ना बाज़ उलमा व फ़ुक़्हा के नज़दीक जायज़ नहीं।
4. अगर क़ुरआन शरीफ़ तिलावत के क़सद से न पढ़ा जाए बल्कि दुआ के इरादे से पढ़ा जाए जबकि (बशर्तेकि) उसमें दुआ के माने हों तो अकसर (उलमा) के नज़दीक जायज़ है। बाज़ ने इस पर फ़तवा नहीं दिया।
5. क़ुरआन व हदीस की दुआओं का हैज़वाली औरत का पढ़ना जायज़ है और क़ुरआन की दुआओं में यह क़ैद है कि दुआ की नीयत से पढ़े, क़ुरआन की नीयत से न पढ़े और जहाँ इस एहतियात की तवक़्क़ो न हो वहाँ मना करने ही में एहतियात व तक़वा है।

   जुंबी और हाइज़ के अहकाम में कुछ फ़र्क़ नहीं, इसलिए ये अहकाम दोनों के लिए मुश्तरक हैं। (इम्दादुल-फ़तावा)

जनाबत यानी ग़ुस्ल वाजिब होने की हालत में नाख़ून व बाल कटवाना मकरूह है

सवाल : बहालते-जनाबत ख़त बनवाना, बाल कतरवाना, नाख़ून तरशवाना, जायज़ है या नहीं और यह क़ौल कि ऐसी हालत में ग़ुस्ल से पहले बालों या नाख़ूनों के जुदा करने से बाल और नाख़ून जुंबी रहेंगे और क़ियामत के रोज़ फ़रयाद करेंगे कि हमको जुंबी छोड़ा गया, यह सहीह है या नहीं?

जवाब :

فی رسالته هدایة النور لمولانا سعد الله در مطالب المومنین فی آروسترون
وتراسیدن موئے و گرفتن ناخنار احالت جنابت کراهت ست .اه

बहालते जनाबत बाल कतराना-कटवाना और नाख़ून तरशवाना मकरूह है। बाक़ी इसके मुताल्लिक़ जो नक़ल किया गया है कहीं नज़र से नहीं गुज़रा और ज़ाहिरन सहीह भी नहीं।

(इम्दादुल-फ़तावा)

तह्तावी अली मराक़ियुल फ़लाह में इसकी कराहत की तसरीह मौजूद है और इसकी भी तसरीह मौजूद है कि बहालते जनाबत जिन बालों को काटा जाएगा क़ियामत के रोज़ अल्लाह से वे बाल शिकवा करेंगे।

ویکره قص الاظفار فی حالة الجنابة و کذا ازالة الشعر لما روی خالد مرفوعا من
تنور قبل ان یغتسل جاء ته کل شعر فتقول یارب سله لم ضیع ولم یغسلنی
کذا فی شرح شرعته الاسلام عن مجمع الفتاوی

ग़ुस्ल करने की वजह से अगर बीमारी का ख़तरा हो

1. अगर बीमारी की वजह से पानी नुक़सान करता हो कि अगर वुज़ू या ग़ुस्ल करेगी तो बीमार पड़ जाएगी या देर में अच्छी होगी तो ग़ुस्ल की बजाए तयम्मुम करना दुरुस्त है। लेकिन अगर ठंडा पानी नुक़सान करता हो और गर्म पानी नुक़सान न करे तो गर्म पानी से ग़ुस्ल करना वाजिब है। अलबत्ता अगर ऐसी जगह है कि गर्म पानी नहीं मिल सकता तो तयम्मुम करना दुरुस्त है।
2. जिस तरह वुज़ू की जगह तयम्मुम दुरुस्त है इसी तरह ग़ुस्ल की जगह भी मजबूरी के वक़्त तयम्मुम दुरुस्त है। इसी तरह जो औरत हैज़ व निफ़ास से पाक हुई हो मजबूरी के वक़्त उसको भी तयम्मुम दुरुस्त है। वुज़ू और ग़ुस्ल के तयम्मुम में कोई फ़र्क़ नहीं, दोनों का एक ही तरीक़ा है।

3. तयम्मुम करने का यह तरीक़ा है कि दोनों हाथ पाक ज़मीन पर मारे और सारे मुँह पर मल ले, फिर दूसरी मर्तबा ज़मीन पर हाथ मारे और दोनों हाथों पर कोहनियों समेत मले। चूड़ियाँ, कंगन वग़ैरह के दर्मियान अच्छी तरह मले। अगर उसके गुमान में नाख़ून बराबर कोई जगह छूट जाएगी तो तयम्मुम न होगा। अंगूठी-छल्ले उतार डाले ताकि कोई जगह छूट न जाए। उंगलियों में ख़िलाल कर ले। जब ये दोनों चीज़ें कर ले तो तयम्मुम हो गया। मिट्टी पर हाथ मारकर हाथ झाड़ डाले ताकि मुंह पर मिट्टी न लग जाए।
4. अगर ग़ुस्ल करना नुक़सान करता हो और वुज़ू नुक़सान न करे तो ग़ुस्ल की जगह तयम्मुम कर ले और वुज़ू कर ले और अगर किसी को नहाने की भी ज़रूरत है और वुज़ू भी नहीं है और वुज़ू करने से भी वह माज़ूर है तो एक ही तयम्मुम कर ले। दोनों के लिए अलग-अलग तयम्मुम करने की ज़रूरत नहीं। (बहिश्ती ज़ेवर)

बहालते सफ़र रेल में तयम्मुमे जनाबत दुरुस्त है या नहीं?

सवाल : रेल वग़ैरह के सफ़र में कहीं ग़ुस्ल की ज़रूरत हो जाए और पानी न मिले तो तयम्मुम करके नमाज़ अदा कर सकता है या नहीं? स्टेशन पर अगरचे पानी हर जगह बकसरत मिल सकता है, लैकिन रेल में ग़ुस्ल करना मुश्किल है तो तयम्मुम कर सकता है या नहीं?

जवाब : स्टेशन पर ग़ुस्ल करना मुश्किल नहीं। लुंगी बांधकर प्लेटफ़ार्म पर बैठकर सक़्क़ा (पानी वाले) को पैसे देकर कह दे कि मश्क से पानी छोड़ दे और उसके क़ब्ल टांगे वग़ैरह रेल में पाख़ाना या ग़ुस्ल ख़ाना में जाकर पाक कर ले, या बर्तन में पानी लेकर अगर नल में पानी मौजूद हो तो उससे पाख़ाना या ग़ुस्ल ख़ाना में ग़ुस्ल मुमकिन है, हिम्मत की ज़रूरत है। ऐसी हालत में तयम्मुम दुरुस्त नहीं। (इम्दादुल फ़तावा)

फ़स्ल (5)

सैलानुर्रहम (लिकोरिया) का शरई हुक्म

सवाल : अकसर औरतों को सफ़ेद रतूबत (पानी की तरी) हमेशा जारी रहती है, क्या वे पाक हैं या नहीं? और ऐसी हालत में नमाज़ जायज़ है या नहीं और बहालते इख़राज (यानी उसके निकलने से) वुज़ू टूटता है या नहीं?

जवाब : यहाँ तीन मौक़े हैं (जहाँ से रतूबत बहती है) और हर जगह रतूबत का हुक्म जुदा है।

1. एक मौक़ा फ़रज ख़ारिज का है (यानी शर्मगाह का ज़ाहिरी हिस्सा), उसकी रतूबत (तरी) दर हक़ीक़त पसीना है और वह पाक है।
2. और एक मौक़ा फ़र्ज दाख़िल के बातिन यानी उससे आगे का है यानी रहम का उसकी रतूबत (तरी) मज़ी या मज़ी के मिस्ल है और वह नजस है।
3. और एक मौक़ा ख़ुद फ़रज दाख़िल (अंदरूनी शर्मगाह का) है। उसकी रतूबत (तरी) में तरद्दुद है कि वह पसीना है कि मज़ी इसलिए उसकी निजासत में इख़्तिलाफ़ है और एहतियात उसके नजस कहने में है।

ख़ुलासा यह कि—

1. फ़रज दाख़िल जिसका धोना ग़ुस्ल में फ़र्ज़ है उसकी रतूबत पाक है।
2. फ़रज दाख़िल (यानी शर्मगाह का अंदरूनी हिस्सा) जिसका धोना ग़ुस्ल में फ़र्ज़ नहीं, उसकी रतूबत में इख़्तिलाफ़ है और एहतियात नजासत में है।
3. न फ़रज दाख़िल न फ़र्ज ख़ारिज बल्कि फ़रज दाख़िल (अंदरूनी हिस्सा) से भी (आगे यानी रहम) उसकी रतूबत नजासत है।

हासिल यह है कि यहाँ तीन मौक़े हैं और हर मौक़े की रतूबत का जुदा हुक्म है। फ़रज ख़ारिज (ज़ाहिरी शर्मगाह) की रतूबत ज़ाहिर (पाक) है और फ़रज दाख़िल के बातिन यानी रहम की रतूबत नजस है और ख़ुद फ़रज दाख़िल की रतूबत मुख़्तलिफ़ फ़ीह है। इमाम साहब के नज़दीक ताहिर और सालिहीन के नज़दीक नजस है।

सवाल में जिस रतूबत का ज़िक्र है (जो औरतों को अमूमन शिकायत हुआ करती है) वह क़िस्म दोयम है, इसलिए नजस है।

अलबत्ता अगर तहक़ीक़ात और यक़ीनी तौर से मालूम हो जाए कि यह रतूबत अव्वल क़िस्म की है तो ताहिर है या क़िस्म सोम है तो एहतियातन नजस है। अलबत्ता अगर हर वक़्त जारी रहे उसका हुक्म माज़ूर का-सा है। (इम्दादुल फ़तावा)

ख़ुलासए-बहस

ख़ुलासा बहस यह है कि जो रतूबत बहती है, वह ख़्वाह कोई हो नवाक़िस-वुज़ू है और नापाक है। लिहाज़ा बाज़ औरतों को अकसर औक़ात जो सफ़ेदी बहती रहती है वह नापाक है और नवाक़िसे-वुज़ू है। अगर वह बहकर फ़रजे ख़ारिज (शर्मगाह के ज़ाहिरी हिस्से) तक निकल आए तो वुज़ू टूट जाएगा और फ़रजे दाख़िल (शर्मगाह के अंदरूनी हिस्से) की जिस रतूबत में इमाम साहब और सालिहीन का इख़्तिलाफ़ हुआ है, वह ख़ुद से बाहर आती ही नहीं। लेकिन अगर यह रतूबत (सफ़ेदी) हर वक़्त बहती रहती हो तो वह औरत माज़ूर है। (इम्दादुल-फ़तावा)

माज़ूर की तारीफ़ और उसका हुक्म

1. जिसको ऐसा कोई ज़ख़्म है कि बराबर बहता रहता है। कोई साअत बन्द नहीं होता (लियूकोरिया सैलानुर्रहम की बीमारी है कि हर वक़्त रतूबत जारी रहती है) या किसी को पेशाब की

बीमारी है कि हर वक़्त क़तरा आता रहता है। इतना वक़्त नहीं मिलता कि तहारत से नमाज़ पढ़ सके तो ऐसे शख़्स को माज़ूर कहते हैं।

2. आदमी माज़ूर जब बनता है कि पूरा एक वक़्त (नमाज़ का) इसी तरह गुज़र जाए कि ख़ून (या जो भी शिकायत हो) बराबर बहा करे और इतना भी वक़्त न मिले कि उस वक़्त की नमाज़ तहारत से भी पढ़ सकती है तो उसको माज़ूर कहेंगे। अलबत्ता जब पूरा वक़्त इसी तरह गुज़र गया कि उसको तहारत से नमाज़ पढ़ने का मौक़ा नहीं मिला, तो अब यह माज़ूर हो गई। अब इसका यही हुक्म है कि हर वक़्त नया वुज़ू कर लिया करे। फिर जब दूसरा वक़्त आए तो उसमें ख़ून बहना शर्त नहीं है बल्कि वक़्त भर में अगर एक दफ़ा भी आ जाया करे और सारे वक़्त बन्द रहे तो भी माज़ूरी बाक़ी रहेगी। हाँ, अगर उसके बाद एक पूरा वक़्त ऐसा गुज़र जाए कि जिसमें ख़ून बिल्कुल न आए तो अब माज़ूरी नहीं रही।

3. माज़ूर का हुक्म यह है कि हर नमाज़ के वक़्त वुज़ू कर लिया करे। जब तक वह वक़्त रहेगा तब तक उसका वुज़ू बाक़ी रहेगा, अलबत्ता जिस बीमारी में मुब्तला है उसके अलावा अगर कोई और बात ऐसी पाई जाए जिससे वुज़ू टूट जाता है तो वुज़ू जाता रहेगा और फिर से वुज़ू करना पढ़ेगा। जब यह वक़्त चला गया दूसरी नमाज़ का वक़्त आ गया तो अब दूसरे वक़्त दूसरा वुज़ू करना चाहिए। इसी तरह हर नमाज़ के वक़्त वुज़ू कर लिया करे और उस वुज़ू से फ़र्ज़, नफ़िल जो नमाज़ चाहे पढ़े। (बहिश्ती ज़ेवर)

○ ○ ○